वर्तमान जगत्

लेखक

डा. लक्ष्मीचंद्र खुराना

संस्कृत एम. ए. (पंजाब), हिस्टरी पी-एच. डी. (लंडन),

प्रोफैसर, गवर्नमैंट कालिज, रोहतक (पंजाब)

तथा

श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

सहकारी संपादक,

'वीरअर्जुन', दिल्ली

प्रकाशक

आत्माराम एंड सन्ज़,

लाहौर

मूल्य २।)

Published by
Brij Lal Pury
of
Messrs Atma Ram & Sons
Booksellers Publishers & Printers
Lahore & Delhi

Printed by
Ram Lal Pury
at the
University Tutorial Press
Lal Chand Street, Anarkali
Lahore

विषय-सूची

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय
भौगोलिक परिचय

तीसरा अध्याय
नागरिक और उसके कर्तव्य

चौथा अध्याय

शासन-पद्धतिः

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

आर्थिक और सामाजिक विचार धारायें

सातवाँ अध्याय

आज के युग-निर्माता

नवाँ अध्याय

विज्ञान की यह दुनिया

दसवाँ अध्याय

हमारा देश भारतवर्ष

ग्यारहवाँ अध्याय

कुछ नई समस्याएं

बारहवाँ अध्याय

चौदहवाँ अध्याय

पन्द्रहवाँ अध्याय

पहला अध्याय

यह संसार कैसे बना

हमारी पृथ्वी—हम सब मनुष्य और प्राणी इस विशाल पृथ्वी पर रहते हैं। यह पृथ्वी हमारी माता है और हम इस के पुत्र हैं। इसी लिए इसे धरती माता कहा है। माता ही बच्चे की सब आवश्यकताओं को पूरा करती है। हम पुत्रों के लिए सब प्रकार की ज़रूरी चीज़ें पृथ्वी पर विपुल मात्रा में विद्यमान हैं। पेट भरने के लिये अन्न और फल, पहनने के लिये कपड़ा और चिकित्सा के लिए जड़ी बूटियाँ, यह धरती माता अपने गर्भ मे से पैदा करती है। इसके अतिरिक्त ज़मीन के पृष्ठ के नीचे हमारे उपभोग के लिये तरह तरह के खनिज पदार्थ व धातुओं की खानें, मिट्टी के तेल के सोते व शुद्ध जल उपस्थित है। पृथ्वी के चारों ओर हमारे श्वास लेने के लिये वायु है।

हमारी पृथ्वी गेंद की तरह गोल है। इस गोले के पृष्ठ पर चारों ओर हम बसे हुए हैं। यदि एक मनुष्य दिल्ली से ठीक पूर्व दिशा की ओर चलना शुरु करे तो वह एशिया, अमरीका, तथा अफरीका महाद्वीपों और प्रशान्त महासागर, अटलांटिक महासागर से अरब सागर आदि जल भागों की सैर करके अन्त मे अपने आप दिल्ली मे ही

आ पहुँचेगा। उसे लगभग पच्चीस हजार मील का सफर तै करना पड़ेगा, अर्थात् पृथ्वी का घेरा पच्चीस हजार मील है। एक हवाई जहाज २०० मील प्रति घंटा चले तो वह ५ दिन मे पृथ्वी की परिक्रमा पूरी कर सकता है।

हिन्दुस्तान के ठीक दूसरी ओर अमरीका है। यदि हम यहाँ पर एक लम्बी कील जमीन के अन्दर ठोकते जाएँ तो उसकी नोक जमीन को पार करके अमरीका मे निकलेगी। परन्तु इस कील की लम्बाई आठ हजार मील होनी चाहिए। पृथ्वी का व्यास आठ हजार मील है। पृथ्वी का भार लगभग ५० लाख अरब टन है। सूर्य मे १३ लाख पृथ्वियाँ समा सकती हैं।

पृथ्वी के पृष्ठ पर बड़ा भाग समुद्र का है। कुल पृथ्वी के पृष्ठ का तीन चौथाई समुद्र ने घेर रखा है। शेष केवल एक चौथाई भाग यह हरी भरी जमीन है जिस पर हम बसते हैं।

जिस प्रकार लाटू अपनी कील पर घूमता है उसी प्रकार पृथ्वी अपने चारों ओर सदा घूमती रहती है। पृथ्वी का एक चक्कर चौबीस घंटों मे पूरा होता है। पृथ्वी का जो भाग सूर्य के सामने होता है उस पर दिन होता है और पीछे के आधे मे अँधेरा रहता है इस प्रकार हर समय आधी पृथ्वी पर दिन और आधे भाग पर रात रहती है। पृथ्वी घूमती रहती है, इस लिए बारी बारी से पृथ्वी के सब भागों पर प्रातःकाल दोपहर, सायं और रात होती रहती है। पृथ्वी के किसी स्थान पर जब सूर्य बिलकुल सामने आता है तब वहाँ दोपहर के बारह बजते हैं। विभिन्न देशों मे बारह बजने का समय अलग अलग रहता है। हमारे देश मे जब दोपहर के बारह बजते हैं तब लन्दन मे प्रातःकाल के ६॥

न्यूयार्क में रात के १½ और जापान मे मध्याह्न के ३½ होते हैं। पृथ्वी का चक्कर २४ घंटे मे पूरा होता है, इस लिए दिन रात में २४ घंटे होते हैं।

यह विशाल विश्व—मदारी बन्दर को अपने चारों ओर घुमाता है। सूर्य मदारी है, पृथ्वी उसके चारों ओर चक्कर लगाती है। पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने मे तीन सौ पैंसठ दिन अर्थात् एक वर्ष लग जाता है। पृथ्वी सूर्य से नौ करोड़ मील दूर है। पृथ्वी की तरह सूर्य के और भी कई बन्दर हैं, जो कि नियम पूर्वक सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। इनमे से सब से निकट बुध है। उस से दूर क्रमशः शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस और नेपच्यून हैं। इन आठों को ग्रह कहते हैं।

सूर्य के मुकाबले मे ग्रह बहुत छोटे हैं। यदि सूर्य को हम फुट-बाल मान लें तो बृहस्पति को एक बड़ा नींबू, शनि को अखरोट, यूरेनस और नेपच्यून को देशी बेर, शुक्र और पृथ्वी को मटर का दाना, बुध और मंगल को मूंग के दाने के समान मान सकते हैं।

पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा घूमता है। चन्द्रमा को प्रशान्त महासागर में बिठाया जा सकता है। चन्द्रमा का घेरा पृथ्वी से चौथाई है। चन्द्रमा पृथ्वी से ढाई लाख मील दूर है। यदि हम हवाई जहाज़ पर चढ़ कर २०० मील प्रति घंटा की चाल से चन्द्रमा की ओर जावें तो हमें डेढ़ महीना लगेगा। आकाश में जितने भी पिंड हैं, उन मे से चन्द्रमा सब से निकट है। अच्छी दूरबीन से चन्द्रमा का पृष्ठ अच्छी तरह दीखता है। ज्योतिषियों ने दूरबीन तथा अन्य यन्त्रों की सहायता से यह जान लिया है कि चन्द्रमा पर पानी, वायु तथा

वनस्पति नहीं है। इस के पृष्ठ पर सूखी चट्टानें और ज्वालामुखी पर्वतों के सिवाय और कुछ नहीं है। इस लिए कह सकते हैं कि चन्द्रमा पर मनुष्यों या अन्य प्राणियों की बस्ती नहीं हो सकती।

पृथ्वी एक ग्रह है। चन्द्रमा उसके चारों ओर घूमता है। इस लिए हम चन्द्रमा को उपग्रह कहते हैं। पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य कई ग्रहों के चारों ओर भी उपग्रह घूमते हैं। सूर्य, ग्रह और उपग्रहों को मिला कर सौर परिवार या सौर मंडल कहते हैं।

इस अद्भुत और महान ब्रह्माण्ड में केवल एक ही सौर-मंडल नहीं है। इसके अतिरिक्त दूसरे भी अनेक सूर्य और उनके साथ ग्रह, उपग्रह और करोड़ों अन्य तारा गण हैं। इनमें से बहुत से हमारी पृथ्वी की अपेक्षा भी अरबों साल पुराने हैं। तारकों के बहुत घने पुंजों को 'नीहारिका' कहते हैं। इन नीहारिकाओं की संख्या करीब लाख तक गिनी गई है। इनमे से कई तो हमारे से इतने दूर हैं कि इनके प्रकाश को हम तक पहुँचने मे करोड़ों और अरबों साल लग जाते हैं। सूर्य पृथ्वी से ६ करोड़ मील दूर है। उसका प्रकाश यहाँ ८ मिनट तक पहुँचता है। जिन तारों की रोशनी करोड़ों सालों मे पहुँचती है, कल्पना तो कीजिये कि ये कितनी दूर होंगे और यह महान् ब्रह्माण्ड कितना विशाल होगा। बहुत से तारे सूर्य से भी बहुत बड़े हैं। अगस्त्य ही २२ हजार गुना बड़ा है, परन्तु दूर होने के कारण छोटा दिखाई देता है।

पृथ्वी की उत्पत्ति—पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों की आज जो अवस्था है, यह अवस्था लाखों करोड़ों वर्षों से है। परन्तु इस लम्बे काल से पहले इन की भी कहीं से उत्पत्ति होनी चाहिए। वस्तुतः

सब ग्रह सूर्य में से ही निकलते हैं। वैज्ञानिकों के मतानुसार आज से बहुत पहले यह सौरमंडल एक जलती हुई भाप के बादल के रूप में था। पृथ्वी पर हम जितनी धातुओं, चट्टानों और वनस्पतियों को देखते हैं, यह सब उस समय गरम वाष्प के रूप में थीं। इन बादलों के समूह को नीहारिका या नेबूला कहते हैं। यह नीहारिका लाट्टू की तरह अपने चारों ओर घूमती जाती थी और अपनी गर्मी को धीरे धीरे छोड़ती जाती थी। ज्यों ज्यों यह ठण्डी होती गई, इसका आकार छोटा होता गया। और इसके घूमने का वेग बढ़ता गया। यदि हम वेग से घूमते हुए लाट्टू पर कुछ पानी डालें तो वह लाट्टू पर ठहरता नहीं वरन् चारों ओर दूर तक बिखर जाता है। इसी प्रकार वेग बहुत बढ़ जाने पर नीहारिका के चारों ओर से जलते हुए बादलों का एक छल्ला छूट कर अलग हो गया। यह छल्ला अलग होकर धीरे-धीरे एक पिंड बन गया और सूर्य के चारों ओर घूमने लगा। इसी प्रकार एक के बाद एक करके छल्ले छूटते गए। यही सब बुध, शुक्र, पृथ्वी आदि आठ ग्रह हैं, जिन का वर्णन पहले हो चुका है। ठीक इसी प्रकार ग्रहों से चन्द्रमा आदि उपग्रहों की उत्पत्ति हुई। नीहारिका का बीच का बचा हुआ भाग ही सूर्य है।

सूर्य से अलग होने पर पृथ्वी छोटी होने के कारण शीघ्रता से ठण्डी होने लगी। पहले यह वाष्प से जम कर पिघला हुआ द्रव बनी और फिर ठण्डी होने पर इसके ऊपर की पपड़ी जमने लगी। इस जमी हुई पपड़ी को पृथ्वी का छिलका कहते हैं। इसी पर हम लोग रहते हैं। यह छिलका अधिक से अधिक ५० मील मोटा है।

इस के नीचे आज भी पिघली हुई चट्टानें मौजूद हैं । अब भी हमारी पृथ्वी धीरे-धीरे ठण्डी होती जा रही है ।

पहले पृथ्वी का ऊपर का पृष्ठ ठोस गरम पत्थर का बना हुआ था, और उसके चारों ओर पानी का वाष्प उड रहा था । धीमे धीमे ऊपर का पृष्ठ ठण्डा हो गया और चारों ओर की अनन्त वाष्प जम कर पृथ्वी पर वहने लगा । पानी के वहने से चट्टाने टूट टूट कर रेत और मिट्टी वनती गई । इससे पृथ्वी के ऊँचे नीचे भाग भरते गए । नदी, नाले, समुद्र व समतल जमीन वन गई तथा जीवों के वसने के अनुकूल परिस्थितियाँ हो गई । यह कार्य कोई २-४ वर्ष मे नही हो गया । वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इस पृथ्वी को वने हुए २-३ अरव वर्ष गुजर चुके हैं । परन्तु प्रा से प्रथमम जीव की उत्पत्ति को हुए तीस करोड़ वर्ष से अधिक समय नहीं गुजरा ।

प्राणियों का जन्म और विकासः—वहुत से लोग ऐसा समझते हैं कि जिस प्रकार एक माली अपने वगीचे मे आम, जामुन, अनार, अंगूर आदि विविध पेड़ों व वनस्पतियों के वीज डालता है और कुछ समय मे उस वगीचे मे तरह-तरह के फल लगते हैं, उसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ से ही किसी अज्ञात शक्ति ने गाय, भैंस, घोड़ा, पत्ती, जलचर व प्राणियो का वीज एक साथ डाल कर इन्हें पैदा कर दिया होगा, परन्तु वैज्ञानिको के मतानुसार ऐसा नही है । जीवों की सृष्टि पानी मे शुरू हुई है । सबसे पहले पानी मे अमीवा नामक जीव की उत्पत्ति हुई । यह जीव केवल एक कण मात्र था । इसका एक भी अंग नहीं था । उसके वाद धीरे धीरे इस से अन्य जीवों का विकास हुआ । अमीवा के जन्म के लाखों वर्षों वाद पानी मे रहने

वाले घोंघे, झींगुर आदि जन्तुओं का विकास हुआ। फिर इनसे जल और स्थल दोनों जगह रहने वाले मेंडक, मछली, छिपकली, तथा फिर कई लाखों सालों में सांप, गोह, मगरमच्छ आदि बने। इन से पीछे हाथी, घोड़े, और लंगूर आदि की सृष्टि हुई। लंगूर से बन्दर, बन्दर से बनमानुस और सब से अन्त में मनुष्य की सृष्टि हुई।

मनुष्य की सृष्टि सब से अन्त में हुई। आज की अपेक्षा पहले जीवों के शरीर की रचना सरल थी और उनके अंग थोड़े थे तथा मस्तिष्क का तो नाम भी न था। पीछे से विकास होते होते जीवों के अंग बनते गए और मस्तिष्क भी बढ़ता गया और अन्तिम जीव मनुष्य की रचना सब से पेचीदी और पूर्ण है उसका दिमाग भी अन्य जीवों की अपेक्षा बहुत अधिक विकसित हो चुका है।

ऊपर दिए हुए विकास के क्रम को बुद्धि एक दम नहीं मानती। परन्तु यदि हम प्रकृति के ढंग का सूक्ष्मता से अवलोकन करें तो इस के न मानने का कोई कारण नहीं रह जाता। आइए, ज़रा हम अपनी गाड़ियों की रचना का इतिहास देखें। सब से पहले बिना पहिए की गाड़ी की रचना मनुष्य ने की। अंग्रेजी में एक कहावत है कि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। पहली गाड़ी तेज़ नहीं चल सकती थी और उसे खींचने मे बल भी बहुत लगता था। इस लिए गाड़ी में पहिए लगाए गए। उसके बाद पहिए पर स्प्रिंग और ग्रीज़ तथा बैठने के लिए गद्दे और छत लग गई। परन्तु यह गाड़ियाँ भी धीमी साबित हुईं, इस लिए अपने आप ही रेल गाड़ी, मोटर का विकास हुआ। पानी में चलने के लिए स्टीमर और हवा में उड़ने के लिए हवाई जहाज़ तथा पहाड़ों जैसी ऊबड़ खाबड़ जगहों पर चलने के लिये टैंक बने।

पहले वाहनों की अपेक्षा पिछले वाहन अधिक पेचीदे और उपयोगी तथा पूर्ण बनते गए। गाड़ियों मे जो विकास हुए हैं, उनमें दो बातें मुख्य थीं। एक तो वे अधिक-अधिक पूर्ण अर्थात् उपयोगी बनते गए और दूसरा परिस्थितियों के अनुसार उनके अंगों में भेद होता गया अर्थात् जल स्थल, व आकाश मे जाने वाले वाहनों के अंगों का विकास अलग अलग ढँग से हुआ। आज भी बर्फ़ पर चलने वाली गाड़ी के पहिए नहीं है।

ठीक यही बात वैज्ञानिकों के मतानुसार प्राणियों के विकास में हुई। भिन्न भिन्न प्राणियों को जिन जिन परिस्थितियों मे रहना पड़ा। उसी प्रकार उन के अंग विकसित होते गए। जल मे रहने वाले प्राणियो के पर और पूँछ, स्थलवासियों की टागे और आकाश मे उड़ने वाले पक्षियों के पंखों का विकास हुआ। परिस्थितियों के अनुसार जिस अंग की आवश्यकता हुई, वह निकल आया और व्यर्थ अंग नष्ट होते गए।

विकासवाद के जन्मदाता डार्विन है। हम पहले कह चुके हैं कि पानी के प्रवाह से चट्टाने टूट कर मिट्टी बनती गई और नीचे स्थानों मे भरती गई। एक के ऊपर दूसरी मिट्टी के तहें बनती गई। इन तहों मे खोदने पर पिछले जमाने के प्राणियों के अस्थि-पंजर मिलते हैं। नीचे की तहों मे पहले जीवों के अस्थिपंजर मिलते हैं और ऊपर की तहों से क्रमशः विकास पाए हुए जीवों की उत्पत्ति के प्रमाण मिलते हैं, यह पंजर हमारे लिए सृष्टि के इतिहास के पृष्ठ हैं तथा डार्विन के विकासवाद के मूर्त प्रमाण हैं।

विभिन्न जातियाँ

पहले कभी संसार में एक ही मानव जाति रही होगी, लेकिन विभिन्न प्रदेशों में बस जाने के कारण बहुत समय बाद वह भिन्न भिन्न जातियों में बट गई। इस समय संसार के मनुष्य निम्न जातियों में बँटे हुए हैं।

हबशी—ये लोग रेगिस्तान के दक्षिण मे अफ़्रीका महाद्वीप में बसे हुए हैं। हबशी जाति के लोग मलय प्रायद्वीप, फिलीपाइन प्रायद्वीप, न्यूगिनी और आस्ट्रेलिया में पहुँच गए। जिन दिनों मे योरुप के लोगों ने गुलामों को बेचने का पेशा बना रखा था, उन दिनों में अफ़्रीका के बहुत से लोग पकड़ लिए गए और नई दुनियाँ में बेच दिये गये। इस तरह लगभग तीन करोड़ हबशी लोग उत्तरी अमरीका के गरम भागों में बसे हुए हैं।

इस जाति के लोगों का सिर लम्बा होता है। उनकी नाक चपटी और चौड़ी होती है। उनके होंठ मोटे और मुड़े हुए होते है। उनकी आँखे बड़ी होती हैं। उनके बाल छोटे काले और ऊन के समान घूंघरदार होते हैं। उनका क़द लम्बा और गठीला होता है। रंग प्रायः काला होता है।

मंगोलियन या पीली—इस जाति के लोगों का निवासस्थान हिमालय के उत्तर मे हैं। यहाँ से वे हिन्द चीन (इण्डोचाइना) चीन, जापान, मलय प्रायद्वीप, तुर्किस्तान आदि में फैल गये। उनका सिर छोटा और नाक बैठी हुई होती है। उनके होंठ पतले और आँखें तिरछी होती हैं। कहा जाता है कि इस्किमो और अमरीका के मूल

निवासी तुर्क और हँगरी के मेगायर लोग भी इसी जाति के हैं। रंग के अनुसार अमरीका के मूल निवासी लाल जाति मे गिने जाते हैं। लाल जाति के लोग प्रायः पीले होते हैं।

काकेशियन लोग—गोरे होते हैं। ठेठ गोरे लोग योरुप में वसे हुए हैं। पर ऐशिया के लोग काकेशियन जाति के होते हुए भी भूरे या गेहुए रंग वालों मे गिने जाते हैं।

इन वडी वडी जातियों की अनेक उपजातियाँ है।

धर्मों के अनुसार योरुप और अमरीका के अधिकांश लोग ईसाई, पश्चिमी एशिया और अफ्रीका के लोग मुसलमान, दक्षिणी पूर्वी एशिया के लोग वौद्ध, भारतवर्ष के हिन्दू है।

अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि संसार के वहुत से भागों के लोग प्रकृति के उपासक हैं।

दूसरा अध्याय

भौगोलिक परिचय

पांच महासागर

हम पिछले अध्याय में पढ़ आये हैं कि इस विशाल पृथ्वी और मानव प्राणी का जन्म कैसे हुआ। पृथ्वी के इस स्थूल रूप में आने के बाद भी उसमें समय समय पर परिवर्तन होते रहे। भूमि के अन्तर्वर्ती ज्वालामुखी, भूकम्प और पानी का बहाव आदि के कारण पृथ्वी में भारी परिवर्तन हुए। जहाँ जल था, वहाँ बड़े बड़े विशालकाय पर्वत बन गये और जहाँ पहले बड़े बड़े पहाड़ थे, वहाँ अब सागर हिलोरें मार रहा है। हिमालय, ऐल्पस आदि पहाड़ भी किसी समय समुद्र थे। संपूर्ण भारत और यूरोप का भारी भाग भी जल मग्न था। लाखों करोड़ों सालों के परिवर्तनों के बाद आज का यह रूप बना है और यह नहीं कहा जा सकता कि लाखों साल बाद क्या रूप होगा। आज कल समस्त भूमण्डल का क्षेत्रफल प्रायः १९ करोड़ २० लाख वर्ग मील है। इसमें स्थल भाग सिर्फ ५,७०,००,००० वर्ग मील है, शेष विशाल भाग जल है। इस प्रकार पृथ्वी में ७१ फ़ीसदी जल और २९ फ़ीसदी स्थल है। स्थल का सबसे बड़ा भाग उत्तरी गोलाई में है, पर ४० अक्षांश के दक्षिण में न्यूज़ीलैण्ड, टस्मेनिया, तथा अन्य छोटे छोटे द्वीप और अण्टार्कटिका प्रदेश को छोड़ कर सब

कहीं जल ही जल है। वास्तव में एक ही महासागर; पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों में फैला है। परन्तु सुभीते के लिए हमने इसके भिन्न भिन्न नाम रख लिए हैं।

प्रशांत महासागर—इन सब सागरों में (६३ करोड़ वर्ग मील) सब से बड़ा है। यह पृथ्वी के समस्त क्षेत्रफल का एक तिहाई भाग घेरे हुए है। यह पृथ्वी के समस्त स्थल भाग के बराबर है। इसका आकार कुछ कुछ अण्डाकार है। उत्तर में यह स्थल से घिरा है, पर दक्षिण की ओर अधिक खुला है और दक्षिणी महासागर से मिला हुआ है। कई विद्वानों का ख्याल है कि पृथ्वी के जिस भाग से चन्द्रमा निकल गया, वही प्रशान्त महासागर हो गया। यह बहुत गहरा समुद्र है और एक स्थान पर तो इसमे गौरीशंकर की उच्चतम चोटी भी डूब सकती है।

अटलांटिक महासागर-यह दूसरा महासागर है। इसका क्षेत्रफल ३,५०,००,००० वर्गमील है और आकार अङ्गरेजी के S अक्षर के समान है। यह उत्तर की ओर काफ़ी खुला है। इसका तट बहुत कटा फटा है, इसलिए इसके किनारे पर बहुत सी बन्दरगाह हैं।

हिन्द महासागर-यह अर्ध चन्द्राकार (२,५०,००,००० वर्गमील) सब का सब कृष्ण प्रदेश मे स्थित है। उत्तर की ओर स्थल ने इस को दूसरे महासागर से अलग कर दिया है, लेकिन दक्षिण की ओर स्थल की रुकावट का नाम नही है।

इन तीनों के अलावा भी **उत्तरी हिम सागर** (५५,००,००० वर्गमील) और **दक्षिणी हिम सागर** (४०,००,००० वर्ग मील)

विशाल महासागर हैं। ये अधिकांश निर्जन और हिमाच्छादित हैं। उत्तरी समुद्र में गर्मियों में थोड़ा बहुत व्यापार अवश्य होता है और कुछ आबादी भी है।

यह तो पाँच महासागर हैं, लेकिन भिन्न भिन्न देशों के पार्श्ववर्ती या किसी तरह विभिन्नस्थल भागों के अन्तर्वर्ती जल भागों के अलग अलग नाम रख लिये गये हैं।

यों किसी एक देश के इतिहास मे समुद्र का कभी बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा हो या न हो, लेकिन इसमें संदेह नहीं, कि समस्त संसार के इतिहास में इस महान् जलमय संसार का स्थान बहुत महत्वपूर्ण रहा है। समुद्री जहाज़ों का विकास चरम सीमा तक पहुँचने से बहुत पहले से ही इन विशाल सागरों की तरंगों पर मानव जाति छोटी बड़ी नौकाओं द्वारा एक स्थल भाग से दूसरे स्थल भाग पर जाती थी और व्यापार, व्यवसाय, शिक्षा या धर्म प्रचार द्वारा समस्त संसार मे एकता का भाव पैदा करती थी।

पांच महादेश

समस्त पृथ्वी का स्थलभाग कुल पृथ्वी के एक चौथाई भाग के बराबर है। इसमें से भी १० लाख वर्गमील नदियाँ और झीलें हैं। संपूर्ण पृथ्वी के स्थल भाग को निम्न लिखित पाँच बड़े बड़े महादेशों में विभक्त किया गया है—

१. एशिया।

२. अफ्रीका।

३. यूरोप।

४. अमरीका और

५. ओशनिया।

इनके अतिरिक्त उत्तरी और पश्चिमी ध्रुवों का स्थल भाग, जिसका विस्तार ५० लाख वर्गमील है, निर्जन पड़ा है। कुल पृथ्वी की आबादी २ अरब है।

एशिया—एक अरब से अधिक आबादी वाला एशिया सब से बड़ा महादेश है। इसका क्षेत्रफल पौने दो करोड़ वर्गमील है। केवल अपनी विशाल जनसंख्या और विस्तृत क्षेत्रफल के कारण ही नही, धर्म और सभ्यता का जन्मदाता होने के कारण भी एशिया का महत्त्व बहुत अधिक है। संसार के सभी बड़े धर्म-हिन्दू, बौद्ध, ईसाई और इस्लाम एशिया मे ही उत्पन्न हुये हैं। रेशम, छापे की विधि, बारूद, गणित और चिकित्सा शास्त्र आदि अनेक महत्वपूर्ण विज्ञान भी एशिया के आविष्कार हैं। चीन, भारत वर्ष, एशियाई रूस जापान, स्याम, हिन्दचीन, तिब्बत, अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, टर्की और अरब इसके प्रमुख देश हैं।

किसी समय राजनैतिक दृष्टि से भी इसका बोलबाला था। आज इसकी हालत अच्छी नही है। इसके अनेक विशाल प्रदेशों पर यूरोपियन राज्यों का अधिकार है। लेकिन अब हालत बदलने लगी है। जापान ने तो बीसवीं सदी मे देखते-देखते इतनी उन्नति कर ली है कि वह यूरोपियन देशों का मुकाबला करने का साहस रखता है। व्यापार और व्यावसायिक दृष्टि से यह ब्रिटेन तक को परेशान कर रहा है। एशिया के अन्य देशों मे भी जागृति उत्पन्न हो रही है। भारत स्वा-

धीनता के लिये कोशिश कर रहा है। चीन, टर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान तक में नवीन जागृति के चिह्न दिखाई दे रहे हैं। जापान ने कुछ समय पूर्व सब एशियाई राष्ट्रों के एक होकर यूरोपियन सत्ता को एशिया से निकाल देने का "पानएशियाटिक" आन्दोलन चलाया था, लेकिन उसके स्वयं चीन पर आक्रमण कर देने से उसकी सद्भावनाओं पर किसी को विश्वास नहीं रहा और अब यह आन्दोलन खतम सा हो गया है।

अफ्रीका—एशिया के बाद अफ्रीका ही सब से बड़ा महाद्वीप है इसका क्षेत्रफल १,१५,००,००० वर्ग मील है। यहाँ खनिज द्रव्यों की बहुतायत है। फ्रांस, ब्रिटेन, बेलजियम, पुर्तगाल, इटली और स्पेन ने अपने-अपने बड़े साम्राज्य यहाँ स्थापित किये हुए हैं। जर्मनी भी अपने उपनिवेश फिर प्राप्त करना चाहता है। मिश्र अब स्वतंत्र देश है, लेकिन इंग्लैंण्ड के प्रभाव में है। यहाँ भी इटली, जर्मनी की सेनाओं से ब्रिटेन का युद्ध छिड़ा हुआ है। इसका कोई अन्तिम परिणाम भी यूरोपीय युद्ध के साथ ही निकलेगा। अफ्रीका में मिश्र, अबीसीनिया, लीबिया, दक्षिणी अफ्रीका, रोडेशिया, कीनिया, टांगानिका, कांगो, अल्जीरिया, इरिट्रिया, सोमालिलैण्ड आदि बहुत से मुल्क हैं।

यूरोप—यूरोप को एक अलग महादेश कहना एक प्रकार से ठीक नहीं है, क्योंकि यह महाद्वीप एशिया का ही एक भाग है। परन्तु इसका इतिहास महादेश एशिया से बिल्कुल भिन्न है, इस लिए यूरोप को अलग ही महादेश कहा जाता है। यह यद्यपि पृथ्वी के समस्त

स्थल भाग का चौदहवाँ हिस्सा (३७,५०,००० वर्ग मील) है, तथापि इसका प्रभाव संपूर्ण संसार पर है। यहां १२० भाषाएँ बोली जाती हैं। इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, रूस, स्विटजरलैण्ड, बेलजियम, हालैण्ड, नारवे, स्वीडन, फिनलैण्ड, रूमानिया, बलगेरिया, हंगरी, ग्रीस और टर्की यूरोप के प्रमुख देश हैं। गत महासमर के बाद किया गया यूरोप का पुनर्विभाजन आज फिर बदल रहा है। वहाँ बडी भारी उथल पुथल मच रही है। आस्ट्रिया, जेकोस्लावेकिया, पोलैण्ड आदि कई राष्ट्र दूसरे राज्यों ने हडप कर लिये और आज इन का स्वतंत्र अस्तित्व भी नहीं रहा। शेष राष्ट्रों का भविष्य भी अभी नहीं कहा जा सकता, क्या होगा। यूरोप के वर्तमान युद्ध ने समस्त यूरोप में एक भूकम्प ला दिया है और यह भी नहीं कहा जा सकता कि यूरोप का वर्तमान प्रभाव और महत्व अब रहेगा भी या नहीं। यूरोप की संस्कृति, सभ्यता, राजनैतिक प्रभुत्व और कल कारखाने सब खतम हो रहे हैं। लंडन, बर्लिन जैसे शहर तक खंडहर बन रहे हैं।

अमरीका—एशिया, यूरोप और अफ्रीका तो एक दूसरे को छूते हैं, लेकिन यह महादेश बाकी सब महादेशों से बहुत दूर अकेला बसा हुआ है। इस लिए बहुत समय तक यूरोप वालों को अमेरिका महादेश का कुछ ज्ञान ही नहीं हुआ। प्राचीन शोध से अब यह तो पता लगा है कि बहुत प्राचीन काल में भारतीय वहां जाया करते थे, लेकिन यह सम्बन्ध स्थायी नहीं रहा और अमरीका शेष संसार के लिए अज्ञात सा ही बना रहा। कोलम्बस ने यूरोप वालों को १४९२ में इस का परिचय दिया था। तब से यहाँ बहुत से यूरोपियन आकर बसने लगे।

इसका क्षेत्रफल १,५०,००,००० वर्ग मील है। लेकिन १८२३ ई० में संयुक्त-राष्ट्र अमरीका के प्रैज़िडैण्ट मि० मुनरो ने यह घोषणा की कि अब कोई भी यूरोपियन अमेरिका में उपनिवेश न बना सकेगा और न यहाँ हस्तक्षेप कर सकेगा। पनामा का जलमार्ग अमरीका को उत्तरी और पश्चिमी अमरीका मे विभक्त करता है। उत्तरी अमरीका में कैनाडा, संयुक्त-राष्ट्र और मैक्सिको हैं। दक्षिणी अमरीका में पीरू, चिली, यूरेग्वा, बोलिबिया आदि अनेक स्वतंत्र राज्य है। कैनाडा ब्रिटेन का उपनिवेश है। वह तो वर्तमान युद्ध मे पड़ा हुआ है। संयुक्त-राष्ट्र भी इङ्गलैण्ड को सहायता देने के लिये बड़ी भारी मात्रा में युद्ध सामग्री तैयार कर रहा है।

ओशनिया—यह सब से छोटा महादेश है। इसका क्षेत्रफल कुल स्थल भाग का १७ फ़ीसदी है; परन्तु आबादी संसार की कुल आबादी की ३ फीसदी है। इसके दो मुख्य भाग आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड हैं और दोनों ब्रिटेन के उपनिवेश हैं।

आर्थिक दृष्टि से विशेष महत्व के देश

यों तो इन थोड़े से हिमप्रदेशों को छोड़कर पृथ्वी के प्रायः सभी भाग अपनी अपनी दृष्टि से कोई न कोई महत्व रखते हैं, लेकिन फिर भी कुछ प्रदेश और स्थान ऐसे अवश्य हैं जिनका महत्त्व आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक या सामरिक कारणों से बहुत बढ़ गया है। इन प्रदेशों और स्थानों, के संक्षिप्त परिचय से हम यह जान सकेंगे कि संसार का राजनैतिक घटना-चक्र क्यों और किस उद्देश्य से घूमता है।

व्यावसायिक देशों की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें

ऐसे प्रदेश मिले, जहाँ उनका सामान अच्छी मात्रा में खप सके, वहाँ उनका कोई दूसरा व्यवसायी देश मुकावला न कर सके, अपने कल-कारखानो के लिए कच्चा माल भी काफी मात्रा में सस्ते मूल्य पर मिल सके। यूरोप के व्यवसायप्रधान देशों मे परस्पर मुकाविला वहुत सख्त है उससे वचने के लिये यह आवश्यक है कि वे मुल्क अपने अधीन हो और वहाँ कानून व ताकत के द्वारा किसी दूसरे को रोका जा सके। इस दृष्टि से वे देश वहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं जो वहुत विशाल हों और व्यापारिक पदार्थ खरीदने के लिए जहाँ विशाल जन-संख्या हो। भारतवर्ष, चीन, अफ्रीका आदि के विभिन्न प्रदेश इस दृष्टि से अधिक उपयोगी हैं। इन पर अधिकार और यातायात करने के मार्ग भी इसी दृष्टि से वहुत महत्वपूर्ण हैं।

वे देश, जहाँ आवादी भले ही वहुत अधिक न हो, लेकिन अतिरिक्त जन-संख्या वसाने और फैलने के लिए जिनके पास विस्तृत प्रदेश अवश्य हो, साम्राज्यविस्तार के लिए वहुत उपयोगी हैं। कैनाडा, आस्ट्रेलिया, अमेरिका, अफ्रीका आदि पर इसी कारण यूरोप के साम्राज्यवादी देशों की नजर लगी हुई है। इन देशों मे वहुत समय तक नये-नये व्यक्ति आकर वसते रहे और आज भी इन देशों की जनसंख्या वहुत अधिक नही है, लेकिन फिर भी आज जिन लोगों ने इन पर अधिकार कर रखा है, वे दूसरे लोगों को आने नहीं देते। आस्ट्रेलिया, अमरीका आदि के दरवाज़े दूसरे लोगों के लिए अव वन्द हैं।

हम ऊपर कह आये हैं कि कच्चे माल वाले देशों का महत्व यूरोपियन व्यवसायियों के लिए वहुत अधिक है। यह केवल इसी लिए

नहीं कि कारखानों के लिए कच्चा माल बहुत मिल सके, लेकिन इस लिए भी कि उन देशों में अपने निर्वाह योग्य भोजन-सामग्री भी प्राप्त नहीं होती। इंग्लैण्ड मे सिर्फ़ ३०-४० फ़ी सदी जनता के लायक खाद्य पदार्थ पैदा होते हैं। उसे अपने अन्न के लिए आस्ट्रेलिया, हिन्दुस्तान, कैनाडा, आर्जैंण्टाइना पर निर्भर होना पड़ता है। सोवियट रूस में भी गेहूँ काफी पैदा होता है। जौ भी रूस, अमेरिका भारत आदि में होता है। मकई सबसे अधिक संयुक्त-राष्ट्र अमरीका में और उसके बाद आर्जैंण्टाइना, हंगरी, हिन्दुस्तान, मिस्र, चीन और आस्ट्रेलिया आदि में ! चावल बंगाल, मद्रास, बर्मा, चीन आदि में होता है। गन्ना जावा अमरीका, ब्राज़ील, मारिशस, आस्ट्रेलिया और भारत में बहुत होता है। चाय चीन, जापान, आसाम, लंका आदि में बहुत पैदा होती है। कपास हिन्दुस्तान, मिस्र, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, तुर्किस्तान और चीन में बोई जाती है। जूट का तो एकाधिकार ही भारत का है। अपनी अपनी उपज के लिए इन सब देशों का महत्व है।

लेकिन आजकल केवल कृषि-पदार्थ ही नहीं, व्यवसाय के लिये अन्य भी अनेक प्रकार की वस्तुएँ अत्यन्त आवश्यक हो गई हैं। कारखानों, मोटरों, जहाज़ों और वायुयानों आदि के लिये लोहा, कोयला और मिट्टी का तेल हीरे की खान से भी अधिक उपयोगी और महत्वपूर्ण हो गए हैं। यूरोप के व्यवसायप्रधान देशों में कोयला और लोहा तो मिल जाता है लेकिन मिट्टी का तेल नहीं मिलता। इसलिये सभी देश तेल के लिए बहुत उत्सुक हैं। जिस जिस मुल्क में तेल मिलता है, उसे अपने अधिकार में करने या प्रभाव में लाने के

लिये विभिन्न राष्ट्रों में बहुत संघर्ष हुआ है। तेल की दृष्टि से संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका का सबसे पहला नम्बर है और उसके बाद क्रमशः रूस, वेनिजुला, ईरान, मेक्सिको, ईराक, रूमानिया और हिन्दुस्तान के नम्बर हैं।

रेलवे, इमारतें, पुल, मशीनें, मोटर और शस्त्रास्त्र इन तमाम चीजों के लिए लोहा जरूरी है। जहां लोहा और कोयला एक साथ मिल गया है, वहां व्यवसाय भी खूब उन्नत हुआ है। लोहा अमेरिका ग्रेट ब्रिटेन, उत्तरी स्पेन, रूस, चीन, ब्राजील आदि में पाया जाता है। भारत में भी लोहा काफी होता है। जर्मनी की रूस के यूक्रेन प्रान्त पर इसी दृष्टि से बहुत अधिक नजर है और जैकोस्लोवेकिया पर इसी लिए अधिकार किया गया। जर्मनी का रूर प्रान्त फ्रांस की दृष्टि में इसीलिये खटकता रहा है। कोयला अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, रूस और भारत आदि में पाया जाता है।

चांदी मेक्सिको, कनाडा, आस्ट्रेलिया, जापान आदि में और सोना ट्रांसवाल (दक्षिणी अफ्रीका) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, रूस आदि में पाया जाता है।

राजनैतिक दृष्टि से महत्व

भौगोलिक और राजनैतिक कारणों से भी अनेक स्थलों और प्रदेशों का महत्व बढ़ गया है। विविध देशों के पारस्परिक संघर्ष की दृष्टि से जो स्थान अधिक महत्वपूर्ण हैं, उन पर हर एक अधिकार करना चाहता है।

बाल्टिक देश और समुद्र—जर्मनी के उत्तर मे और रूस के पश्चिम में लिथुआनिया, लैटविया, इस्टोनिया और फिनलैण्ड बाल्टिक राष्ट्र हैं। ये चारों राष्ट्र हैं तो छोटे छोटे से, लेकिन रूस की सीमा पर स्थित होने से इनका महत्व बहुत है। इन राष्ट्रों पर जिसका अधिकार होगा, वही रूस के लिए खतरनाक हो सकता है। जर्मनी की प्रगति को इन राष्ट्रों में रोकने के लिये ही रूस ने इन पर १६३६ में अधिकार कर लिया। रूस का उत्तरी समुद्र सरदियों मे बेकार हो जाता है, इस लिए भी रूस को ऐसे समुद्र की जरूरत है, जिससे सरदियों में भी व्यापार का यातायात हो सके। इस दृष्टि से भी बाल्टिक समुद्र आवश्यक है और यही कारण है कि रूस ने बाल्टिक राष्ट्रों के तटों पर नई किलेबन्दियां और हवाई व जहाज़ी अड्डे कायम कर लिये हैं। जर्मनी भी बाल्टिक समुद्र मे इसीलिए प्रभाव बढ़ाना चाहता है और बाल्टिक समुद्रवर्ती डैनजिग शहर पर अधिकार करने का, जो वर्तमान समर का मुख्य कारण है, रहस्य भी शायद यही है। फ़िनलैण्ड के दक्षिणी पश्चिमी आलैण्ड टापू भी रूस, स्वीडन और फिनलैण्ड के लिए एक समान महत्वपूर्ण हैं।

बलकान राष्ट्—यूगोस्लेविया, रूमानिया, बलगेरिया, ग्रीस. अलबानिया, और यूरोपियन टर्की के बलकान राष्ट्र सदा यूरोप का ज्वालामुखी रहे हैं। अनेक महान् युद्धों का सूत्रपात इन्हीं राष्ट्रों मे हुआ है। कृषिजन्य और खनिज पदार्थों की बहुतायत के अलावा यूरोप ने एशिया के मार्ग पर स्थित होने के कारण इनका महत्व बहुत अधिक है। पूर्वीय भूमध्यसागर पर भी ग्रीस और टर्की के द्वारा नियंत्रण किया जा सकता है। जर्मनी ने

हमेशा मोसल के तैल कूपों और भारत तक पहुँचने के लिए बर्लिन से बगदाद तक रेलवे लाइन बनाने का स्वप्न लिया है। इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, जर्मनी और रूस सभी इन राष्ट्रों में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहते हैं। १९३९ मे इटली ने अलबानिया पर अधिकार कर लिया और रूस ने १९४० मे रुमानिया के कुछ प्रदेश पर। सिर्फ उपर्युक्त बड़े राष्ट्र ही इनको नहीं खाना चाहते लेकिन ये स्वयं भी आपस मे एक दूसरे के प्रदेशों पर अधिकार करने के लिए सदा उत्सुक रहते हैं। गत महायुद्ध के बाद फ्रांस और ब्रिटेन ने इनका पुनर्विभाजन किया था लेकिन अब जर्मनी ने उसको नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। यूगोस्लेविया और ग्रीस के महत्व को देखते हुए ही ब्रिटेन ने उन्हे जर्मन आक्रमण के विरुद्ध रक्षा की गारंटी दी थी। परन्तु उनके परास्त हो जाने के कारण जर्मनी का इन राष्ट्रों पर प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया है। इस समय टर्की को छोड़ समस्त बलकान राष्ट्र जर्मनी के हाथ मे है।

इंग्लिश चैनल—ग्रेट ब्रिटेन को समस्त यूरोपीय महादेशों से अलग करने वाला इँग्लिश चैनल भी भौगोलिक दृष्टि से बहुत महत्व पूर्ण है। यूरोपीय युद्ध के विनाशकारी प्रभाव से यही चैनल इंग्लैण्ड की रक्षा करता आया है और आज भी जर्मनी इसी के कारण ब्रिटिश तट पर पैर नहीं रख सका। इसके तट पर बड़े बड़े समुद्री सैनिक अड्डे हैं।

भूमध्य सागर—यूरोप से एशिया आने के लिए भूमध्यसागर का महत्व बहुत अधिक है। ऐसा महत्वपूर्ण मार्ग संसार के अन्य स्थल पर नहीं है। यह मार्ग यूरोपियन देशों को उत्तरी अफरीका, अरब, ईरान, भारत, चीन, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड से मिलाता

है। ग्रेट ब्रिटेन ने अपने विस्तृत साम्राज्य पर अधिकार रखने के लिए ही इस मार्ग के खास-खास स्थानों पर अधिकार किया हुआ है। जिबराल्टर के जलडमरूमध्य पर इसका विशाल समुद्री बेड़ा हमेशा भूमध्य सागर के इस पश्चिमी द्वार की रक्षा करता है। जर्मनी और स्पेन की इस पर कड़ी नज़र है। माल्टा, साइप्रस आदि भूमध्य सागर के अन्तर्वर्ती टापुओं पर ब्रिटेन के सैनिक अड्डे हैं। और फिर भूमध्य सागर के पूर्वी द्वार स्वेज़ नहर पर भी ब्रिटेन का अधिकार है। १८६६ ई० से पहले जब तक स्वेज़ नहर नहीं बनी थी, ज़हाजों को अफ्रीका के नीचे होकर आना पड़ता था। इटली और जर्मनी इस नहर पर अधिकार करने को अत्यन्त उत्सुक हैं। भूमध्य सागर इटली के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। मुसोलिनी कहा करता है कि भूमध्य सागर इटली का स्नानागार है और इटली हज़ारों मीलों द्वारा इसमें स्नान करता है। इसी कारण यह सागर आजकल भयंकर युद्ध का मैदान बना हुआ है। और क्रीट जैसे छोटे छोटे टापू पर भयंकर जन नाश हो रहा है। इस पर इटली का पर्याप्त बल न होने के कारण ही इटली को अपने पूर्वी अफ्रीका के साम्राज्य से इतनी शीघ्र हाथ धोना पड़ा।

दर्रा दानियाल—भूमध्य सागर को काले सागर से मिलाने वाला दर्रा दानियाल भी बहुत महत्व पूर्ण है। रूस उत्तरी समुद्र से सरदियों में व्यापार नहीं कर सकता। वह भूमध्य सागर भर में इसी दर्रे के द्वारा पहुँच सकता है। १८ वीं और १६ वीं सदी में इसी को लेकर ब्रिटेन व रूस में संघर्ष रहा। गत महायुद्ध के बाद भी इसी को लेकर यूरोपियन राष्ट्रों की अनेक कान्फ्रेंसें बैठ चुकी हैं कि

किस का इस पर अधिकार हो और व्यापारिक या सैनिक जहाज़ों को इसमे आने जाने की छूट हो या न हो। बाल्टिक और काले सागर को नहर द्वारा मिलाये जाने पर इसका महत्व और भी बढ़ गया है।

भूमध्य सागर से बाहर निकलने पर यूरोप-एशिया मार्ग पर **पोर्ट सैयद और अदन** प्रमुख बन्दरगाह हैं, जिन पर ब्रिटेन का अधिकार है। **फ़ारस की खाड़ी भी** महत्व रखती है। और इनके बाद भारत आ जाता है। यहां से सिंगापुर और हांगकांग होकर जहाज चीन और जापान जाते हैं।

लंका और अण्डेमान—आज कल भारत के दक्षिण मे लंका, अण्डेमान और निकोबार द्वीपों का कोई विशेष महत्व नहीं हैं, लेकिन स्वतंत्र रहने की स्थिति मे भारत को इन पर जबर्दस्त मोर्चा-बन्दी करनी होगी, ताकि कोई भी शत्रु इन पर अधिकार करके भारत के लिए खतरा पैदा न कर सके।

सिंगापुर की जल-प्रणाली—यह पूर्व मे बहुत महत्व रखती है। यह चीनी सागर को हिन्द महासागर से मिलाती है। इस पर ब्रिटेन का बहुत ही जबर्दस्त जंगी बेड़ा है, जो पूर्व मे ब्रिटिश हितों की देख भाल करता है और जापान को पश्चिम मे बढने से रोकता है। किसी की सम्मति मे ईस्ट इण्डीज के टापू चाहे निवास या साम्राज्य की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण न हों, लेकिन पूर्व मे अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए ये जरूरी हैं। आस्ट्रेलिया की दृष्टि से यह काफी महत्व रखते हैं। इन पर अधिकार करके कोई भी प्रशान्त महासागर के पश्चिमी भाग पर प्रभाव कायम रख सकता है।

चीन के पूर्व में भी अनेक स्थान और खास कर शंघाई आदि बन्दरगाह बहुत महत्व रखते हैं। जापान और ब्रिटेन दोनों के चीन में स्वार्थ हैं। जापान रूस के ब्लाडिवास्टक बन्दरगाह पर नज़र लगाये हुए है. ताकि रूस के बढ़ते हुए प्रभाव को रोक सके। फिलिपाइन्स टापू अमेरिका के हाथ मे हैं और जापान के बढ़ते हुए प्रभाव पर कुछ नियंत्रण रखते हैं।

प्रशान्त महासागर—यह एक अद्भुत सागर है। अत्यन्त विशाल होते हुए भी इसके बीच मे कोई खास टापू नहीं है। जो टापू हैं, वे इस सागर के पूर्वी और पश्चिमी तटों के आसपास ही हैं। ईस्ट इण्डीज़ की तरह वैस्ट इण्डीज़ भी अमेरिका की दृष्टि से बहुत महत्व पूर्ण हैं।

अटलांटिक महासागर—यूरोप और अमेरिका के बीच मे लहराता हुआ सागर इन दोनों महादेशों के लिए बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। व्यापार के खयाल के अलावा अमेरिकन तटवर्ती टापू सामरिक दृष्टि से बहुत महत्व रखते हैं। हाल ही मे ब्रिटेन ने अपने बहुत से टापू अमेरिका को पट्टे पर दे दिये हैं। पनामा नहर अमेरिका की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

इन स्थानों और प्रदेशों के अतिरिक्त और भी कुछ ऐसे स्थान है, जिनका महत्व कम नहीं है। भारत के पश्चिमोत्तर में खैबर का दर्रा हमेशा शत्रुओं के लिए खुला मार्ग रहा है। आज भी भारत सरकार उसकी रक्षा कर रही है। अफ़गानिस्तान के मार्ग से रूस के आक्रमण का सदा भय बना हुआ है। अफ़गानिस्तान और तिब्बत भी भारत

के लिए रूस से ढाल का काम देते हैं। इस लिए सरकार इन दोनों को अपने प्रभाव में रखने का यत्न करती है। चीन मे मंचूरिया व मंगोलिया की रियासतों ने राजनैतिक संघर्ष के कारण महत्व प्राप्त कर लिया है। अन्य भी ऐसे स्थान हो सकते हैं, जो विभिन्न देशों के लिए अपने अपने कारणों से महत्वपूर्ण हों।

जब से हवाई जहाजों का प्रचलन बहुत चल पड़ा है, तब से फिर स्थल मार्ग का महत्व बढ़ गया है और नये बने हुए हवाई अड्डों की कदर होने लगी है।

तीसरा अध्याय

नागरिक और उसके कर्तव्य

व्यक्ति और समाज

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सिर्फ़ यह नहीं कि वह समाज में रहना चाहता है, लेकिन वह समाज की सहायता के बिना छोटी से छोटी हरकत भी नहीं कर सकता। भोजन, पानी, कपड़े आदि सभी ज़रूरतों के लिए उसे दूसरे व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक होता है।

समाज के अनेक रूप हैं। परिवार, सभा, कम्पनी, संस्था, म्यूनिसिपल कमेटी, सरकार आदि अनेक रूपों मे हम मनुष्यों का संगठन देखते हैं, कोई ऐसी संस्था, जिसमें एक से अधिक व्यक्ति आपस में मिलते हैं, समाज का एक रूप है। जब स्त्री और पुरुष विवाहसूत्र में बँधते हैं, या एक मुहल्ले, ग्राम. शहर, या देश के रहने वाले मिल कर सभा, पंचायत, म्यूनिसिपल कमेटी या सरकार कायम करते हैं, या कुछ थोड़े अथवा बहुत आदमी किसी उद्देश्य से कोई संगठन—चाहे वह धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक या आर्थिक हो बनाते हैं, तब वे सब समाज के ही विभिन्न रूप बनाते हैं।

नागरिक के कर्तव्य

इस तरह परस्पर मिलने और संगठन करने का मुख्य उद्देश्य एक ही होता है कि सब मिल कर उन्नति कर सकें। जो काम एक व्यक्ति अकेले नहीं कर सकता, वही काम दस व्यक्ति मिल कर समाप्त कर लेते हैं। पंचायत, म्यूनिसिपल कमेटी, प्रान्तीय या केन्द्रीय सरकार के अथवा सभा सोसाइटियो के काम एक व्यक्ति अकेला नहीं कर सकता। यदि समाज उन्नत, वलवान् और समृद्ध होगा, तो उसका व्यक्ति भी उन्नत, वलवान और समृद्ध हो सकता है। यदि किसी देश की सरकार कमजोर हो जाती है, तब उस देश की हालत गिर जाती है। इसी लिए प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह अपने संगठन को मजबूत और ऊँचा करने में पूरी सहायता दे। जब तक प्रत्येक व्यक्ति या अधिकांश व्यक्ति समाज को ऊँचा व वलवान बनाने में पूरे सहायक नहीं होते, तब तक कोई समाज उन्नति नहीं कर सकता। अपने संगठन को ऊँचा करने के लिए मनुष्य को जो कार्य करने होते हैं, वही नागरिक के कर्तव्य कहाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति समाज में इस लिए सम्मिलित होता है कि उसकी अपनी उन्नति भी हो। वस, जो वह अपने लिए चाहता है, वही दूसरे को भी देना उसका कर्तव्य है। यदि सब व्यक्ति अपने अपने इस कर्तव्य का पालन करने लगे, तो सब की उचित इच्छाएँ पूरी हो जावें, सब की उन्नति होने लगे। मैं चाहता हूँ कि मेरी गली साफ़ हो, मेरे घर के आगे कूड़ा न पडे, तो मेरा कर्तव्य है कि मै भी दूसरे की गली मे दूसरे के घर के आगे कूड़ा न डालूँ। मै खुद जीना चाहता हूं, दूसरे को जीने देना भी मेरा कर्तव्य है।

यों तो नागरिक के सैंकड़ों कर्तव्य हैं, लेकिन उनके मुख्य निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं—अपने प्रति, अपने परिवार के प्रति, अपने नगर या गांव के प्रति और देश के प्रति।

१--अपने प्रति—प्रत्येक देशवासी प्रजाजन का यह कर्तव्य है कि वह अपनी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भौतिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहे। जब तक समाज के अंग ही पुष्ट न होंगे, समाज कैसे पुष्ट हो सकता है। कमज़ोर पिलपिली ईंटों से मज़बूत मकान नहीं बन सकता। प्रत्येक मनुष्य को अपने शरीर की उन्नति के लिए स्वास्थ्यसम्बन्धी नियमों का पालन करना ज़रूरी है। शुद्ध स्वास्थ्यप्रद भोजन, शुद्ध वायु, व्यायाम तथा संयममय जीवन से शरीर स्वस्थ रहता है। अपनी आर्थिक और शिक्षासम्बन्धी उन्नति की ओर भी ध्यान देना ज़रूरी है।

२, अपने परिवार के प्रति---समाज मे परिवार का एक विशेष स्थान है। परिवार, समाज या संगठन की सब से छोटी इकाई है। परिवार ही सामाजिक या नागरिक शिक्षा का पहला स्कूल है। अपनी समस्त शक्ति और समस्त प्रयत्न अपने तक सीमित न रखकर अपने से भिन्न भी कुछ व्यक्तियों के लिए करना चाहिए। घर या परिवार में पिता अपने बाल बच्चों के लिये सैकड़ों कष्ट उठाता है। असभ्य और भयंकर अपराधी भी अपने परिवार के लिए कुछ न कुछ कष्ट उठाता है। महर्षि बाल्मीकि ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व अपने परिवार के लिए ही शिकार करते व यात्रियों को लूटते थे। नागरिक का कर्तव्य है कि वह अपने माता पिता, अपनी पत्नी, अपनी बहन

अपने बाल-बच्चों के स्वास्थ्य, चरित्र, योग्यता और शिक्षा सम्बन्धी उन्नति आदि सब ओर ध्यान दे।

भारत मे आज से ३०–४० साल पूर्व तक सम्मिलिन परिवार की प्रथा विद्यमान थी और आज भी बहुत से भाग में है। सम्मिलित परिवार का अर्थ है एक ही प्रमुख के मातहत उसके सब पुत्र अपने अपने परिवारों समेत रहे। सब पुत्रों की आमदनी भी उस वृद्ध प्रमुख के पास चली जाती है और वह सब की आवश्यकतानुसार परिवार के सब सदस्यों मे उसका वितरण करता है। किसी भाई का अपनी आमदनी पर पूर्ण अधिकार नहीं होता। बेकार या दरिद्र भाई की आवश्यकताएँ भी इस सम्मिलित परिवार मे उसी तरह पूरी की जाती हैं, जिस तरह सम्पन्न या खूब पैसा कमाने वाले की। लेकिन आजकल अपनी आजीविका के लिये भाइयों को अलग अलग शहरों मे बिखर जाना पड़ता है इस लिए और स्वार्थ की संकुचित भावना के प्रचार के कारण परिवार की प्रथा खतम होती जारही है।

२. शहर या गाँव के प्रति—जैसे समाज की इकाई परिवार है, उसी तरह राजनैतिक संगठन की इकाई ग्राम या नगर होते हैं। परिवार के साथ मनुष्य का रक्त का संबंध है, इससे अगली संस्था, जिससे मनुष्य का नागरिक सम्बन्ध है, बिलकुल ही जुदी तरह की है। यहाँ मनुष्य पारिवारिक रूप मे माता पिता, भाई या बहन के रूप मे सदस्य न होकर नागरिक के रूप मे उसका सदस्य है नागरिकता का यह बन्धन ही मनुष्य को सभ्यता के पद पर बिठाता है मनुष्य के कार्य का दायरा ग्राम या नगर है। वह पृथ्वी के इस छोटे से भाग से, जहाँ वह पैदा

हुआ है या जहाँ वह बरसों रह कर उसे अपना घर मानने लगा है, प्रेम करने लगता है। इस गाँव या राजनैतिक घर को बनाने वाले सभी सड़कों, खेतों, चरागाहों, पहाड़ियों या नदियों से भी उसे स्वयं प्रेम हो जाता है। इस गांव या नगर के प्रबन्ध में भी उसकी दिलचस्पी होनी स्वाभाविक है, क्योंकि उसके सारे जीवन और जीवन से सम्बन्ध रखने वाली छोटी छोटी बातों पर ग्राम के इन्तज़ाम का असर पड़ता है। दरअसल गांव या शहर वह सबसे छोटी इकाई है, जो नागरिक के जीवन पर सब से ज़्यादा असर डालती है।

स्थानीय शासन और नागरिक

अलग अलग भौगोलिक परिस्थिति, भिन्न भिन्न संस्कृति, रहन सहन, भाषा आदि के कारण प्रान्त, ज़िला या ग्राम की ज़रूरतें भी अलग अलग होती हैं। इनमे सारे देश के प्रतिनिधियों की कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती। यदि केन्द्रीय सरकार उन पर नियंत्रण करे, तो वह स्थानीय जनता पर अत्याचार ही है। केवल स्थानीय लोगों के दिलचस्पी लेने के कारण स्थानिक शासन समिति की स्वतंत्र सत्ता आवश्यक है, जो स्थानीय समस्याओं का हल करे। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि इन स्थानीय आवश्यकताओं और समस्याओं के हल मे पूर्ण सहयोग दे। हरेक अपने आराम के लिए तो टैक्स दे देता है, लेकिन जालंधर जिले का रहने वाला मुलतान शहर की प्याऊ या डिस्पैसरी के लिए क्यों टैक्स से लादा जाना पसन्द करेगा।

हर एक नागरिक को यह अनुभव करना चाहिये कि वह अपने गांव या शहर की प्रबन्ध कमेटी का एक अनिवार्य अंग है।

उसे अपने गांव या शहर की हरेक बात में पूरी दिलचस्पी लेनी चाहिए। जहां आम लोग दिलचस्पी लेना बन्द कर देते हैं, वहां स्थानीय प्रबन्ध भी खराब हो जाता है। शहर की हरेक घटना, या नियम में हरेक नागरिक की सम्मति लेना संभव नहीं होता, इस लिए लोगों के प्रतिनिधियों की एक कमेटी को ये काम सपुर्द कर दिये जाते हैं। लेकिन इससे आम लोगों का कर्तव्य खतम नहीं हो जाता। प्रतिनिधियों के चुनाव में दिलचस्पी लेना सब का कर्तव्य है। चुनाव के समय नागरिकों को निम्नलिखित बातों का खूब ध्यान रखना चाहिए—

१—उम्मीदवार खूब योग्य और व्यवहार-कुशल हो, शहर की सब सम्बद्ध समस्याओं से परिचित हो।

२—उम्मीदवार में खुदगरजी की बनिस्बत दूसरों का भला करने या जन-सेवा का भाव ज्यादा हो।

३—उम्मीदवार में जातिगत भावना न हो।

यदि योग्य निस्वार्थ उम्मीदवार चुना जायगा, तो, वह गांव का प्रबंध भी योग्यता और ईमानदारी से करेगा। शहर की सफाई, रोशनी चिकित्सा और पढ़ाई सब का प्रबन्ध ठीक-ठीक होगा। यदि स्वार्थी उम्मीदवार चुने जावेंगे, तो वे जनता के हित की बजाय अपने स्वार्थ के साधन की परवाह लरेंगे।

स्थानीय शासन का संगठन

स्थानीय स्वराज्य, जिसे अंग्रेजी में लोकल सैल्फ गवर्नमेंट कहते हैं, गावों और शहरों की आबादी के अनुसार जुदे जुदे भागों

मे बँटा होता है । हिन्दुस्तान में इसे दो भागों में बाँटा गया है, देहाती और शहरी । देहाती शासन को भी पंजाब में तीन भागों मे बाँटा गया है । गाँवों मे पंचायत, तहसील या सबडिवीज़न में लोकल बोर्ड और ज़िले में ज़िलाबोर्ड पर स्थानीय शासन की ज़िम्मेदारी सौंपी जाती है । ये तीनों संस्थाएँ देहात मे ही काम करती हैं । शहरी शासन भी छोटे बड़े शहर के खयाल से तीन हिस्सों मे बँटा होता है । छोटे कस्बों में नोटिफ़ाइड एरिया, बड़े कस्बों या शहरों मे म्यूनिसिपल कमेटी और बहुत बड़े शहरों मे कारपोरेशन ।

इन सब संस्थाओं मे अधिकतर सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं और कुछ सरकार द्वारा नामज़द होते हैं । प्रजातंत्र के असूल के अनुसार सरकार का यह हस्तक्षेप भी अनुचित है । कई प्रान्तों की नई सरकारें नामज़द करने की प्रथा को हटा भी रही हैं और शायद कुछ सालों मे सारे देश मे स्थानीय स्वराज्य सम्बन्धी मामलों मे सरकार का हस्तक्षेप और भी कम हो जाएगा । प्रायः सब स्थानीय संस्थाओं को अपना गैर सरकारी अध्यक्ष चुनने का अधिकार होता है, यद्यपि अभी तक भी यह अधिकार पूरी तरह से इस्तेमाल में नहीं लाया जाता । पंचायतों का जितना प्रचार होना चाहिए अभी उतना नहीं हुआ, और फिर पंचायतों को अधिकार और भी कम हासिल हैं । इसका अर्थ यह है कि भारत के ६० फी सदी लोगों को अभी तक भी स्थानीय स्वराज्य प्राप्त नही हुआ । प्रान्तीय सरकारें इस दिशा मे कदम बढ़ा रही है, इन पंचायतों के जिम्मे बहुत से काम होंगे । गाॅव की सफाई, शिक्षा, रोशनी और छोटे छोटे मुकद्मे सुनना पंचायतों का

काम है और उसके लिए उन्हे थोड़ा बहुत टैक्स वसूल करने का अधिकार भी होता है।

तहसील के छोटे छोटे गाँवों मे जहाँ पंचायते नहीं होनी सफाई रोशनी आदि का काम लोकल बोर्डों के सुपुर्द किया जाता है। लेकिन वस्तुतः ज़िला बोर्ड व पंचायत के बीच की एक शृखंला मात्र होने के कारण से ये बोर्ड महत्त्व प्राप्त नहीं कर सके। जिला बोर्ड, जो जिले के सब गाँवों का प्रबन्ध करता है, काफी महत्त्वपूर्ण संस्था है। इसमें सारे जिले के प्रतिनिधि होते हैं। आजकल के प्रतिनिधियों को वास्तव मे जिले का प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ये मत-दाताओं के अज्ञान से लाभ उठा कर उन पर अनुचित दबाव डालकर चुने गए होते हैं। जिला बोर्ड के पास नीचे लिखे काम होते हैं—

सडकों और छोटे छोटे रास्तों का बनाना और मरम्मत, स्कूल और शफ़ाखाने, सड़कों पर वृक्ष लगाना, खेती के लिए बाँध, पुल, नहरे, कुएँ, और तालाब बनवाना, विवाह, जन्म और मृत्यु का रजिस्टर रखना, दस्तकारी तथा खेती को प्रोत्साहन, अकाल के समय लोगों को सहायता, प्लेग, हैजा, चेचक आदि रोगों के निवारण का प्रबन्ध, यात्रियो के लिए सराये बनवाना, पशुओं की नस्ल मे सुधार इत्यादि। इन कामों को करने के लिए जिला बोर्ड स्थानीय कर, विद्यार्थियों की फीस, पेड़ो की आय, पुलों आदि के ठेके, हैसियत आदि के टैक्स आदि से पैसा वसूल करता है।

अलग अलग प्रान्तो मे ये देहाती-स्वराज्य संस्थाए जुदा जुदा प्रकार से बटी हुई हैं। कहीं तीन प्रकार के बोर्ड हैं, ग्राम, तहसील और

ज़िला, तो बम्बई मे केवल ज़िला बोर्ड व ताल्लुका बोर्ड ही हैं। किसी किसी प्रान्त मे ज़िला बोर्ड को ही ज़िला कौंसिल भी कहते हैं।

नोटिफाइड एरिया कमेटी छोटे शहरों की सफाई, स्वास्थ्य और शिक्षा का प्रबन्ध करती है। बाज़ारों गली-कूचों नालियों और कुओं का बनाना और मरम्मत करना, और श्मशान, कब्रिस्तान आदि की व्यवस्था भी इसके जिम्मे होती है।

म्यूनिसिपल कमेटी के कर्तव्य इस प्रकार होते हैं:—

शहर की सफ़ाई, पानी के लिए वाटर वर्क्स, रोशनी, हस्पताल खोलना, महामारियों को रोकना, गंदे पानी के निकास के लिए नालियाँ बनाना, स्कूल, पुस्तकालय और वाचनालय खोलना, श्मशान व कब्रिस्तान की देख-रेख, मकानों का बनवाना, ताँगों और मोटरों की देख रेख, आग बुझाने का प्रबन्ध, खतरनाक इमारतों का गिराना, लोगों के मनोरंजन के लिए बाग़ आदि बनवाना, सड़कों का निर्माण व मरम्मत। म्युनिसिपल कमेटी को अपना खर्च निकालने के लिए कई प्रकार के टैक्स लगाने के भी अधिकार हैं. इन मे से खास खास ये है :—

शहर मे आने वाले सामान पर चुंगी, हाऊस-टैक्स, पानी के नलों पर महसूल, ताँगों व मोटरों पर टैक्स, रोशनी का टैक्स, पेड़ों की आमदनी आदि। कारपोरेशन सारे हिन्दुस्तान मे केवल चार शहरों— कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और कराची मे ही है। इसे बहुत अधिकार होते हैं। अब तक पंजाब के किसी शहर मे कारपोरेशन न था, लेकिन अब लाहौर कार्पोरेशन कानून पास हो गया है, और शीघ्र ही इसके बनने की आशा है।

ब्रिटिश भारत में सब म्युनिसिपैलिटियों व कारपोरेशनों की संख्या १६३१-३२ मे ७२७ थी (इसके बाद के अंक नही मिल सके।) इनके कुल सदस्य १२२२४ थे जिनमे से ६६२ सरकार द्वारा नामजद थे। उक्त वर्ष इनकी आमदनी (कर्ज मिलाकर) ३४ करोड़ रुपया थी। लेकिन बम्बई, कलकत्ता और मद्रास की २२ करोड़ की आमदनी निकालने से बाकी ७२४ म्युनिसिपैलिटियों की आय सिर्फ १२ करोड़ रह जाती है। कुछ बड़े शहरों मे उन्नति या सुधार के लिए इम्प्रूवमैण्ट ट्रस्ट भी बनाए गए हैं। बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, कराची आदि बन्दरगाहों का स्थानीय प्रबन्ध करने के लिए पोर्ट-ट्रस्ट भी बनाए गए हैं, लेकिन उन पर जनता का नियंत्रण बहुत कम है। इम्प्रूवमैण्ट ट्रस्ट भी अधिकतर सरकारी नियन्त्रण मे काम करते हैं। म्युनिसिपैलिटियों की भी हालत बहुत अच्छी नहीं है। बहुत कम म्युनिसिपल कमेटियाँ सरकार के दबाव से अपने को बचा पाती हैं।

भारत की स्थानीय संस्थाएँ बहुत पिछडी हुई हैं। फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका आदि देशों मे स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा, रोशनी, सफाई आदि के अतिरिक्त अमन व शान्ति कायम रखना, चोरियों तथा बदमाशियों को रोकना और साधारण न्याय के काम तक स्थानीय संस्थाओं के समझे जाते हैं। इंगलैण्ड मे तो स्थानीय शासन का सब अधिकार स्थानीय सस्थाओं ही के पास है। इन सस्थाओ द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के हाथ मे ही ये सब कार्य होते हैं। सरकार वहाँ स्थानीय शासन मे दखल ही नहीं देती। पुलिस, हस्पताल, सफाई आदि महकमों के छोटे बड़े अफ़सर स्थानीय संस्थाओं से ही वेतन

पाते हैं। वे नागरिकों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के सामने ही जवाब देह होते हैं और उन्ही का उन पर पूरा नियन्त्रण होता है। वहाँ पर कमिश्नर, कलक्टर, पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट, थानेदार, तहसीलदार आदि ऐसे कोई सरकारी अफसर शहर के मामलों में दस्तंदाज़ी करने के लिए नहीं हैं।

नागरिकों की अपनी ज़िम्मेवारी

लेकिन सिर्फ़ पंचायत या म्यूनिसिपल कमेटी भी सब प्रबन्ध ठीक नहीं कर सकती, जब तक कि नागरिकों का उसे सहयोग प्राप्त न हो। किसी गाँव मे चले जाओ, कितना बुरा दृश्य दीखता है। गलियों मे कूड़े के ढेर लगे रहते हैं, सड़ा गला भोजन वहाँ बदबू करता रहता है। जगह जगह बालकों के पेशाब और टट्टी, फटे कपड़े, बरसाती पानी से भरे हुए गड्ढे और मलेरिया आदि के मच्छरों की भरमार। यही एक गाँव का चित्र है। शहरों में भी सफ़ाई का इन्तज़ाम होने के बावजूद बुरी हालत होती है। पक्की नालियों में बालक टट्टी पेशाब करते हैं, भंगियो के सफ़ाई करने के बाद गलियों में कूड़ा करकट डाल दिया जाता है। कोई भी शासनसंस्था इसे दूर नहीं कर सकती, जब तक कि नागरिक सहयोग न दें। उनका प्रधान कर्तव्य है कि वे सफ़ाई के नियमों को जानें और उनका पालन करे। कूड़ा करकट और मलमूत्र का भी ठीक तरह उपयोग किया जाय, तो बहुत बढ़िया खाद बन जाती है। आज से २२०० वर्ष पूर्व मौर्य चन्द्रगुप्त के काल मे सार्वजनिक स्वराज्य पर बहुत ध्यान दिया जाता था, कौटिल्य अर्थशास्त्र मे चाणक्य ने बताया है कि किन किन

सार्वजनिक स्थानों पर कूडा करकट फैंकने के लिए कितना कितना जुरमाना लगाना चाहिए। कुछ अन्य भी कर्तव्य हैं, जिनकी ओर नागरिकों को ध्यान देना चाहिए। अगर नागरिक अपनी सन्तानों को स्कूलों मे न भेजे, तो शिक्षा के लिए हज़ारों कोशिशे भी कामयाब नही हो सकतीं। यदि प्रत्येक नागरिक म्यूनिसिपल टैक्स देना अपना कर्त्तव्य न समझे, तो कमेटी पैसा पास न होने की वजह से बहुत से काम न कर सके। नागरिकता का आदर्श प्रत्येक समय एक दूसरे की सहायता करना है। यदि पड़ोसी के घर मे आग लगी हो, तो मेरा फर्ज है कि मै उसकी मदद करूँ। बाढ आदि दैवी विपत्ति आने पर छूत-अछूत, हिन्दू-मुसलमान शत्रु-मित्र, स्त्री-पुरुष सब भेदभाव छोड कर विपत्ति निवारण के काम मे लग जाना चाहिए।

प्राचीन यूनान में प्रत्येक नागरिक निम्नलिखित प्रतिज्ञा करता था:—

"यह हमारा नगर है। हम अपनी कायरता या बेईमानी के किसी काम से इसका अपमान न करेगे, न हम अपने दुखी साथियों का कार्यक्षेत्र मे साथ छोडेंगे। हम इस नगर की पवित्र वस्तुओ तथा आदर्शों की रक्षा के लिए लडेंगे, चाहे हम अकेले हों या बहुतों के साथ हों। हम नगर के नियमों का आदर से पालन करेंगे और उनकी अवहेलना करने वाले बन्धुओं मे भी ऐसा ही भाव भरने का यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे; हम नागरिक कर्त्तव्यों की सार्वजनिक भावना को उत्तेजित करेंगे। इस प्रकार इन सब उपायों से हम इस नगर को जैसा हमे यह सौंपा

गया है, उसकी अपेक्षा आने वाली पीढ़ी के लिए कम नहीं, अधिक महान, उन्नत और सुन्दर बनायेंगे।"

५. देश के प्रति कर्तव्य—देश के प्रति भी नागरिक के कुछ कर्तव्य होते हैं। राज्य किसी देश की उन्नति और अवनति के लिए उत्तरदायी है। देश पराधीन हो, देश की सरकार दुर्बल हो, तो उस देश के नागरिक ही मारे जाते है। इस लिए देश की उन्नति में सदा सहयोग देना चाहिए। देश केवल भूमि का नाम नहीं है। देश, समस्त देशवासियों से मिलकर बनता है। इस लिए जहाँ नागरिक को बाहरी आक्रमण से राष्ट्र की रक्षा के लिए अपना सिर तक कटाने को तैयार रहना चाहिए, वहाँ समाज के भिन्न भिन्न वर्गों स्त्रियों, बालकों और दलितों के अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए, विधर्मियों का आदर और विभिन्न आर्थिक श्रेणियों—मज़दूरों, किसानों आदि के अधिकारों व सुखों का भी ख़याल रखना चाहिए।

जहाँ नागरिक के ये कर्तव्य हैं, वहाँ नगर या देश के भी उसके प्रति कर्तव्य हैं। उसकी रक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का प्रबंध करे उसे प्रत्येक उचित कार्य करने में स्वतंत्रता और सहायता दे।

चौथा अध्याय

शासन-पद्धति

प्रजातंत्र-शासन का विकास

राजा ईश्वर है—एक समय था, जब कि यह माना जाता था कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है। इंग्लैण्ड के राजा जेम्स ने सिंहासन पर बैठने से पूर्व लिखा था--राजा ईश्वरीय अधिकार से राज्य करते हैं। प्रजा को उसके खिलाफ़ चूँ भी करने का अधिकार नहीं। राजा ईश्वर का ही प्रतिनिधि और प्रतिबिम्ब हैं, इस लिए उनके खिलाफ खड़ा होना पाप और मूर्खता है। सन् १८१५ मे रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया के सम्राटों के संधिपत्र मे यह स्पष्ट तौर पर प्रकट किया था कि हमे ईश्वर ने लोगों पर शासन करने के लिए प्रतिनिधि रूप मे भेजा है। महाभारत मे भी लिखा है राजा इस भूमण्डल पर मनुष्य के रूप मे देवता है। इस लिए उसका कोई अपमान न करे। राजा के और उसके अधिकारों के प्रति ऐसी गंभीर आस्था पूर्व और पश्चिम दोनों जगह चिरकाल तक रही। कोई इस पर अविश्वास न करता था।

समझौते का सिद्धान्त—लेकिन समय के साथ ईश्वर के देवता का स्वरूप भी बदल गया। रूसो प्रभृति महान् विचारकों ने राज्य के स्वरूप पर नये सिरे से प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि राज्य राजा और प्रजा के बीच मे एक समझौते का परिणाम-मात्र है। प्रजा ने राजाओं को कर और अन्य प्रकार की सहायता देना तथा राजा की हकूमत मानना स्वीकार किया और इसके बदले में राजा ने प्रजा की रक्षा का इकरार किया। राजा के अधिकार प्रजा की सम्मति पर निर्भर करते हैं और राज्य-संस्था की उत्पत्ति प्रजा ही के द्वारा हुई है। महाभारत में भी राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इसी सिद्धान्त का दिग्दर्शन है। प्रजा मनु के पास गई और कहा—तुम हमारे अधिपति बनो, तुम्हें हम पशुओं का पाँचवाँ हिस्सा और अनाज का दशमांश देंगे। अस्त्र शस्त्र लेकर हमारे मुखिया तुम्हारे साथ रहेंगे। तुम सुख और आनन्द से राज्य करो।

राजा देवता का अंश है, यह कल्पना राजाओं को निरंकुश बनाती थी, परन्तु राजा को प्रजा ने ही शासनाधिकार दिये हैं, इस कल्पना ने प्रजा के हृदय मे बल दिया और यह प्रेरणा उत्पन्न की कि राज्य-प्रबन्ध में उसका भी हाथ होना चाहिए। प्रजातंत्र या लोकतंत्र शासन के मूल मे यही भावना है। इतिहास हमे बताता है कि—लोकतंत्र शासन की पद्धति प्राचीन काल मे भी विद्यमान थी। ग्रीस के प्रजातंत्रों के अतिरिक्त भारतीय इतिहास में भी हमे बहुत से प्रजातंत्र राज्यों के वर्णन मिलते हैं। लेकिन कालान्तर में राजा परम शक्तिशाली हो गये और प्रजातंत्र नष्ट हो गये।

प्रजातंत्र शासन और उसके आधार--एक समय था, जब कि छोटे छोटे नगर-राज्य होते थे और किसी भी प्रश्न पर राज्य-निवसियों की राय ले ली जाती थी, लेकिन ज्यो-ज्यों राज्य बड़े होने लगे, हर एक प्रश्न पर समस्त राज्यनिवासियों की राय लेना कठिन होता गया। इस लिए प्रजा ने अपने स्वामित्व के अधिकार अपने प्रतिनिधियों को सौंप दिये। इसी लिए प्रजातंत्र को प्रतिनिधितंत्र भी कहा जाता है। संयुक्तराष्ट्र .अमेरिका के प्रैजिडैण्ट अब्राहम लिंकन ने प्रजातंत्र का अर्थ यह किया है—"**जनता द्वारा, जनता के लिये, जनता पर शासन**" मिल के शब्दों मे 'सब लोग या लोगों का अधिकाश भाग अपने चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा जिस राज्य मे शासन करता है, उसे लोकतंत्र शासन कहते हैं।"

प्रजातंत्र शासन के मुख्य आधारभूत सिद्धान्त यह हैं कि कानून बनाने का अधिकार प्रजा के प्रतिनिधियो को हो और शासक (मंत्रिमण्डल) अपने कार्यों के लिए इन प्रतिनिधियों की सभा 'पार्लिमेंट' के सामने (अथवा अमेरिका मे प्रैजिडैण्ट, उसे चुनने वाली जनता के सामने) जिम्मेदार हो। दोनों हालतों मे सरकार को उसी क्षण चले जाना चाहिए, जिस क्षण पार्लिमेण्ट या प्रजा की ऐसी सम्मति हो जावे। वस्तुतः उत्तरदायी शासन की घुण्डी ही यही है कि शासकवर्ग पर प्रजा का सीधा या प्रतिनिधियों द्वारा नियंत्रण। इसके लिए प्रतिनिधियों की व्यवस्थापक-सभा आय-व्यय पर पूर्ण नियंत्रण करती है। उसकी सम्मति के विना सरकार एक पैसा भी खर्च नही कर सकती। शासन-नीति और कानूनों का निर्माण भी प्रतिनिधि-सभा करती है।

प्रजातंत्र का दूसरा मुख्य आधार है प्रजा को दो या अधिक पार्टियों में से अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार। यह अधिकार तभी अक्षुण्ण रह सकता है, जब कि विभिन्न विचारों और नीतियों के प्रतिनिधियों को अपना संगठन करने, भाषण देने और लिखने की पूरी आज़ादी हो। उन्हे बिना किसी क़ानून के मातहत अदालती सजा द्वारा गिरफतारी के अलावा गिरफतार न किया जा सके। चुनाव तभी हो सकता है, जब दो या अधिक पार्टियाँ हों। इटली, जर्मनी और रूस मे दूसरी पार्टी संगठित ही नहीं हो सकती, प्रजा को चुनाव का अवसर ही नहीं दिया जाता, इसी लिए वहाँ का शासन प्रजातंत्र नहीं कहाता।

जब हम प्रजातंत्र या प्रतिनिधितंत्र-शासन कहते हैं, तब उसका यह अर्थ नहीं होता कि प्रजा का एक विशिष्ट भाग ही अपने प्रतिनिधि चुन सकता है। तब तो समस्त नागरिकों को चुनाव करने का अधिकार होता है। इस लिए प्रजातंत्र शासन की एक बड़ी विशेषता यह होनी चाहिए कि प्रतिनिधियों के निर्वाचन का अधिकार बिना अमीर, गरीब, धर्म तथा किसी जाति के भेद भाव के सब बालिग़ मात्र को होना चाहिए। तभी सच्चा प्रजातंत्र होता है और तभी सब प्रतिनिधि अपने-अपने शासन मे अपना अपना भाग ले सकते हैं। लेकिन इसी के साथ एक दूसरी शर्त भी है कि मत लेने का तरीका गुप्त होना चाहिए। यदि मत लेने का तरीका गुप्त न हुआ, तो सम्पन्न या शक्तिशाली लोग अपने मातहत या निर्बल नागरिकों पर नाजायज़ दवाव डालकर उनकी इच्छा के विरुद्ध भी किसी एक विशिष्ट व्यक्ति को ही मत देने के लिए विवश कर सकेंगे। तव प्रतिनिधि-शासन का

कोई अर्थ ही नहीं होगा। अभी तक भी अनेक देशों मे मताधिकार के लिए साम्पत्तिक या शिक्षासंबंधी शर्तें लगाकर मताधिकार को संकुचित किया हुआ है, यह प्रजातंत्र के सिद्धान्त के विरुद्ध है। जिस जिस देश मे जितनी ऊँची शर्तें हैं, उतना ही वहाँ कम प्रजातंत्र है।

आजकल बहुत से देशों मे प्रजातंत्र या प्रतिनिधितंत्र का जो स्वरूप विद्यमान है, बहुत से विचारकों की सम्मति मे वह शुद्ध प्रजातंत्र नही है। आर्थिक और सामाजिक स्थिति से सत्ताशाली बड़े बड़े पूंजीपति, जमींदार अपने संगठन, धन या स्थिति के बल से चुनावों मे जीत जाते हैं और वस्तुतः साधारण जनता का उसमे कोई भाग नहीं हो पाता। बड़े-बड़े पूंजीपति अपने संगठनों और अखबारों द्वारा साधारण जनता का लोकमत बनाया या बिगाड़ा करते हैं, अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए वे देशों मे परस्पर युद्ध तक करा देते हैं। ऐसी स्थिति मे प्रजातंत्र को शुद्ध प्रजातंत्र कहने में बहुत संकोच किया जाता है। कार्ल मार्क्स की सम्मति मे शुद्ध प्रजातंत्र तभी चल सकता है, जब एक वर्गहीन समाज हो।

अब कुछ राष्ट्रों की शासन-पद्धति का संक्षिप्त परिचय आगे दिया जाता है।

ग्रेटब्रिटेन की शासन पद्धति

आइसलैण्ड को छोड़ कर, जहां १००० वर्ष से पार्लिमेंट चली आती है, वर्तमान प्रजातंत्र-संस्था इंग्लैण्ड मे ही सबसे पहले १४ वीं सदी मे स्थापित हुई थी और आहिस्ता आहिस्ता प्रजा के निरंतर युद्ध और संघर्ष के बाद दो तीन सदियों मे वर्तमानरूप तक पहुँची थी। इसी लिए इंग्लैण्ड को प्रजातंत्र की जननी कहा जाता है।

इंग्लैण्ड के विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह कोई बाकायदा लिखा लिखाया विधान नहीं है। बहुत सी अलिखित प्रथाएँ अब कानून का रूप धारण कर चुकी हैं। भिन्न भिन्न समय जो अधिकारपत्र या घोषणाएँ की गईं, वे अब कानून बन चुकी हैं। वहाँ कानूनी दृष्टि से सर्वोपरि शासक राजा होता है जो वंशानुक्रम से आता है। उसका प्रोटेस्टैण्ट* होना भी आवश्यक है। राजा के अधिकार वहाँ इतने सीमित है कि वहाँ के विधान को प्रजातंत्र या मर्यादित राजतंत्र (Limited monarchy) कह सकते हैं। कानूनी तौर पर सर्वोच्च और क़ानून से ऊपर होते हुए भी राजा पार्लिमेंट के अधीन है, क्यों कि उसकी स्वीकृति के बिना वह एक पैसा भी राजकोश से नहीं ले सकता और न प्रजा से एक पाई भी टैक्स के रूप मे वसूल कर सकता है। वह पार्लिमेंट के किसी निर्णय को पुनर्विचारार्थ उसके पास भेज सकता है। वह किसी पार्लिमैंट को भंग करके नया चुनाव कर सकता है, परन्तु आखिर उसे जनता के नये प्रतिनिधियों—पार्लिमेंट के नये सदस्यों-की बात माननी पड़ेगी। सच्चाई यह है कि पार्लिमेंट के अधिकार अमर्यादित हैं और राजा के मर्यादित। ब्रिटिश पार्लिमेंट के बारे मे किसी ने कहा है कि वह सब कुछ कर सकती है। सिर्फ स्त्री को पुरुष या पुरुष को स्त्री नहीं बना सकती।

इंग्लैण्ड की पार्लिमेंट के दो भाग हैं हाउस आफ कामन्स (आम सभा) और हाऊस आफ लार्ड्स (रईस-सभा)। आम सभा के ६०५ सदस्य होते हैं, जो २१ साल की उम्र के बालिगों के मतों से

---

* ईसाइयों मे दो बड़े सम्प्रदाय है कैथोलिक और प्रोटैस्टैण्ट।

चुने जाते हैं। ७०,००० की आवादी के पीछे एक सदस्य चुना जाता है। इसी सभा को बजट आदि पास करने का अन्तिम अधिकार है। रईसी, सभा या हाउस आफ लार्ड्स के ७४० सदस्य होते हैं, जो वंश-परंपरा से चले आते हैं। राजा को भी यह अधिकार होता है कि वह किसी भी व्यक्ति को लार्ड वना कर रईस, सभा का सदस्य वना दे, इस तरह इसके सदस्य बढ तो सकते हैं, किसी तरह घटाये नहीं जा सकते। सदस्यों की संख्या इतनी वढ़ गई है कि रईस-सभा के भवन म वैठ भी नहीं सकते। लेकिन जितनी वडी यह संस्था है, उतने ही कम इसके अधिकार हैं। १९११ के एक कानून के अनुसार यदि किसी बिल को आम-सभा तीन वार पास कर दे, तो वह स्वीकृत समझा जाता है। जिस बिल को आम-सभा का स्पीकर आर्थिक बिल कह दे, उसमे भी कोई सुधार या परिवर्तन रईसी सभा नहीं कर सकती। दर असल यह सभा किसी प्रस्ताव पर विचार को लंबा करने के सिवा कुछ नहीं कर सकती।

आम सभा के वहुमत के नेता को राजा प्रधान-मंत्री वनाता है और वह राजा की अनुमति से शेष मंत्रि-मण्डल का चुनाव करता है यह मंत्रिमण्डल सामूहिक रूप से पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी रहता है। राजा की ओर से तमाम शासन की जिम्मेवारी मंत्रिमण्डल की रहती है। जव तक मंत्रिमण्डल का वहुमत वना रहे, वह वना रहता है अन्यथा त्यागपत्र दे देता है। फिर राजा दूसरे मंत्री को प्रधान मंत्री चुनता है रा नया चुनाव कराता है।

प्रधान मंत्री को दस हजार पौण्ड प्रति वर्ष मिलते हैं। शेष

मंत्रियों को ५-५ हज़ार पोंण्ड । साधारण सभा के सदस्यों को छः छः सौ पौण्ड मिलते हैं पहले प्रजातंत्र की आधार-भूत दल पद्धति अपने निश्चित रूप में विद्यमान थी, लेकिन पिछले अनेक वर्षों से असाधारण परिस्थिति के कारण या तो दोनों दल—अनुदार दल और मजूदर-दल मिल कर राष्ट्रीय सरकार बनाते हैं अथवा अनुदार दल का ही बहुमत रहता है।

फ्रांस की शासन पद्धति

फ्रांस मे इस युद्ध से पहले इंग्लैण्ड की अपेक्षा भी अधिक प्रजातंत्र था। १८७० मे तृतीय नैपोलियन को गद्दी से उतार कर फ्रैंच जनता ने ने प्रजातंत्र की स्थापना की थी। यहाँ राजा नामक कोई व्यक्ति कानूनी या अमली तौर पर कोई अस्तित्व नहीं रखता। शासन का सब अधिकार प्रजा-द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि-सभा के हाथ मे है। जिसके दो भाग होते है—सीनेट और चैम्बर आफ़ डिपुटीज, दोनों सभाएँ संयुक्त बैठक मे सात साल के लिए राष्ट्रपति का चुनाव करती हैं, परन्तु उसके अधिकार सीमित होते हैं। वह किसी देश से संधि तो कर सकता है, लेकिन युद्ध घोषित नहीं कर सकता। सीनेट की राय लिये बिना वह दोनों सभाओं को भंग भी नहीं कर सकता।

फ्रांस की प्रतिनिधि सभा भी इंग्लैण्ड की तरह दो हिस्सों मे वॅटी हुई होती है। चैम्बर आफ़ डिपुटीज़ और सीनेट। दोनों के लिए क्रमशः २५ और ४० साल की उम्र के व्यक्ति ही उम्मीदवार हो सकते हैं। इस लिए सीनेट मे वयोवृद्ध पुरातन विचारों के प्रतिनिधि अधिक चुने जाते हैं। फ्रांस मे सीनेट को इंग्लैण्ड की रईसी सभा की अपेक्षा अधिक अधिकार हैं। 'चैम्बर आफ़ डिपुटीज़' या

लोकसभा मे ६१८ डिपुटी होते हैं और सीनेट मे ३१४ सदस्य। सीनेट का चुनाव परोक्ष रीति से होता है। दोनों सभाओं के सदस्यों को ६२००० फ्रैंक प्रति वर्ष और रेलवे के पास मिलते हैं प्रेजिडेण्ट को अपने और अपने आफिस के लिए ३६ लाख पौण्ड मिलते हैं।

बहुमत दल के नेता को प्रेजिडेण्ट प्रधान-मंत्री चुनता है। और उसके परामर्श के अनुसार शेष मंत्री भी नियत किये जाते हैं। फ्रांस मे इंग्लैण्ड की तरह संयुक्त उत्तरदायित्व नही है, अपितु प्रत्येक मंत्री अपने पद के लिये जिम्मेवार हैं।

इंग्लैण्ड की पार्लिमेण्ट मे दो दल अनुदार दल और मजदूर दल प्रमुख हैं, लेकिन फ्रांस मे बहुत से राजनैतिक दल है। कम्यूनिस्ट, सोशलिस्ट, स्वतंत्र, वामपक्षी, सोशलिस्ट व रिपब्लिक यूनियन, रैडिकल, रैडिकल सोशलिस्ट, वामपक्षी रिपब्लिक, डैमोक्रेटिक लैफ्ट, नेशनल रिपब्लिकन पार्टी आदि आदि। इन दलों के नामों का उनके राजनैतिक कार्यक्रम से कोई सम्बन्ध नहीं हैं। इतने अधिक दलो के होने का परिणाम यह होता है कि कोई एक दल अपने स्थायी बहुमत के बल पर मंत्रिमण्डल नही बना सकता। इस लिए और कई दलों का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है, परन्तु यह सहयोग स्थायी नहीं रहता और बीच मे तोड़-फोड़ होता रहता है। बहुत दफा इस तोड़-फोड़ के कारण मंत्रिमण्डल अल्पमत मे आ जाता है और उसे स्तीफ़ा देना पड़ता है। फिर नये जोड-तोड से एक मंत्रिमण्डल बनता है, परन्तु उसकी स्थायिता भी निश्चित नही है। १८७१ से वहां प्रजातंत्र शासन-पद्धति स्थापित है तब से लेकर अब तक १०६ सरकारे बदल चुकी हैं। एक मंत्रि-मण्डल के कार्य-काल की औसत सिर्फ आठ मास है।

फ्रांस का औपनिवेशिक साम्राज्य ब्रिटिश साम्राज्य के बाद सब से बड़ा है। अल्जीरिया, ट्यूनिस, मोरक्को, फ्रैंच सोमालीलैण्ड, पश्चिमी और भूमध्यरेखास्थित अफ्रीकन प्रदेश, मैडागास्कर, इण्डोचाइना, पाण्डिचरी इसके साम्राज्य में हैं। इनका क्षेत्रफल ४६,२०,००० वर्ग मील है। लेकिन जून १९४० में जर्मनी द्वारा फ्रांस की हार के बाद फ्रांस का समस्त ढांचा बिखर गया है। फ्रांस के एक बड़े प्रदेश पर जर्मनी का अस्थायी शासन है। जिस भाग पर जर्मनी का शासन नहीं है, वहाँ मार्शल पेताँ सर्वेसर्वा है। इसकी राजधानी पैरिस नहीं, विशी है। युद्ध के बाद विधान का नया रूप होगा और तभी फ्रांसीसी उपनिवेशों की भी अन्तिम स्थिति का निश्चय होगा, हाल ही मे विशी सरकार को सीरिया में मित्र राष्ट्रों से हार खानी पड़ी है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका

अमेरिका भी पहले इंग्लैण्ड का ही एक उपनिवेश था, लेकिन १७७६ में उसने घोषणा कर दी कि वह स्वतंत्र राष्ट्र है। इस घोषणा को पहले ब्रिटिश सरकार ने नहीं माना, युद्ध हुआ और अन्त में ६ साल बाद ब्रिटेन ने अमरीका की स्वतंत्रता स्वीकार कर ली।

अमेरिका की शासनपद्धति ब्रिटेन व फ्रांस की भाँति एकात्मक केन्द्रीय नहीं है, लेकिन संघात्मक है। वस्तुतः संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ४८ स्वतंत्र राज्यों और दो प्रदेशों का एक संघ है। ये सब राज्य या रियासतें अपने अपने आन्तरिक शासन में पूर्ण स्वतंत्र हैं। इन सब राज्यों के संघ में सम्मिलित होने के कारण ही इसे संयुक्त राष्ट्र अमरीका कहते हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका की प्रतिनिधि सभा कांग्रेस कहलाती है और उसके दो भाग हैं, जिन्हे सीनेट और हाउस आफ रिप्रेजेण्टेटिव्स कहते हैं। सीनेट मे प्रत्येक राज्य के दो सदस्य होते हैं, जिन्हे वहां की जनता ६ साल के लिए चुनती है। हाउस आफ रिप्रेजैण्टेटिव्स या लोकसभा मे ४३५ सदस्य चुने जाते हैं और इसकी अवधि दो साल होती है। सीनेट के एक तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष बदले जाते हैं। आर्थिक बिलों के सिवाय प्रत्येक बिल किसी भी सभा मे पहले पेश हो सकता है। आर्थिक बिल अनिवार्य रूप से लोकसभा मे पहले पेश करना चाहिए। किसी बिल को कानून बनाने के लिए दोनों सभाओं की स्वीकृति आवश्यक है। विधान मे कोई परिवर्तन तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि कांग्रेस के दो तिहाई सदस्यों के अलावा, तीन चौथाई अर्थात् ३६ राज्यों की व्यवस्थापक सभाओं की स्वीकृति प्राप्त न कर ली जाय।

दूसरे प्रजातंत्र देशों की तरह सं० रा० अमेरिका मे शासन कार्य चलाने की जिम्मेवारी मंत्रिमण्डल पर नहीं, प्रैजिडैण्ट पर है। फिर प्रैजिडैण्ट को प्रतिनिधि सभा से अधिकार नहीं मिलते। वह देश की समस्त जनता द्वारा चुना जाता है और उसी से संपूर्ण शक्ति सीधे प्राप्त करता है। अमेरिका मे मुख्यतया दो पार्टियाँ चुनाव लड़ती हैं—डैमोक्रेट और रिपब्लिकन। प्रैजिडैण्ट के अधिकार बहुत विस्तृत होते हैं। वह फ्रैंच राष्ट्रपति की तरह केवल नाम का राष्ट्रपति नहीं होता, उसके हाथ मे शासन के असीम अधिकार होते हैं, वह सचमुच शासक होता है। वही अपना प्रधान मंत्री भी है।

शासन कार्य की सुविधा के लिए सीनेट की स्वीकृति लेकर वह प्रत्येक महकमे का एक एक अध्यक्ष चुन लेता है, जो प्रतिनिधि सभा के प्रति नहीं, प्रैज़िडैण्ट के प्रति ही जिम्मेवार होता है । वह कांग्रेस के पास किये हुए बिल को अपने अधिकार से रद भी कर सकता है लेकिन कांग्रेस दो तिहाई मतों द्वारा उसके निर्णय को बदल सकती है। वह जो नई व्यवस्था आवश्यक समझता है, संदेश के रूप में कांग्रेस से उसे पास करने की सिफ़ारिश कर सकता है। वह सीनेट की सलाह से विदेशों से संधि भी कर सकता है। वही प्रधान सेनापति भी होता है। उसके नीचे ५ लाख के करीब सिविलियन शासनकार्य चलाते हैं। उसका वेतन ७५ हज़ार डालर वार्षिक है। उसका चुनाव चार साल के लिए परोक्ष विधि द्वारा—जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा होता है। कोई भी प्रेज़िडैण्ट दूसरी तीसरी बार भी, चुनाव के लिए खड़ा हो सकता है, लेकिन साधारणतया ऐसा होता नहीं । हाँ, प्रैज़िडेण्ट रूज़वेल्ट तीसरी बार भी चुने गये हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के शासन विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वहाँ शासन के तीनों अंग—शासक वर्ग, व्यवस्थापिका सभा और न्यायालय भली भाँति विभाजित हैं और उनके अपने अपने कर्तव्य क्षेत्र हैं। कांग्रेस द्वारा स्वीकृत किसी कानून को अवैधानिक कह कर रद करने का अधिकार सुप्रीम कोर्ट को है।

जर्मनी

गत महायुद्ध की समाप्ति पर जर्मनी के नेताओं ने जर्मन सम्राट कैसर के पदत्याग के बाद जिस नये प्रजातंत्र विधान की

स्थापना की थी, उसे 'वीमर विधान' कहते हैं। इसके अनुसार जर्मनी में बाकायदा प्रजातन्त्र की स्थापना की गई। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की तरह १७ स्वतन्त्र राज्यों का एक संघ बनाकर 'रीश स्टैग' नाम से एक व्यवस्थापिका सभा बनाई गई, जिसका प्रेजिडैण्ट सात साल के लिए जनता द्वारा चुना जाता था और वही मंत्रिमण्डल को नियुक्त करता था।

आजकल जर्मनी का कोई लिखित विधान नहीं है। यों वीमर विधान अभी तक बाकायदा खतम नहीं किया गया, और कानूनी किताब पर अब तक लिखा हुआ है। लेकिन आज अमल में वह नहीं आ रहा। नया विधान स्वयं विकसित हो गया है, जिसका स्वरूप संक्षेप से निम्न लिखित है—:

सब शक्तियाँ और सत्ता जर्मनी के नेता 'फ्यूरर' हर हिटलर में केन्द्रित है। वीमर विधान में प्रेजिडैण्ट और चॉसलर (प्रधान मंत्री) पृथक पृथक हुआ करते थे, लेकिन अब दोनों पद हिटलर ने एक साथ सँभाल लिये हैं। कोई नया कानून बनाना हो, किसी घरेलू या विदेशी समस्या का हल करना हो, उसकी इच्छा ही अन्तिम निर्णायक होगी। वह सब मंत्रियों और सहकारियों को नियुक्त करता है। वे अपने अपने महकमे की विभिन्न शाखाओं के नेताओं को मनोनीत करते हैं। हिटलर अपना उत्तराधिकारी भी नियत कर सकता है और उसे भी वही अधिकार प्राप्त होंगे, जो हिटलर को हैं।

रीश स्टैग में ८५५ सदस्य हैं, लेकिन पहले की तरह विभिन्न दलों के नहीं। अब जर्मनी में केवल एक राजनैतिक दल है और वह है

नैशनल सोशलिस्ट पार्टी या नाज़ी पार्टी। दूसरी कोई पार्टी संगठित ही नहीं हो सकती। यह रीश स्टैग यद्यपि आज भी विद्यमान है, लेकिन उसे कोई अधिकार नहीं है। उसके सदस्य सरकारी प्रस्तावों की आलोचना तक नहीं कर सकते और कोई कानून बना नहीं सकते। वस्तुतः सदस्यों का तो एक ही काम है कि वे समय समय पर हिटलर के भाषण को सुनकर हर्ष प्रकट कर दिया करें। कोई बजट या आय व्यय का हिसाब रीश स्टैग में पेश नहीं किया जाता और कर भी सरकार अपनी इच्छानुसार लगा लेती है। नाज़ी पार्टी ही सरकारी नीति का निर्माण करती है लेकिन उसका भी संगठन इसी तरह का निरंकुशतापूर्ण है। हिटलर उसका भी नेता है। इस पार्टी का संगठन देश भर में है प्रान्तों, ज़िलों, तहसीलों और गाँवों तक मे इसकी शाखाएँ फैली हुई हैं।

जर्मनी में नाज़ी दल के सिवा कोई दल नहीं है, न किसी को यह अधिकार है कि वह सरकार की आलोचना अखबारों या किताबों द्वारा कर सके। नाज़ी दल की निरंकुशता का आतंक समस्त देश में छाया हुआ है। नाज़ी सिद्धान्त* जनता के प्रभुत्व और शक्ति को तो मानता है, इस लिए उसे यह अधिकार देता है कि वह अपना नेता चुन ले, लेकिन जनता की योग्यता और बुद्धि पर उसे विश्वास नहीं, इस लिए नेता को पूरे अधिकार देने का समर्थन करता है। इसी प्रणाली को 'अधिनायकवाद' या डिक्टेटरशिप कहते हैं।

---

* नाज़ी सिद्धान्तों को समझने के लिए देखिये छठा अध्याय।

इटली

इंग्लैण्ड की तरह इटली मे भी राजा है और सब कार्य उसी के नाम से होता है। लेकिन इंग्लैण्ड और इटली के शासन मे जमीन आसमान का अन्तर है। पहले व्यवस्थापन आदि कार्य के लिए चेम्बर आफ डिपुटीज नाम से प्रतिनिधि सभा थी, लेकिन शनै. शनैः मुसोलिनी ने उसके अधिकार कम करते करते अन्त मे उसे खतम ही कर दिया। १६३४ मे इस चेम्बर ने नेशनल कौंसिल आफ कारपोरेशन को कानून बनाने के सब अधिकार सौंप दिये थे और १६३८ मे तो यह सस्था ही खतम हो गई।

फासिज़्म का लक्ष्य है राष्ट्रीय एकता और इस एकता को स्थापित करने के लिए इस देश मे सिर्फ एक दल की स्थापना, राष्ट्रीय शक्ति का अत्यधिक केन्द्रीकरण आवश्यक है। इसी लिए प्रजातंत्र पद्धति की आवश्यक शर्त विविध दलों मे फासिज़्म विश्वास नहीं करता, क्योंकि उसकी सम्मति मे विविध दल वितंडावाद को बढ़ा कर राज्य की शक्ति का अपव्यय करते हैं। इस एक पार्टी का लक्ष्य राष्ट्रीय एकता, दलभेद को वश मे रखना, श्रेणीयुद्ध न होने देना और राष्ट्र के विभिन्न प्रादेशिक स्वार्थों को बढ़ने न देना होना चाहिए।

इस समय इटली मे व्यवस्थापिका सभा का संपूर्ण काम एक राष्ट्रीय सभा करती है, जिसमे फासिस्ट पार्टी की नेशनल कौंसिल और कारपोरेशनों की नेशनल कौंसिल सम्मिलित होती हैं। इस राष्ट्रीय सभा के ८०० सदस्य होते हैं। यह सभा केवल सामान्य नीति की रूपरेखा तैयार करती है, विस्तार का काम

मंत्रिमण्डल पर छोड़ देती है। वही फरमान या आर्डिनैंस निकाल कर शासन करता है। इटली का वास्तविक शासन फ़ासिस्ट ग्राण्ड कौंसिल के हाथ में हैं। इस कौंसिल की सम्मति मंत्रिमण्डल को मान्य होती है।

मज़दूर संघों और मालिक संघों मे सारा इटली बँटा हुआ है। मज़दूरों और मालिकों के संघ मिलकर सब झगड़े तय करते हैं। १९२७ मे मुसोलिनी ने घोषणा की थी राष्ट्रीय संपत्ति उत्पन्न करने के सब साधनों—पूंजी और श्रम—के नियंत्रण का अधिकार राज्य को है। न मज़दूर हड़ताल कर सकते है और न मिल मालिक दरवाज़े बन्द कर सकते हैं। कारपोरेशनों पर भी फ़ासिस्ट पार्टी का पूरा नियंत्रण होता है। राज्य को जनता के प्रत्येक काम मे दखल देने का हक़ है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के विधानों की तरह नागरिक स्वाधीनता यहाँ नहीं है। जर्मनी की तरह यहाँ भी यहूदियों का विरोध किया जाता है और उन्हें अनेक नागरिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया है।

पिछले विधान की सीनेट (रईसी कौंसिल) अब भी क़ायम है, लेकिन इसका महत्त्व कुछ नहीं है। इसमे राजा की ओर से आजीवन ३५० सदस्य नियत किये जाते हैं, पर राजा भी प्रधान मंत्री की सम्मति से इनकी नियुक्ति करता है, इस लिए इसमे भी बहुमत फ़ासिस्टों का ही है।

इटली के साम्राज्य मे अबीसीनिया, इरिट्रिया और इटालियन सोमालीलैण्ड के अतिरिक्त लीबिया का विस्तृत प्रदेश है। इसका

योगफल १३४५००० वर्गमील है। लेकिन वर्तमान महायुद्ध मे इसके अनेक भागों पर ब्रिटिश सेनाओ ने अधिकार कर लिया है। अबी-सीनियन सम्राट् भी अपनी राजधानी में फिर वापस पहुँच गये है। अभी युद्ध जारी है, अन्तिम रूप से इसका क्या परिणाम होगा, यह नहीं कहा जा सकता। यूरोप के अलवानिया प्रदेश पर भी इटली का अधिकार है और यूगोस्लेविया तथा ग्रीस के पतन के वाद अन्य कई प्रदेश भी इटली मे मिला लिए गये हैं।

सोवियट रूस

सोवियट यूनियन या यूनियन आफ सोशलिस्ट सोवियट रिप-ब्लिक भी वस्तुतः संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और स्विटजरलैण्ड की तरह अनेक स्वतंत्र राज्यों का एक संघ है। इसमें ११ स्वतंत्र राज्य सम्मिलित हैं, जिन्हे संघ से अलग होने का अधिकार भी है।

१६१७ मे वोलशेविक क्रान्ति के वाद जो विधान वना था, उसके अनुसार किसानों और मजदूरों के स्थानीय संगठन ही जो अपने अपने गाँवों या शहरों मे पंचायत या म्यूनिसिपैलिटी का काम करते थे, शासन की मुख्य इकाई थी। इन्हे ही वहाँ सोवियट कहते हैं। गाँवों के सोवियट ज़िले की सोवियट का और जिले के सोवियट प्रान्त या राज्य की सोवियट का और प्रान्तों के सोवियट केन्द्रीय सोवियट का चुनाव करते थे। केन्द्रीय सोवियट द्वारा चुनी गई शासक समिति ही सारे शासन के लिए जिम्मेवार थी, यद्यपि डिक्टेटर को पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। इस विधान की एक विशेषता यह थी कि चुनाव का आधार था २५००० मजदूरों के पीछे एक प्रतिनिधि और १२५००० किसानों

के पीछे एक प्रतिनिधि। इस तरह से किसानों को मजदूरों से सिर्फ़ पाँचवाँ हिस्सा प्रतिनिधित्व प्राप्त होता था।

१९३६ में नया विधान बनाया गया है। उपर्युक्त सोवियट पद्धति और सोवियट कांग्रेस ख़तम कर दी गई है, यद्यपि नाम वही सोवियट कायम है अब छोटी सोवियटे बड़ी सोवियटों का न तो चुनाव करती हैं और न उन पर नियंत्रण करती हैं। अब छोटी बड़ी सब सोवियट सीधी जनता द्वारा चुनी जाती हैं। अन्य देशों मे जो स्थान पार्लिमेंट को है, वहाँ स्थान यहाँ सुप्रीम कौंसिल को है। इसके चुनाव मे मज़दूर और किसान सबको एक समान अधिकार है। सम्पन्न श्रेणी के कुछ अवशिष्ट व्यक्ति चुनाव मे अब भी भाग नहीं ले सकते। सुप्रीम कौंसिल के दो अंग हैं १—कौंसिल आफ़ यूनियन और २—कौंसिल आफ़ नैशनैलिटीज़। कौंसिल आफ़ यूनियन में प्रति तीन लाख निवासियों के पीछे एक प्रतिनिधि चुना जाता है और दूसरी कौंसिल मे प्रत्येक राज्य से २५ सदस्य।

यही सुप्रीम कौंसिल एक समिति चुनती है, जिसमें एक सभापति होता है और ११ सदस्य होते हैं। इस सभापति का पद अन्य राष्ट्रों के प्रैज़िडैण्ट के समान है। इस कौंसिल को प्रिसिडियम कहते है। इसे युद्ध करने, सुप्रीम कौंसिल को भंग करने, मंत्रिमण्डल के फैसले और आज्ञाओं को क़ानून विरुद्ध होने पर रद करने तक के व्यापक अधिकार प्राप्त होते हैं। शासन प्रबंध चलाने की ज़िम्मेवारी कौंसिल आफ़ पीपल्स कमिसर्स या मंत्रिमण्डल पर है, जिसकी नियुक्ति सुप्रीम कौंसिल करती है। इसका प्रधान ही प्रधान मंत्री होता है। अब

तक यह पद रूस का सर्वेसर्वा स्टालिन अपने पास न रखता था, वह बगैर किसी पद के लिए हुए ही रूस का शासन करता था, लेकिन मई १९४१ से उसने स्वयं प्रधान मंत्री का पद भी ले लिया है और इस तरह वह भी मुसोलिनी और हिटलर की श्रेणी में आ गया है, और बाकायदा जनता के प्रतिनिधियों से उसने सीधे शासनाधिकार प्राप्त कर लिये हैं।

सोवियट यूनियन की शासनपद्धति की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। विधान की पहली धारा में घोषणा की गई है कि यूनियन मजदूरों और किसानों की साम्यवादी हकूमत है। १२ वीं धारा में लिखा है कि जो मेहनत नहीं करेगा उसे खाने को भी नहीं मिलेगा। राज्य का कर्तव्य है कि वह सब को काम दे। वह जीवन निर्वाह पर काम देने की गारंटी भी करता है। इटली में फासिस्ट पार्टी और जर्मनी में नाजी पार्टी की तरह रूस में भी कम्यूनिस्ट पार्टी का बोलबाला है और वही सारी सरकारी मशीनरी का नियंत्रण करती है।

जापान

यदि हम जापान की विधान पुस्तक के द्वारा यह जानना चाहें कि उस की शासन पद्धति कैसी है तो हमें मालूम होगा कि पश्चिमी योरोप के पार्लमेंटरी राज्यों से उसकी शासनपद्धति भी मिलती जुलती है। वहाँ सम्राट् है, पार्लमैण्ट है और मंत्रिमण्डल है, पार्लमैंट में ही बजट पास होता है, अर्थात् पार्लमेंटरी पद्धति के जितने भी अंग और चिह्न होते हैं, वे सभी वहाँ दिखाई देते हैं लेकिन वस्तुतः दोनों में बहुत अन्तर है।

जापान के कानूनी विधान के अनुसार राजा का स्थान सर्वोच्च है। वह परमात्मा का पुत्र माना जाता है। उसे असीम अधिकार प्राप्त हैं। जापानी पार्लमेंट (टीकोकू-गिकाई) के दो भाग हैं। लोकसभा में ४६३ सदस्य होते हैं, जो वालिग़ मताधिकार द्वारा चार साल के लिये चुने जाते हैं, लेकिन स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त नहीं है। रईसी कौंसिल मे ४११ सदस्य होते हैं, जिनमें राजवंश के सदस्य, सम्पन्न कुलीनों के प्रतिनिधि या राजा द्वारा मनोनीत सदस्य होते है। इनमे से १६७ सदस्य आजीवन रहते हैं। किसी भी कानून का दोनों सभाओं मे पास होना वहुत ज़रूरी है। लेकिन यह एक ध्यान देने योग्य वात है कि अन्य पार्लमेण्टरी राज्यों की तरह जापान का मंत्रिमण्डल इस पार्लमेण्ट के प्रति जिम्मेवार नहीं है। वह सिर्फ़ राजा के प्रति जिम्मेवार है। सरकार की नीति का निर्माण भी पार्लमेंट मे नही होता।

जापान की इस अद्भुत पद्धति का मुख्य कारण यह है कि जापान की संस्थाओं का आधार बिलकुल भिन्न प्रकार की सामाजिक परम्पराओं और विचार शैलियों पर है। पार्लमेण्ट के नेताओ को पूर्ण अधिकार भी नहीं दिये गये। मंत्रिमण्डल के सम्राट् के प्रति उत्तरदायी होने का मतलब यह है कि सारा वजट वह लोग मंजूर करते हैं, जो सदा सम्राट् के आसपास रहते हैं। यों मंत्रिमण्डल वहुमत में से वनाया जाता है, लेकिन युद्ध-मंत्री इस दल मे से नहीं होता। युद्ध विभाग पार्लमेंट के नियंत्रण मे नहीं है, वह है सीधा सम्राट् के हाथ मे। जो युद्ध मंत्री चाहते है, पार्लमेंट को पास करना पड़ता है।

यदि कभी पार्लमेंट बजट को फेल कर दे, तो अन्य पार्लमेंटरी राज्यों की तरह से वहाँ सब कारोबार बन्द नहीं हो जाते, लेकिन पिछले साल का बजट तब तक काम देता रहता है, जब तक नया बजट मंजूर न हो। सम्राट् को पार्लमेंट की अनुमति के बगैर ऋण लेने का भी अधिकार प्राप्त है, जो युद्ध के खर्चों के लिये लिया जाता है और इस तरह सेना-विभाग पार्लमेंट के नियंत्रण से बिलकुल बाहर रहता है। मंचूरिया पर आक्रमण मंत्रिमण्डल से बिना पूछे ही किया गया था। जापान की अन्तर्राष्ट्रीय नीति का निर्माण प्रधान-मन्त्री या परराष्ट्र मंत्री नहीं करता, लेकिन युद्धमन्त्री करता है।

जापान के राजनैतिक दलों मे नीति या सिद्धान्तसम्बन्धी कोई बहुत बडा अन्तर नही होता। सेयुकाई और मिनसेइटो दो प्रमुख दल हैं। इनके अलावा एक फासिस्ट पार्टी (कोकुमिन डोमेई) भी है। लेकिन १९४० के आरम्भ मे फासिस्ट शासन प्रणाली प्रचलित होने पर मिन-सेइटो दल ने अपने आप को भंग कर डाला है। इस तरह जापान भी अब पूर्ण प्रजातंत्री राज्य नहीं रहा।

भारतवर्ष

भारत के शासन पर कुछ विस्तार से विचार करने की जरूरत है। ब्रिटिश भारत को शासन प्रबन्ध की दृष्टि से १५ छोटे बड़े प्रांतों मे विभक्त किया गया है।

सीमाप्रान्त, सिंध, पंजाब, संयुक्त प्रांत, बंगाल, आसाम, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रांत, मद्रास और बम्बई बड़े प्रांत है, जहाँ का शासन जनता द्वारा चुनी हुई कौंसिलों व असैम्बलियों द्वारा होता है।

बलोचिस्तान, अजमेर मेरवाड़ा, कुर्ग और दिल्ली छोटे प्रान्त हैं, जहाँ उत्तरदायी शासन का कोई तत्त्व नहीं है और भारत सरकार चीफ़ कमिश्नर द्वारा शासन और व्यवस्थापन के पूर्ण अधिकार अपने पास रखती है।

इनके अलावा भारत के भौगोलिक तटों से बाहर अण्डेमान और निकोबार के द्वीप भी हैं, जिनका शासन भारतीय सरकार के हाथ में है।

वर्तमान विधान के अनुसार भारतवर्ष के सम्बन्ध में अन्तिम निश्चय करने का अधिकार ब्रिटिश पार्लमेण्ट को है। वही शासन विधान का निर्णय करती है। भारत-मंत्री भारतसम्बन्धी शासन आदि के लिए पार्लमेंट के प्रति ही उत्तरदायी है। भारतमन्त्री की सलाह मशविरा देने के लिए एक कौंसिल बनी हुई है, जिसमे तीन भारतीय सदस्य अवश्य रखने होते हैं।

भारत सरकार का सब से प्रमुख व्यक्ति गवर्नर जनरल होता है। ब्रिटिश सम्राट् के प्रतिनिधि की हैसियत से उसे वायसराय भी कहते हैं। इसकी नियुक्ति पाँच वर्षों के लिए की जाती है। यह भारत के समस्त शासन के लिए पूर्ण उत्तरदायी है और इसके लिए इसे अमित अधिकार प्राप्त हैं।

केन्द्रीय शासन—भारतीय शासन के दो मुख्य भाग हैं—केन्द्रीय शासन और प्रान्तीय शासन। यों तो वायसराय केन्द्र और प्रान्त दोनों के लिए सर्वोच्च शासक है, लेकिन केन्द्रीय शासन प्रत्यक्षतः उसी के हाथ मे है। उसे शासन कार्य में सहायता देने के लिए कार्य—

समिति नियुक्त की जाती है। वायसराय ही इस समिति का प्रधान होता है। कमाण्डर-इन-चीफ़ भी इस समिति का सदस्य होता है। सेना और रक्षा के अलावा, देश का आन्तरिक प्रबन्ध रेलवे और व्यापार, व्यवसाय और श्रम, आय व्यय, कानून और शिक्षा, स्वास्थ्य तथा भूमि के महकमे क्रमशः इन सदस्यों के हाथ मे होते हैं।

किसी भी सरकार का शासन के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य होता है व्यवस्थापन या कानून बनाने का। भारत के वर्तमान विधान के अनुसार कानून बनाने का अधिकार निम्नलिखित को है—(१) वायसराय (२) केन्द्रीय असेम्बली और (३) कौंसिल आफ़ स्टेट।

किसी भी बिल के कानून बनने के लिए यह जरूरी है कि वह पहले उक्त दोनों व्यवस्थापक सभाओं द्वारा स्वीकृत हो और पीछे से उस पर वायसराय की मुहर लगे। बजट के अलावा और सब बिल पहले किसी भी सभा मे पेश किये जा सकते हैं लेकिन बजट पहले केन्द्रीय असेम्बली मे पेश करना जरूरी है। यदि एक भी व्यवस्थापिका सभा ने उसे स्वीकृत नहीं किया तो वह कानून नहीं बन सकता। लेकिन वायसराय को अमित अधिकार हैं। वह एक या दोनों व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा अस्वीकृत प्रस्ताव को अपने विशेषाधिकार से कानून बना सकता है और किसी भी स्वीकृत प्रस्ताव को अस्वीकृत कर सकता है। इतना ही नही, उसे किसी भी समय अपनी इच्छा से आर्डिनेंस निकाल कर ६ मास के लिए कोई कानून बनाने का अधिकार भी प्राप्त है।

व्यवस्थापिका सभाओं का संगठनः—केन्द्रीय असेम्बली

और कौंसिल आफ स्टेट में क्रमशः १४१ और ५८ सदस्य होते हैं। परन्तु ये सब जनता द्वारा निर्वाचित नहीं होते। दोनों मे क्रमशः ३६ और २६ सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं। इनके चुनाव मे मत-दाताओं की ऊँची योग्यता की शर्त के कारण इनका लोकप्रतिनिधित्व और भी कम हो जाता है। जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत ऊँची हो या शिक्षा बहुत ऊँची हो, वही इसके चुनाव मे भाग ले सकते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि मतदाताओं की संख्या समस्त आबादी के करीब ५ फ़ीसदी है। असेम्बली का कार्यकाल तीन वर्ष का है। लेकिन वायसराय को यह अधिकार है कि उसे पहले भी भंग करदे, या कार्यकाल बढ़ा दे। कौंसिल आफ़ स्टेट का कार्यकाल ५ वर्ष का है और इसके मतदाताओं की योग्यता और भी ऊँची है।

इन दोनों के व्यवस्थापक अधिकार सीमित हैं। बजट के बहुत से मदों पर इनकी राय भी नही ली जाती। वायसराय की कार्य समिति जिसके हाथ मे देश का शासनसूत्र होता है, इनके प्रति ज़िम्मेवार नहीं होती। बजट को फेल कर देने पर भी कार्य समिति के सदस्यों को स्तीफा देने की ज़रूरत नहीं।

नया विधान—१९३५ के नये शासनविधान के अनुसार भारतीय शासन मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किया गया। इसके दो मुख्य भाग थे। एक तो केन्द्र से सम्बंध रखता था और दूसरा प्रान्तों से सम्बंध रखता है। इस विधान का दूसरा भाग नये प्रान्तीय शासन के रूप मे १९३७ से अमल मे भी आगया। लेकिन केन्द्रीय भाग विभिन्न बाधाओं के कारण अमल में न आ सका और अब तो यह निश्चित सा हो

गया है कि वह अमल मे आवेगा भी नहीं। परन्तु फिर भी भारत के वैधानिक इतिहास मे वह क़ानून वहुत महत्त्वपूर्ण है। उसकी कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

१. नये शासनविधान ने भारतीय शासन को केन्द्रीय शासन की बजाय संघशासन का रूप दिया। इसके सब विभाग अपने अपने क्षेत्र मे पर्याप्त स्वतंत्र हैं।

२. अब तक केंद्रीय शासन सिर्फ़ ब्रिटिश भारत तक सीमित था। लेकिन अब संघीय असेम्बली और कौंसिल आफ़ स्टेट में रियासतों के प्रतिनिधि भी शामिल किये जाने का निश्चय हुआ। रियासतों के एक तिहाई सदस्य रखे गये।

३. अनुत्तरदायी शासन की अपेक्षा नये विधान में रक्षा, वैदेशिक सम्बंध, धार्मिक विभाग, और कबीला क्षेत्रों के शासन के सिवा शेष महकमे जनता के प्रतिनिधि मंत्रियों के हाथ मे सौंप दिये। इन मंत्रियों को प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया।

४. मनोनीत सदस्यों की प्रथा बिलकुल खतम हो गई। सिर्फ कौंसिल आफ स्टेट मे ६ सदस्य मनोनीत करने का अधिकार सरकार को दिया गया।

५. मंत्रियों का वेतन स्वयं नियत करने का अधिकार व्यवस्थापिका सभा को दिया गया।

६. वायसराय या गवर्नर जनरल के अधिकार इस विधान मे भी असीम थे। देश मे शान्ति और व्यवस्था स्थापित रखना, सरकारी कर्मचारियों तथा देशी नरेशों के हितों की रक्षा करना, अल्पमत

की भारतीय जातियों के अधिकारों और अंग्रेज़ी व्यापार को सुरक्षित रखना, आर्थिक स्थिरता आदि बातें वायसराय के अधीन रहीं। व्यवस्थापिका सभा से पास किये गये बिलों को रद करने और स्वीकृत बिलों को पास करने का अधिकार पहले के ही समान इस विधान मे भी स्वीकृत किया गया। आर्डिनैंस जारी कर सकने और आवश्यकता अनुभव करने पर मंत्रिमण्डल या व्यवस्थापिका सभा के बिना भी शासन का पूर्ण संचालन करने का अधिकार भी उसे दिया गया।

७. दोनों व्यवस्थापिका सभाओं को निम्नलिखित विषयों पर क़ानून बनाने का अधिकार दिया गया—१. भारत की आन्तरिक रक्षा, २. बाह्य मामले, ३. मुद्रा, ४. भारतीय रेलवे, ५. डाक और तार, ६. तटकर और ७. इन्कमटैक्स।

८. दोनों व्यवस्थापिका सभाओं का चुनाव सांप्रदायिक या जातिगत रखा गया था, जिसका आधार सांप्रदायिक निर्णय* था।

---

*ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान मंत्री रैम्से मैकडेनल्ड ने १९३२ मे भारत की विभिन्न जातियों के लिए विभिन्न धारा सभाओं मे एक फैसले द्वारा अनुपात नियत कर दिया था। इसके अनुसार हिन्दू, दलित हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, ऐंग्लो इण्डियन और यूरोपियनों को अपनी अपनी जाति मे से पृथक् चुनाव का अधिकार दिया गया है। स्त्रियों में भी सॉप्रदायिक चुनाव की परिपाटी डाल दी गई। इसके अनुसार भिन्न भिन्न प्रान्तों की व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों की संख्या उस प्रान्त की भिन्न भिन्न जातियों की संख्या के अनुसार हिन्दू, दलित हिन्दू, पिछड़ी जातियॉ, मुसलमान, भारतीय ईसाई योरोपियन आदि में बॉट दी गई।

रियासती प्रतिनिधियों का जनता द्वारा निर्वाचन या नामजदगी रियासती राजाओं पर छोड़ा गया था।

९. १९३५ के शासनविधान का वहुत महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त था प्रान्तों मे गवर्नरों के विशेपाधिकारों और शक्तियों के साथ पूर्ण स्वराज्य।

प्रान्तीय शासन

सन् १९३५ के शासनविधान के अनुसार ब्रिटिश भारत के ११ वड़े प्रान्तों को स्वशासन या स्वराज्य का अधिकार दिया गया है।

प्रान्तीय शासन का मुखिया सम्राट् की ओर से गवर्नर होता है। वह जनप्रतिनिधि मंत्रियों की सलाह से शासन करता है। गवर्नर जनरल की भाँति गवर्नरों को भी प्रान्त मे शान्ति कायम रखने तथा अल्पमतों के अधिकारों की रक्षा के लिए विशेपाधिकार दिये गये हैं। संपूर्ण मंत्रिमण्डल को वरखास्त करके वह प्रान्त के शासन की वागडोर सीधे तौर से अपने हाथ मे ले सकता है। उसे आर्डिनेंस जारी करने का अधिकार भी है।

सिविल सर्विस के कर्मचारियों के अधिकारों को सुरक्षित रखना, शासन क्षेत्र मे ग्रेटब्रिटेन के प्रति अनुचित विरोध से रक्षा करना, भारतीय रियासतों के गौरव तथा अधिकारों की रक्षा करना तथा

महात्मा गांधी ने हिन्दू और दलितों को अलग अलग करने पर उपवास किया और उसके बाद यह निश्चय हुआ कि हिन्दू और दलितों की सीटें मिला दी जावें और दलितों द्वारा चुने गये चार प्रतिनिधियों मे से फिर सम्मिलित चुनाव हो। यही पूना पेक्ट कहलाता है।

गवर्नर जनरल की अपनी ज़िम्मेवारी और समझ पर दी गई आज्ञाओं का पालन करना भी गवर्नर की ज़िम्मेवारियों में शामिल हैं। गवर्नर को अपने विशेषाधिकारों का कैसे प्रयोग करना चाहिए, इसके लिए पार्लिमेंट एक हिदायतनामा बनाती है।

मंत्रिमण्डल—१९३५ के शासनविधान के पूर्व प्रान्तों में कुछ विभाग गवर्नर अपने पास रखता था और कुछ विभाग हस्तान्तरित कर दिये गये थे। लेकिन अब कोई सुरक्षित विभाग नहीं है। अब मंत्रिमण्डल व्यवस्थापिका सभाओं मे निर्वाचित सदस्यों के बहुमतदल के नेता द्वारा अपने दल मे से चुना जाता है। मंत्रिमण्डल व्यवस्थापिका सभा के प्रति पूर्ण उत्तरदायी है। इस का वेतन भी वही नियत करती है। किसी भी स्थिति में अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर या बजट की रकमें फेल कर देने पर मंत्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है।

प्रान्तीय सरकार के अधीन मुख्य विभाग ये हैं:—शिक्षा; स्थानीय स्वराज्य, चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, लगान, दुर्भिक्ष-निवारण, कृषि, आबपाशी, उद्योगव्यवसाय पुलिस तथा न्याय। मंत्रिमण्डल के विभिन्न सदस्यों में ये महकमे बँटे हुए होते हैं और वे अपने अपने विभाग के मुख्य शासक होते हैं। छोटे बड़े प्रान्तों के अनुसार मंत्रियों की संख्या भी तीन से लेकर ११ तक होती है।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाएँ—प्रान्तीय स्वराज्य का सबसे मुख्य अंश यह है शासनसंबंधी नीति निर्धारित करने, टैक्स लगाने,

आयव्यय स्वीकार करने और कानून बनाने के सब अधिकार जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों को सौंप दिये गये हैं। १९३५ के विधान से पूर्व प्रान्तीय असेम्बलियों मे सरकार द्वारा मनोनीत सदस्यों की संख्या काफ़ी होती थी, लेकिन अब एक भी सदस्य मनोनीत नही होता।

१९१९ के एक्ट के समय जनसंख्या के केवल तीन प्रतिशत को वोट देने का अधिकार था, लेकिन अब मताधिकार कुछ व्यापक कर दिया गया है और १४ प्रतिशत जनसंख्या को मताधिकार मिल गया है। प्रातीय व्यवस्थापिका सभाओं का चुनाव भी सांप्रदायिक निर्णय के आधार पर पृथक चुनाव की पद्धति से होता है। इस तरह से व्यवस्थापिका सभाएँ यद्यपि पहले की अपेक्षा काफ़ी लोकप्रतिनिधि हो गई हैं, तथापि ८६ फीसदी जनता का अब भी अपने देश के शासन मे कोई भाग नही होता है।

सब प्रातों मे व्यवस्थापक सभा के एक से नियम नहीं हैं। मद्रास-बम्बई, बंगाल, संयुक्तप्रात, आसाम तथा बिहार मे दो हाउस हैं—असेम्बली और कौंसिल अथवा लोक सभा और रईसी सभा। लेकिन पंजाब, मध्य प्रांत, उड़ीसा, सिंध और सीमाप्रात मे एक एक ही व्यवस्थापिका सभा है। असेम्बली का कार्यकाल पॉच वर्ष है, उसके बाद नया चुनाव करना होगा, लेकिन कौंसिल या रईसी सभा के लिए कोई कार्य-काल नियत नहीं किया गया। प्रति तीन वर्षों के बाद इस भवन के एक एक तिहाई सदस्य अवसर प्राप्त किया करेंगे और उनकी जगह नया चुनाव होगा।

दोनों हाउस अपना सभापति आप चुनते हैं। असेम्बली और कौंसिल मे यदि किसी प्रश्न पर मतभेद हो जावे, तो गवर्नर इन दोनों का संयुक्त अधिवेशन कर उस पर मत लेता है और सम्मिलित निश्चय को कार्य रूप में लाता है। पर यदि कौंसिल के प्रस्ताव को असेम्बली अस्वीकृत कर दे तो उसके लिए दोनों का संयुक्त अधिवेशन नहीं किया जाता। कोई भी बिल या प्रस्ताव किसी भी सभा में पहले पेश हो सकता है, पर बजट नही। वह पहले असेम्बली में ही पेश होगा और उसे रईसी कौंसिल रद्द भी नहीं कर सकती।

यों प्रान्तीय सभाओं के अधिकार काफ़ी विस्तृत हैं, लेकिन गवर्नरों के असीम अधिकारों के कारण वे काफ़ी सीमित हो गये हैं। कोई बिल तब तक कानून नहीं बन सकता, जब तक कि उस पर गवर्नर के हस्ताक्षर न हो जावें। गवर्नर किसी बिल को (क) स्वीकार कर सकता है या (ख) गवर्नर जनरल के पास विचारार्थ भेज सकता है अथवा (ग) सभाओं को पुनर्विचारार्थ वापस कर सकता है। गवर्नर आवश्यकता पड़ने पर ६० सैक्शन के अन्तर्गत अपनी ओर से कानून भी जारी कर सकता है। वह मन्त्रियों के कार्यों मे भी हस्तक्षेप कर सकता है।

रियासतें—भारत का एक तिहाई भाग रियासतों ने घेरा हुआ है। भारत मे करीब ५६० रियासतें हैं। इन्हें हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। (१) ऐसे देसी राज्य, जिनका सीधा सम्बन्ध वायसराय से है। इनमें से प्रत्येक मे एक रैज़ीडैण्ट रहता है। हैदराबाद, मैसूर, बड़ौदा, और काश्मीर ऐसी ही रियासतें हैं। (२) कुछ

राज्यों का वर्गीकरण अलग अलग समूहों अथवा एजेंसी मे कर दिया है और उनका सम्बन्ध अपनी एजेंसी के एजण्ट टू दी गवर्नर जनरल से रहता है। राजपूताना, मध्य भारत, बलोचिस्तान की तीन एजेन्सियों मे कुल मिला कर ४६ छोटी छोटी रियासते हैं। (३) प्रान्तीय सरकारों के अधीन रियासते ५०० के लगभग हैं।

ये रियासतें स्वतंत्र सत्ता नहीं रखती। इन की बाहरी आक्रमणों से रक्षा की गारण्टी ब्रिटिश सरकार देती है। वैदेशिक सम्बंधो के बारे मे भी ये ब्रिटिश सरकार के मातहत हैं। भारत सरकार इन रियासतों के आन्तरिक मामलों मे कुशासन, अव्यवस्था आदि के नाम पर समय समय पर हस्तक्षेप करती रहती है। वे सम्राट् को अपना शासक स्वीकार करती हैं, परन्तु आन्तरिक शासन व अन्दरूनी मामलो मे ये रियासतें स्वतंत्र हैं। प्रायः सब रियासतों मे राजा के ही हाथ मे सर्वोच्च सत्ता है। किसी किसी रियासत में प्रजासभा आदि के नाम से असेम्बली बनाकर प्रतिनिधितंत्र की ओर पहला कदम उठाया गया है। राजाओं का आपसी विचारविनिमय नरेन्द्रमण्डल मे होता है, लेकिन अभी तक अनेक बड़ी बड़ी रियासतों ने नरेन्द्रमण्डल को स्वीकार नहीं किया। इस मण्डल का प्रेज़िडैण्ट वायसराय होता है।

१६३५ के नये संघ शासनविधान मे कुछ रियासतों ने संघ मे शामिल होना स्वीकार कर लिया था, लेकिन पीछे से राजाओं ने इस पर इतने एतराज उठाये कि सरकार के लिए भी एक समस्या बन गई। अब तो संघविधान समाप्त ही हो चुका है।

कुछ प्रमुख रियासतों के नाम ये हैं :—जम्मू, काश्मीर हैदराबाद, जोधपुर, मैसूर, ग्वालियर, उदयपुर, इन्दौर, बड़ौदा, ट्रावनकोर, कोचीन, पटियाला, बीकानेर, जयपुर।

फ़ैडरल कोर्ट—यद्यपि संघविधान अमल मे नहीं आया, तथापि उससे सम्बद्ध दो और संस्थाएँ अमल में आ गईं। इनमे से एक है फ़ैडरल कोर्ट और दूसरी है रिज़र्वबैंक। फ़ैडरल कोर्ट का शासन एक चीफ़ जस्टिस के अधीन है। आजकल सर मारिस ग्वायर चीफ़ जस्टिस हैं। चीफ़ जस्टिस की सहायता के लिए ६ अन्य जज भी रह सकते हैं। लेकिन आजकल अभी काम अधिक न होने के कारण सिर्फ़ तीन जज हैं। हाईकोर्टों के कतिपय निर्णयों के खिलाफ़ अपीलें सुनने के अतिरिक्त प्रान्तों के आपस के झगड़ों का निर्णय करना भी इसी कोर्ट का काम है। केन्द्रीय सरकार व प्रान्तीय सरकार में विवादग्रस्त प्रश्नों पर भी इसी का अन्तिम निर्णय होता है। इसके अलावा विभिन्न क़ानूनी प्रश्नों पर फ़ैडरल कोर्ट वायसराय या गवर्नर जनरल को वस्तुस्थिति का परिचय देता है। विधानसंबधी संदिग्ध धारा का स्पष्टीकरण भी फ़ैडरलकोर्ट करेगा।

रिज़र्व बैंक—रिज़र्व बैंक की स्थापना नये विधान की प्रारम्भिक शर्त थी। इसकी स्थापना १६३५ में हुई। केन्द्रीय सरकार व इम्पीरियल बैंक के प्रायः सब अधिकार और कार्य इसे सौंप दिये गये हैं। यह नोट जारी कर सकता है और मुद्रा का नियंत्रण कर सकता है। यह भारत सरकार तथा दूसरे बैंकों का बैंक हैं। देश की आर्थिक साख रखना तथा बैंकों की नीतिनिर्धारण, रुपये और स्टर्लिंग का

विनिमय दर स्थिर रखना, बैंकरेट कायम रखना और खेती के लिए क्रैडिट डिपार्टमैण्ट की स्थापना आदि इसके मुख्य कार्य हैं। रिजर्व बैंक पर भारत मंत्री का नियंत्रण है।

फ़ैडरेशन या संघ विधान जारी करने से पूर्व रेलवे अथारिटी कायम करने की शर्त भी इण्डिया एक्ट मे रखी गई थी, लेकिन वह अभी तक स्थापित नहीं हुई। इसका कार्य रेलवे को व्यापारिक सिद्धान्तों के अनुसार चलाना था। संघ शासन का इस पर कोई अधिकार नही रखा गया था, यद्यपि गवर्नर जनरल को इस पर पूर्ण अधिकार दिया गया था।

पाँचवाँ अध्याय

व्यापार और नई अर्थनीति

मानव जाति के इतिहास के साथ साथ उसका आर्थिक जीवन भी प्रारंभ होता है। कोई समय था, मनुष्य को अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की चिन्ता न करनी पड़ती थी। वह शिकार करता या जंगल के फलादि खाकर अपना गुज़ारा करता था। लेकिन शनैः शनैः उसमें दुख सुख के समय के लिए संचय की प्रवृत्ति हुई। पारिवारिक प्रथा के विकास के साथ साथ श्रमविभाग भी शुरु हुआ। इस श्रमविभाग के विकास के साथ साथ भिन्न भिन्न व्यक्ति एक एक पदार्थ तैयार करने की ओर ध्यान देने लगे और पदार्थों की अदल बदल से अपनी अपनी ज़रूरत पूरी करने लगे। बस, इसी समय से व्यापारिक लेन देन या कारोबार प्रारंभ हुआ।

ज्यों ज्यों मानव जाति सभ्य होती गई, उसका आर्थिक जीवन भी विकसित होता गया। मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ने के साथ साथ नई नई चीज़ें तैयार होने लगीं, नये नये धंधे पनपने लगे। ज्यों ज्यों मनुष्य के सामने नई नई समस्याएँ आती गईं, वह उनका हल भी निकालता गया। मध्ययुग मे भी व्यापारिक उन्नति काफी बढ़ चुकी थी। लोग नौकाओं और छोटे छोटे जहाज़ों पर हज़ारों मील का सफ़र करके व्यापार करते थे। लेकिन आर्थिक जीवन में वर्तमान युग का श्रीगणेश पूँजीवाद और मशीनरीवाद के समन्वय से हुआ।

औद्योगिक क्रान्ति ने संसार के इतिहास पर महान् प्रभाव डाला है। मशीनों से पहले संसार की सभ्यता श्रमप्रधान थी, सादा जीवन था, लोग अपने अपने गावों में रहते थे और खेती बाड़ी करके या दूसरे घरेलू धंधों द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते थे, लेकिन मशीनों ने आकर हज़ारों लाखों कारीगरों का रोजगार छीन लिया। कारीगर और किसान गाँव छोड़ छोड़ कर मजदूरी करने शहर आने लगे। वे स्वतंत्र न रहे, उनके पास पैसा न रहा, वे मिलों में मजदूरी करने पर विवश हो गये। जब भागने का कोई मार्ग नहीं रहता, तब चूहा भी शौक से बिल्ली के मुँह मे जाता है। मिलों का एक बड़ा भारी परिणाम यह हुआ कि माल की पैदावार बढ़ गई। अब उसे बेचने के लिए बाजार तलाश होने लगे और उन बाज़ारों में मुकाबले से बचने के लिए उन देशों पर राजनैतिक प्रभाव कायम रखने की ज़रूरत महसूस होती गई। यहीं से वर्तमानकालीन साम्राज्यवाद का जन्म होता है। यह साम्राज्यवाद कैसे उत्पन्न हुआ, यह अपने साथ कौन कौन सी भीषण समस्याएँ लाया और अब साम्राज्यवाद का क्या भविष्य है, इत्यादि पर हम आगामी अध्याय मे प्रकाश डालेंगे। यहाँ तो सिर्फ उसके आर्थिक पहलू पर ही प्रकाश डालना चाहते हैं।

अहस्तक्षेप की नीति—औद्योगिक क्रान्ति के प्रारंभ के साथ ही हम एक नयी श्रेणी को संसार के रंगमंच पर आता देखते हैं। यह श्रेणी पूँजीपतियों की है। इसने आकर अपने धन और कौशल के बल से राजनीतिक संस्थाओं पर भी अधिकार कर लिया। इस लिए

जो नये कानून बने, उनके मूल मे यह भाव रहता कि व्यावसायिक उन्नति को धक्का न लगे। बड़े बड़े विश्वविद्यालयों में विद्वान् अर्थशास्त्रियों ने जिन आर्थिक नियमों या सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, उनके मूल मे भी यही भाव काम करता था। समस्त राष्ट्र की शिक्षा, प्रचार और राजनियमों पर इस नई शक्ति का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव ज़ोरों से पड़ रहा था। यों किसी भी राष्ट्र का फ़र्ज़ है कि वह अपने नागरिकों के दुःख सुख का खयाल रखे, लेकिन दखल न देने (Laissez-Faire) के नये सिद्धान्त के अनुसार सरकार को कहा गया कि कारखानों के बारे मे सरकार को दखल देने का कोई हक़ नहीं है। प्रत्येक नागरिक स्वतंत्र है। नागरिक स्वाधीनता के नाम पर ही सरकार को रोका गया कि वह मज़दूरों के काम के घण्टे, वेतन आदि प्रश्नों के झंझट मे न पड़े। इस के पक्ष मे सब से बड़ी दलील यही दी गई कि—मिलों मे हम किसी को ज़बर्दस्ती काम के लिए बाधित नहीं करते हैं। हमारी शर्ते जिसे स्वीकार हों, वह काम करे, जिसे स्वीकार न हों, वह काम न करे। दख़ल न देने का यह मत बहुत समय तक प्रचलित रहा, लेकिन ज्यों ज्यों मज़दूरों मे जागृति आती गई, उनका संगठन बढ़ता गया, त्यों त्यों यह मत भी क्षीण होता गया और सरकारें कारख़ानों पर नियंत्रण करने लगीं।

मुक्तद्वार व्यापार—इसी तरह से अर्थशास्त्रियों ने एक और नये सिद्धान्त का आविष्कार किया कि व्यापार के स्वाभाविक विकास के लिए यह ज़रूरी है कि एक दूसरे देश के माल पर तटकर न लगाये जावें। ग्राहकों को अच्छा साफ़ माल मिलना चाहिए,

इसके लिए प्रतिस्पर्धा कायम रहनी चाहिए। इसके मूल में भी कहीं दखल न देने का सिद्धान्त काम कर रहा था। यह मुक्तद्वार सिद्धान्त भी बहुत समय तक चला, लेकिन आज यह सिद्धान्त भी अतीत की वस्तु बन गया है। इसी तरह नई नई आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं के साथ साथ नये नये आर्थिक सिद्धान्त और नये नये हल निकलते गये। आज संसार में जो नई आर्थिक विचार-धाराएँ और प्रवृत्तियें चल रही हैं, वे पहले से बिलकुल भिन्न हैं। लेकिन उनपर विचार करने से पहले यह जरूरी है कि हम यह देखें कि विविध देशों में व्यापार का आपसी लेनदेन कैसे होता है।

व्यापार और विनिमय—जिस तरह हमारे अपने शहर या देश में पैसे के द्वारा व्यापारिक लेनदेन होता है, उसी तरह संसार के विविध देशों में भी हो सकता है और विशेष कर आज के युग में जब कि वैज्ञानिक साधनों ने समस्त संसार को एक बड़ा बाजार या मंडी बना दिया है। लेकिन ऐसा होता नहीं। इसका मुख्य कारण यह है कि सभी देशों की सरकारें अपनी स्थिति और आवश्यकता के अनुसार अपनी अपनी मुद्रा चलाती हैं और ये सिक्के अलग अलग कीमतों के होते हैं। अमेरिका का डालर तीन रुपये के बराबर होता है और इंग्लैंड का स्टर्लिंग १३॥ रु० के बराबर है। फिर इन सिक्कों की कीमत भी हमेशा बदलती रहती है। किसी देश में मुद्रा या उसकी धातु की मांग अधिक हो तो कीमत बढ़ जाती है, मांग कम हो तो कीमत कम हो जाती है। भारत में चांदी का रुपया चलता है। चांदी महँगी हो गई, तो विदेशों के लिये रुपये की कीमत बढ़ गई।

सरकार नोट ज़्यादा चला दे, तो नोट की कीमत कम हो जाती है। जर्मनी में एक दफ़ा नोट इतने अधिक छाप दिए गए थे कि एक रोटी एक लाख मार्क नोटों में बिकने लगी । नोट जितने छापे जावें उस हिसाब से सोना या चाँदी भी सरकार को अपने पास रखना चाहिए अन्यथा सरकार की साख गिर जाती है । नोट भी तो आखिर एक हुंडी है। उस कागज़ के टुकड़े की कीमत इसीलिए तो है कि उसके दिखाने पर सरकार से सोना या चांदी का सिक्का मिलने का विश्वास रहता है। उसके भुगतान के लिये धातु का सिक्का तो अवश्य पास होना चाहिए।

विदेशों की मुद्रा की कीमतें विभिन्न होने और समय समय पर बदलते रहने के कारण अंतर्राष्ट्रीय लेन देन मे बड़ी कठिनता होती है। इसलिए आपसी लेनदेन से पहले विभिन्न देशों की मुद्राओं की कीमत तय कर ली जाती है। इन कीमतों के निर्धारण को "विदेशी विनिमय" कहते हैं। मुद्राओं का आपसी मूल्य नापने के लिए सोने का नाप रक्खा गया है और विदेशी व्यापार मे सारा भुगतान सोने मे होता है । भुगतान का सारा काम करने के लिए विनिमय बैंक (Exchange banks) खुले होते हैं । इनका काम है एक देश की मुद्रा को दूसरे देश मे तबदील करना। एक भारतीय व्यापारी ने १०००) रु० का माल इंग्लैंड मे बेचा। अंग्रेज व्यापारी तो रुपये की जगह पौंडों मे कीमत चुकायगा। यह बैंक उन पौंडों के बदले १०००) रु० भारतीय व्यापारी को दे देंगे।

१९३१ में इंग्लैंड ने स्वर्णमान छोड़ दिया अर्थात् बैंक ऑफ़

इंगलैंड ने नोटों के बदले सोना देना बंद कर दिया। ऐसा करते ही उसके स्टर्लिंग या कागजी पौंड की कीमत कम हो गई। विदेशी विनिमय अब भी सोने में होता है और इसके लिए हर एक देश के केन्द्रीय बैंक अधिकाधिक सोना जमा करने की कोशिश करते हैं।

आत्मनिर्भरता

आजकल जो मुख्य मुख्य नई विचार धाराएं और प्रवृत्तियें चल रही हैं, उनके अधिकांश के मूल मे एक ही भाव काम कर रहा है और वह है आत्मनिर्भरता या स्वावलम्बन का। हम ऊपर कह आये हैं कि औद्योगिक क्रान्ति के प्रारंभिक युग मे दखल न देने और मुक्तद्वार वाणिज्य के सिद्धान्त बहुत प्रचलित हो गये थे। इसके अनेक लाभ हुए। प्रत्येक देश को अपने अपने व्यावसायिक विकास के लिए बहुत अधिक प्रयत्न करना पड़ा। सबका उद्देश्य था कि वे बिना किसी बाहरी सहायता के दूसरे के मुकाबले मे अच्छा और सस्ता माल बेच सकें। जो देश जिस व्यवसाय मे आगे हुआ, उसने बाकी सब धन्धों को छोड़ कर उसी को बढ़ाना शुरू किया। इसका फल यह हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार खूब बढ़ गया। आयात और निर्यात के अंकों पर ही किसी देश की समृद्धि मापी जाने लगी।

इस नीति का कुछ ही वर्षों बाद यह परिणाम देखा गया कि अधिक सम्पन्न और अधिक उन्नत देशों ने बहुत से उद्योग धन्धों पर कब्जा कर लिया है, कुछ देशों के उद्योग धन्धे शिथिल हो रहे हैं और उन देशों मे बेकारी बहुत बढ़ने लगी है। जनता इस समय तक

जागृत हो चुकी थी और सरकारें दखल न देने की नीति छोड़ने पर बाधित होने लगी थीं। इसलिए स्वावलम्बन या आत्मनिर्भरता का विचार प्रत्येक राष्ट्र के सामने आने लगा कि सब धंधे खुद अपने देश मे ही बढ़ाये जावें और किसी भी वस्तु के लिए दूसरे पर आश्रित न रहा जावे। बहुत संभव था कि यह नया विचार केवल विचारक्षेत्र तक सीमित रहता या अमल में बहुत देर बाद आता, लेकिन यूरोप के गत महायुद्ध ने संसार के राष्ट्रों को एक नयी शिक्षा दी और यह नया अनुभव इतना जबर्दस्त था कि प्रत्येक देश को अपने पुराने लोक-प्रचलित सिद्धान्त छोड़ने पर विवश होना पड़ा।

युद्ध और आत्मनिर्भरता— गत महायुद्ध के दिनों में अन्त-र्राष्ट्रीय व्यापार नष्ट हो गया। बाहर से जीवनोपयोगी पदार्थ भी मिलने बन्द हो गये। शत्रु राष्ट्रों के आर्थिक घेरे की नीति ने इसमे और भी सहायता पहुँचाई। जर्मन जनता का साहस और आत्मविश्वास भूख ही ने नष्ट कर दिया था। रूस की बोलशेविक क्रान्ति के समय भी उसका आर्थिक बहिष्कार किया गया। और पिछले दिनों अबीसीनिया पर आक्रमण के समय इटली पर आर्थिक घेरा डालने का प्रयत्न किया गया। इन सब बातों ने प्रत्येक राष्ट्र को नई दिशा मे सोचने के लिए बाधित कर दिया। प्रत्येक राष्ट्र इस प्रयत्न मे लगा कि वह अपनी ज़रूरतें स्वयं पूरा करने का प्रयत्न करे। ग्राहकों को दुनिया मे कहीं से भी सस्ते से सस्ता माल मिलने का सिद्धान्त पुराना हो गया। जुलाई १९३७ मे फील्ड मार्शल गोरिंग ने कहा कि अपनी ज़रूरतों के लिये विदेशी शक्तियों की सद्भावना पर आश्रित रहना सहन नहीं किया जा

सकता। १६ नवम्बर १६३५ को जिस दिन, इटली पर आर्थिक घेरा डाला गया, मुसोलिनी ने घोषणा की कि आज के दिन इटली के इतिहास मे एक नया अध्याय शुरू होता है। इटली ने आज यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि वह कम से कम समय मे अधिक से अधिक आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त कर लेगा। हिटलर ने जर्मनी के अपने पैरों पर खड़ा होने के प्रयत्नों की सफलता की चर्चा करते हुए गर्वपूर्वक घोषणा की कि जर्मनी पर आर्थिक घेरा डाल कर उसे असहाय और विवश करने का प्रयत्न अब सदा के लिए असफल सिद्ध होगा। रूस ने भी अपने पिछले अनुभव से स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनने का दृढ निश्चय कर लिया। जो देश अब तक कृषिप्रधान थे, उनमे भी अपनी ज़रूरते स्वयं पूरी करने का भाव उत्पन्न हुआ और वहाँ नये नये उद्योग धन्धे खुलने लगे। सब राष्ट्रों में यह आवाज़ आने लगी कि कोई राष्ट्र तब तक स्वतंत्र नहीं है, जब तक कि वह अपनी जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिए दूसरों पर आश्रित है।

आत्मनिर्भर होने के लिए प्रत्येक राष्ट्र ने अपनी शक्ति भर उपाय किये। ये उपाय बहुत प्रकार के हैं।

स्वदेशी की भावना—सब देशों मे स्वदेशी की भावना जोरों से फैलने लगी। अपने अपने देश की बनी वस्तु खरीदो, इसका ज़ोरों से प्रचार किया जाने लगा। चीन और भारत जैसे देशों मे स्वदेशी व्रत के प्रचार ने विदेशी महँगी और अच्छी चीज छोड़ कर अपने देश की बनी चीज़े लेने की बहुत प्रेरणा की।

तटकर—स्वदेशी का प्रचार लोगों मे एक नया वातावरण पैदा

कर सकता था, लेकिन मनुष्य के अन्दर सस्ती चीज़ लेने का मोह बहुत प्रबल है। इस लिए यह प्रयत्न किया गया कि—दूसरे देश की बनी वस्तु हमारे देश में आकर स्वदेशी से महँगी बिके, कम से कम सस्ती न पड़े। इसका मुख्य उपाय तटकर लगाना था। विभिन्न देशों के माल पर भारी भारी तटकर लगाये गये। भारत मे ही जापान के माल पर ५० से ६० फ़ीसदी तटकर लगाये गये।

सहायता—विभिन्न सरकारें किसी किसी खास व्यवसाय को उत्तेजन देने के उद्देश्य से प्रत्यक्षरूपेण भी सहायता देने लगी हैं।

मुद्रा की कीमत—साधारण अवस्था मे ये सब उपाय सफल हो सकते थे, लेकिन स्थिति बहुत ज़्यादा बिगड़ चुकी थी। व्यवसाय-प्रधान देशों ने जब यह देखा कि स्वावलम्बन की प्रवृत्ति के कारण उनका माल कम बिकने लगा है, तब उन्होंने अपने सिक्के की कीमत कम कर दी, इसका परिणाम यह हुआ कि तटकर आदि की सब दीवारों को लाँघ कर भी उनका माल पहुँचने लगा। उनका माल बहुत सस्ता हो गया। जापान की मुद्रा येन का मूल्य बहुत कम होने की वजह से ही जापानी माल आज भी भारत मे आ रहा है।

रुपया और पौण्ड—भारतीय अर्थशास्त्रियों की यह चिरकाल से माँग रही है कि रुपये का मूल्य गिरा दिया जाय। भारतवर्ष का सिक्का चांदी का है। १६३१ से पहले एक पौण्ड १५ रुपये का था, लेकिन पीछे घटा कर १३ रु० ५ आ० ४ पा० कर दिया गया। इससे रुपया महँगा हो गया। पहले १ शि० ४ पें० में एक रुपया

आ जाता था, अब १ शि० ६ पेंस में मिलता है। इसका प्रभाव यह हुआ कि भारत का माल भी दुनिया में महँगा होगया और उसकी मांग बाहर के बाजारों में कम हो गई। मुद्रा की कीमत घटने में निर्यात बढ़ता है और कीमत बढ़ने से निर्यात घटता है। इसका कारण यह है कि पहले १ रु० के भारतीय माल के लिए अंग्रेज व्यापारी को १ शि० ४ पैन्स देने पड़ते थे, अब उसे १ शि० ६ पैन्स देने पड़ेंगे। दूसरी ओर आयात पर भी इसका असर पड़ता है। पहले इंग्लैंड से १ पौण्ड का माल मँगाने वाले को १५) रु० देने पड़ते थे, अब उसे सिर्फ १३ रु० ५ आने ४ पाई ही देना पड़ेगा। इस लिए स्वभावतः वह माल ज़्यादा मँगावेगा।

पंचवार्षिक योजना—इस एक उदाहरण से मालूम होगा कि मुद्रा की कीमत में कुछ कमोबेशी करने से व्यापार पर बहुत भारी असर पड़ता है। इसलिए किसी देश के स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनने के लिए उपर्युक्त उपाय ही काफ़ी न थे। इस समस्या के हल के लिए कुछ उग्र और व्यापक उपायों की ज़रूरत थी। रूस को परावलम्बन का सबसे कटु अनुभव था, इसलिए उसने सबसे पहले इधर ध्यान दिया। समस्त देश के विविध विषयों के विशेषज्ञों की एक बड़ी भारी कमेटी बनाई गई। उसने कई वर्ष तक विचार-विनिमय के बाद एक सर्वांगीण योजना बनाई. इसका उद्देश्य पांच सालों में ही खेती, कानें, व्यापार, व्यवसाय, धन्धे और शिक्षा आदि सब की एक साथ उन्नति करना था। किसान को उद्योग के निकट लाने के लिए एक बलशाली आयोजन किया गया। बड़े बड़े सम्मिलित खेत

बनाये गए। फिर बड़े बड़े कारखाने, पानी से बिजली निकालने के भारी यंत्र, खानों की खुदाई और इसी तरह के अनेक दूसरे काम जारी करके देश भर को उद्योगवादी बना दिया गया। शिक्षा, विज्ञान, सामूहिक खरीद-फ़रोख्त का प्रचार किया गया; लाखों मज़दूरों के लिए मकान बनाये गये और उनका रहन-सहन ऊँचा किया गया।

यह पाँचवर्षीय योजना बहुत ध्यानपूर्वक विचार और खोज के बाद बनी थी, वैज्ञानिकों और इंजिनीयरों ने सारे देश की स्थिति की जाँच की थी। कार्यक्रम के एक भाग का दूसरे के साथ मेल बिठाने का काम बड़ा कठिन था। कारखानों के लिए कच्चे माल का अभाव हो तो कारखानों का काम ही न चले। कच्चा माल मिल भी जावे, तो उसे कारखाने तक पहुँचा देने का इन्तज़ाम— रेलवे, इंजिन, डब्बे, लारियाँ, पक्की सड़कें चाहिए और इसके लिए लोहा, कोयला और पैट्रोल व लकड़ी का सामान चाहिए। खुद कारखाने को चलाने के लिए कोई शक्ति चाहिए। फिर इन सब कार्यों के लिए इंजिनीयर और कुशल कारीगर चाहिएँ। उनकी शिक्षा का प्रबंध, पुस्तकें, छापेखाने आदि सब की जरूरत है। उसी तरह एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु दूसरी के साथ तीसरी वस्तु और तीसरी के साथ चौथी वस्तु एक शृंखला से बँधी हुई थी। इस समस्त शृंखला में से एक भी कड़ी टूट जाय, तो सारा सिलसिला ही बेकार होजावे। कार्यक्रम बहुत विशाल, उच्चाकाँक्षापूर्ण और कठिन था। पास में पैसा नहीं था, सब राष्ट्रों ने इस योजना की हँसी उड़ाई, लेकिन समस्त रूस एकनिष्ठ भाव से इसमें लग गया। क्रान्ति की

भावना सारे देश मे फैल गई, युवकों ने, वृद्धों ने, स्त्रियों ने और बालकों तक ने अपने अपने जिम्मे लगा हुआ काम इतनी मुस्तैदी से पूरा किया कि पॉच वर्षों की योजना चार ही वर्षों मे पूरी हो गई। जंगल और मरुभूमियाँ आबाद हो गई, एक बड़े कारखाने के आसपास बड़ा और नया शहर खडा हो गया। नई सड़कें, नई नहरें और नई रेलवे बन गई। रेलें ज़्यादातर बिजली की थीं, हवाई जहाजों के जरिये आने जाने की प्रणाली का विकास हो गया। रासायनिक पदार्थों, युद्ध-सामग्री और औजारों के उद्योग कायम हो गये और चार ही बरसों मे रूस भारी इंजिन, मोटरें, रेलवे इञ्जन, हवाई जहाज़ और पनचक्कियाँ बनाने लग गया। बिजली का दूर दूर तक प्रचार हो गया और बेकारी का नाम तक न रहा। सारा संसार रूस की यह सफलता देख कर चकित रह गया।

जो दोष रह गए थे, उन्हें दूर करने और आगे उन्नति करने के उद्देश्य से नया पंचवार्षिक कार्यक्रम बनाया गया। इस कार्यक्रम की मुख्य बाते निम्नलिखित थीं :—

(क) खरीदारों के साधारण व्यवहार की वस्तुओं की उपज तीनगुणा करना,

(ख) रूसी व्यापार को ढ़ाई से तीन गुणा तक करना,

(ग) कीमतों को ३५ से ४० प्रतिशत घटाना।

(घ) रूस भर मे मजदूरों व कर्मचारियों के वेतनो को दुगुना बढ़ाना।

(ङ) राष्ट्रीय और सहयोग भण्डारों को ३७ फीसदी बढ़ाना।

इस योजना मे काफ़ी सफलता हुई, लेकिन पीछे से अन्तर्राष्ट्रीय

परिस्थितियों को देख कर रूस ने भी अपनी योजना को शिथिल करके अपना ध्यान युद्ध-सामग्री व सेना की ओर लगा दिया।

इटली और जर्मनी में—रूस की यह सफलता देख अन्य कई राष्ट्रों में भी उत्साह उत्पन्न हुआ और वे सब भी अपनी अपनी निश्चित योजनाएँ बनाने लगे। पूंजीवादी राष्ट्रों में यह कुछ कठिन था। वहाँ पूंजीपति अपने अपने निजी लाभ की दृष्टि से कल कार-खाने खोलते थे, उन सब पर नियंत्रण करने और उन्हें राष्ट्र की आवश्यकतानुसार ही सब चीज़ें घटाने बढ़ाने को सरकार विवश नहीं कर सकती थी। इन योजनाओं की सफलता वहीं हो सकती थी, जहाँ व्यक्तिगत उन्नति की बजाय राष्ट्रीय उन्नति ही एकमात्र लक्ष्य हो और मिलमालिक व मज़दूर दोनों ही अपने हित पर राष्ट्रीय हित को तरजीह दें। यह कार्य रूस मे इसी लिए सफल हुआ और इटली व जर्मनी मे भी इसी कारण सफल हो सका। मुसोलिनी भी अबी-सीनिया-आक्रमण के समय आर्थिक घेरे का थोड़ा बहुत अनुभव ले चुका था। उसने खेती की ओर विशेष ध्यान दिया। कोयले की कमी पूरी करने के लिए बिजली की ओर भी खास ध्यान दिया गया। कुछ ही सालों में बहुत ही अनुपजाऊ भूमियाँ उपजाऊ बन गईं, बिजली की मोटरें विशेष रूप से बनीं, ४००० मील सड़कें बनीं, ११००० नये स्कूल खोले गये, बहुत सी नहरें बनाई गईं और करोड़ों रुपया बन्दर-गाह बनाने पर व्यय किया गया। फिर भी लोहा, कोयला, रूई और तेल की समस्या बनी रही। इसके लिए उसने अबीसीनिया पर आक्र-मण तक कर दिया। मुसोलिनी को यह भय था कि—मज़दूरों और

मिलमालिकों के आपसी झगड़े कहीं उसकी व्यावसायिक उन्नति में बाधा न डाले। इसलिए उसने कानून द्वारा मजदूरों से हड़ताल का अधिकार छीन लिया और मिलमालिकों से मिल बन्द करने का। इसमे संदेह नहीं कि इससे उस का कार्य बहुत सहल हो गया।

हिटलर ने भी जर्मनी मे नई आर्थिक योजनाएँ तैयार कीं। शहरों से हजारों लाखों जर्मन नागरिकों को गाँवों और खेतों मे ले जा कर बसा दिया गया, ताकि वे लोग खेती बाड़ी का काम कर सके। बेकारी को दूर करने के लिए स्त्रियों को आर्थिक उत्पत्ति के क्षेत्र से हटा दिया गया। छोटी छोटी गैर जरूरी दुकानों को बन्द कर दिया गया और उनके मालिकों को कारखानों मे लगा दिया गया। करीब ७० लाख कारीगरों और दुकानदारों को इस काम के लिए कारखानों मे भेजा गया। युद्ध सामग्री की ओर एक दम अधिक ध्यान देने की वजह से वह अपनी चतुर्वार्षिक आर्थिक योजना को रूस जैसा व्यापक और सुसंगठित रूप न दे सका, लेकिन जर्मनी को स्वावलम्बी बनाने का पूरा प्रयत्न जारी रहा, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

अमेरिका में न्यू डील—दूसरे राष्ट्रों मे इस तरह की योजनाएँ राज्य के पूर्ण व कठोर नियंत्रण के अभाव मे कठिन थीं। फिर भी सब राष्ट्रों ने इधर यथासंभव ध्यान देने का प्रयत्न किया। इसमे सब से अधिक महत्त्व अमेरिका के प्रैजिडेण्ट मि० रूजवेल्ट की योजनाओं का है। यह ठीक है कि अमेरिका मे इन योजनाओं का उद्देश्य स्वावलंबन का भाव न था। अमेरिका की कुछ अपनी समस्याएँ थीं और उन्हे हल करने के लिए यह योजनाएँ जारी की गई थीं। इन योजनाओं को 'न्यू डील' कहते हैं।

अमेरिका के लिए १९२५ से १९२९ तक के वर्ष अत्यन्त समृद्धि के वर्ष थे। भावी समृद्धि की आशा पर अमेरिकन जनता ने कारखानों और कम्पनियों के शेयर बहुत बढ़े हुए दामों पर खरीद लिये। अरबों खरबों रुपयों के शेयर बिक गये, लेकिन पीछे से ज्योंही उन्हें मालूम हुआ कि इतने बढ़े हुए शेयर कुछ काम न देंगे। लाभ की गुँजाइश बिलकुल नहीं है, तो एकदम सारे अमेरिकन अपने अपने शेयर बेचने को तैयार हो गये। परन्तु खरीदार कोई न था। फलतः शेयरों के दाम इतने घटे कि अमेरिकन जनता को चालीस हज़ार करोड़ डालर का नुकसान हो गया। हजारों बैंक और कारखाने फ़ेल हो गये और १७० लाख आदमी बेकार हो गये। मि० रूज़वेल्ट के शासनसूत्र हाथ मे लेते ही अनेक नई बड़ी बड़ी योजनाएँ अमल मे लाई गईं। सबसे पहले बेकारी की समस्या को हाथ मे लिया। ५० करोड़ डालर बेकारों की सहायता के लिए बाँटे गये। ६२,५०,००० बेकारों को नये जंगल बसाने के काम पर लगा दिया गया। लाखों नये मकान बनाने की योजना तैयार हुई और तीन ही वर्षों मे १,६०,००० घर बन कर तैयार हो गये। पब्लिक वर्क्स की भिन्न भिन्न २५,००० योजनाएँ बना कर पूरी की गईं और इन पर चार अरब डालर खर्च किये गये। रूस की पंचवार्षिक योजना के आधार पर टैनेसी की विस्तृत, परन्तु उजाड़ और बंजर घाटी को उन्नत समृद्ध करने की एक योजना बनाई गई। चार पांच वर्षों मे ही उसे समृद्ध व्यावसायिक केन्द्र बना दिया गया। अत्युत्पत्ति के कारण कृषिजन्य पदार्थों के दाम एक दम गिर चुके थे, किसान तबाह हो गये थे। प्रेज़िडेन्ट

रूजवेल्ट ने कानून बनाकर पदार्थों के निम्नतम मूल्य निर्धारित कर दिये, खेती की उत्पत्ति पर नियंत्रण लगा दिया और किसानों को सहायता दी गई। उनका बहुत सा अन-बिका माल सरकार ने खुद खरीद लिया। उन सब कामों मे प्रति वर्ष ५० करोड़ डालर खर्च किया गया। मजदूरों को संगठित होने का कानूनी अधिकार देकर और मिलमालिकों को उनके संघों के साथ संधिचर्चा करने के लिए बाधित कर मजदूरों की स्थिति बहुत ऊँची कर दी गई। मजदूरों के कम से कम वेतन और घण्टे नियत कर दिये गये। उन सब कार्यों का अमेरिका के पूँजीपतियों ने घोर विरोध किया, क्योंकि राज्य उनके काम मे बहुत दखल दे रहा था, लेकिन प्रेजिडेण्ट रूजवेल्ट ने किसी विरोध की परवाह न की। आज भी यह योजना पूर्णतः सफल नहीं हुई. परन्तु इसका अधिकांश सफल हो चुका है।

अन्य राष्ट्रों मे भी बेकारी और अर्थसंकट को दूर करने के लिए ऐसी अनेक योजनाएँ तैयार की गई। इंग्लैण्ड ने भी हाउसिंग स्कीम द्वारा पुराने लाखों छोटे छोटे गन्दे घर गिरा कर नये सिरे से बनाये गये। पहले 'सैनिक वीरों के लिए घर' का अन्दोलन किया गया और १६३३ मे झोंपड़ी सफाई (Slum clearancc) की पांचसालाना योजना बनाई गई। १६३८ मे १६६००० नये घर बनाये गये और योजना को आगे बढ़ाकर ४३०००० नये घर बनाने का निश्चय किया गया। इस पर १ करोड़ ७० लाख पौण्ड खर्च किये गये।

भारत में योजना समिति—थोड़े बहुत अन्तर से अन्य सभी राष्ट्रों मे व्यवस्थित आर्थिक योजनाएँ चलाने का प्रबंध किया गया।

हमारे देश में भी जब कांग्रेस ने प्रान्तों मे शासनसूत्र सँभाला, तो उसने भी भारत को स्वावलम्बी बनाने के लिए पं० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में एक 'नेशनल प्लैनिंग कमेटी' बनाई। कमेटी की बहुत सी बैठकें हुईं और अन्त में अपनी व्यापक योजना के निम्न आधार नियत किये गये—

(क) प्रत्येक कारीगर को स्वास्थ्यप्रद पौष्टिक भोजन।

(ख) कम से कम प्रति व्यक्ति ३० गज़ वार्षिक कपड़ा।

(ग) प्रति व्यक्ति १०० वर्ग फीट तक निवासगृह

दूसरे दृष्टिकोण से निम्नलिखित विभागों मे उन्नति करने की सलाह दी गई।

(क) कृषिजन्य पदार्थों की पैदावार बढ़ाना।

(ख) कारख़ानों की पैदावार बढ़ाना।

(ग) बेकारी का ख़ातमा।

(घ) प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि।

(ङ) निरक्षरता का विनाश।

(च) प्रति १००० आबादी पर एक चिकित्सालय।

(छ) राष्ट्र की औसत आयु बढ़ाने के विभिन्न प्रयत्न।

यूनिवर्सिटियों, वैज्ञानिक संस्थाओं और अर्थशास्त्रियों आदि ने व्यावसायिक खोज की विभिन्न २०० योजनाएं प्रस्तुत कीं। इनमे से निम्नलिखित को सरकार ने भी स्वीकृत कर लिया—तेलों मे रासायनिक द्रव्य, नकली रेशम, गंधक के कुओं की तलाश, शोरे से अलकोहल व व अन्य रासायनिक द्रव्य, नकली फॉस्फोट वाले खाद।

पर केन्द्रीय सरकार के सहयोग न देने और बीच में ही कांग्रेसी सरकारों के स्तीफ़ा दे देने के कारण यह समिति अपना कार्य कुछ आगे न बढ़ा सकी, लेकिन इतना अवश्य हुआ है कि भारत के लिए जब कभी आर्थिक योजना बनेगी, तब वर्तमान आधार और संचित सामग्री बहुत काम देगी।

नये रासायनिक पदार्थ—लेकिन राष्ट्रों के स्वावलम्बन की समस्या सिर्फ इन योजनाओं से हल नहीं हो सकती थी। बहुत सी आवश्यक वस्तुएँ मुल्क मे पैदा होती ही नहीं, और हो सकती भी नहीं। तेल जर्मनी मे नहीं होता। इटली मे कपास पैदा नहीं होती। लेकिन इनके लिए भी दूसरे राष्ट्र का परावलम्बन सहन नहीं किया गया और दृढ़ निश्चय कर लिया गया कि सब जरूरतें अपने यहाँ ही पूरी करनी हैं। जर्मनी मे १९३६ मे एक नई चतुर्वार्षिक योजना तैयार की गई। इसका उद्देश्य अपने देश मे न होने वाली वस्तुओं की जरूरतें दूसरे पदार्थों से पूरा कर के राष्ट्र को पूर्ण स्वावलम्बी बनाना था। कोयले से तेल, नकली रेशेदार कपड़े और जर्मनी की घटिया खानों को भी खोदना, इस योजना के मुख्य अंग थे। वहाँ टीन और निकल की जरूरतें अलूमीनियम, मैग्नेशियम और जस्त आदि से पूरी की गईं। लकड़ी की रेशेदार लुगदी से तार निकाल कर कपड़े बनाये गये और सन् १९३८ मे २५ फीसदी कपड़ों की जरूरत नकली रेशम और दूसरे प्रकार के मसालो से पूरी की गई। लकड़ी के गूदे से कई मुल्कों में ऊन सा द्रव्य तैयार किया जा रहा है। मछली के छिलकों से गीला न होने वाला कपड़ा तैयार किया गया है और

जूट की तरह इस्तेमाल के लिए ज़ैल जूट के नाम से एक नया द्रव्य तैयार किया गया है। युद्ध से पहले तक जर्मनी २५ लाख टन तेल कोयले से प्राप्त कर रहा है। रबड़ की २० फ़ी सदी ज़रूरत 'बूना' द्रव्य द्वारा पूरी की गई और कई प्रकार के नकली रबड़ तैयार किए गए हैं। इटली ने कोयले की जरूरत बिजली पैदा करके पूरी करने का प्रयत्न किया है। अलकोहल से पैट्रोल का काम लेने का प्रयत्न किया जा रहा है। नये नये मसालों से नये नये द्रव्य तैयार किये जा रहे हैं। अमेरिका में कांच की बोतलों के स्थान पर कागज़ की बोतलें बनाई जा रही हैं। जापान का काफ़ूर पर एकाधिकार था, अब तारपीन से नक़ली काफ़ूर बना कर उसका एकाधिकार तोड़ दिया गया है।

व्यापारिक संधि—यह सब प्रयत्न इस लिए था कि राष्ट्र किसी भी दृष्टि से एक दूसरे का मुँह ताकने को विवश न हो। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार के प्रयत्नों में कुछ सफलता अवश्य हुई। लेकिन इससे भी कोई राष्ट्र पूर्ण स्वावलम्बी नहीं हो सका। अनेक ऐसी वस्तुएँ रह गईं, जो या तो बनाई नहीं जा सकीं या इतनी कम बनाई जा सकीं कि उससे आधी जरूरत भी पूरी न होती थी। फिर इन पर खर्च भी कम न आता था। जर्मनी बहुत कोशिश करने पर भी कोयले से जो तेल निकाल सका, उस से सिर्फ़ एक तिहाई जरूरत ही पूरी हो सकी। स्वतंत्र व्यापार और व्यवसाय के मूल में एक भाव और काम कर रहा था कि जो देश आसानी से कम खर्च पर जो माल तैयार कर सकता है, वह उसी को पैदा करे और दूसरी

वस्तुओं पर अपनी शक्ति और धन का अपव्यय न करे। इस तरह प्रत्येक देश जो माल तैयार करेगा, वह अच्छा होगा और सस्ता होगा। इस माल के बदले मे वह दूसरे देश से जरूरी माल सस्ते दामों पर मँगा सकता है। अपने यहाँ उसे कृत्रिम रीति से अमित व्यय करके जब बनायगा, तो माल महँगा पड़ेगा। स्वावलम्बन की मूल भावना यद्यपि काफ़ी बल रखती है, तथापि यह दलील भी कमजोर नहीं है। हिटलर ने अपने सब प्रयत्नों के बावजूद जब देखा कि जर्मनी की सब जरूरतें पूरी नहीं हुई, तब उसे भी निराश होकर कहना पडा कि—"एक ऐसी रेखा आती है, जब प्रकृति प्रयत्नो की गहराई और व्यापकता की सीमा बाँध देती है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका मे हजार कोशिश करने पर भी मैंगेनीज टीन और क्रोमियम की जरूरतें पूरी नहीं हो सकतीं।" इन सब को देखते हुए एक नया कदम उठाया गया और वह था विभिन्न राष्ट्रों से संधि करने का। जर्मनी ने अनेक पड़ोसी राष्ट्रों से यह संधि की कि हम तुम्हे यह माल देंगे और तुम हमे उसके बदले यह माल देना।

अदल बदल का सिद्धान्त—इस कदम के उठाने का एक और कारण भी था हम ऊपर कह चुके हैं कि विदेशो का आपसी व्यापार सोने या चाँदी मे होता है। इसके लिए जरूरी है कि प्रत्येक देश स्वर्णभण्डार पर्याप्त मात्रा मे रखे। लेकिन जर्मनी के पास सोने की बहुत कमी थी। उसने यह निश्चय किया कि सोना विनिमय का साधन ही न रहे, और इस तरह संसार मे सोने का महत्त्व बहुत कम कर दिया जावे। इसके लिए पदार्थों की अदलाबदली

का पुराना सिद्धान्त फिर जारी किया गया। पहले यह तरीका सिर्फ़ लोगों के आपसी लेनदेन में प्रयुक्त होता था, अब राष्ट्रों के लेनदेन में भी होने लगा।

ओटावा पैक्ट—परन्तु जर्मनी ही नहीं, वस्तुतः अन्य राष्ट्र भी इस विधि को अपना रहे हैं, यद्यपि वे सोने के विनिमय-आधार को हटाने का दावा नहीं करते। विभिन्न राष्ट्रों मे जितनी पारस्परिक लेनदेन की संधियाँ होती हैं, उनका मुख्य आधार यही होता है। दूसरे देशों की प्रतिस्पर्धा से बचने के लिए एक दूसरे देश के माल पर तटकर लगाये जाते हैं, लेकिन जिन देशों से व्यापार करने की इच्छा होती है या आवश्यकता अनुभव होती है, उनसे व्यापारिक संधियाँ करके एक दूसरे के माल पर तटकर माफ़ कर दिये जाते हैं या दूसरे मुल्कों की अपेक्षा रियायत दे दी जाती है। इस तरह दो राष्ट्र मिल कर एक दूसरे के लिए बाज़ार का प्रबन्ध कर लेते हैं। इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के स्वतंत्र विकास मे तो बाधा पड़ती है, लेकिन अपनी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं। १९३५ मे ब्रिटिश साम्राज्य के देशों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये गये थे, जो ओटावा पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इस मे यह निश्चय हुआ कि ब्रिटिश साम्राज्य के सब अंग एक दूसरे के माल पर परस्पर रियायत दें। ब्रिटिश माल के मुकाबले मे जापानी माल आसानी से बिक रहा था। इस समझौते से ब्रिटिश माल को रियायत दी गई, फलतः वह जापानी माल का मुकाबला करने में सफल होगया। भारत के अर्थशास्त्रियों और व्यापारियों ने इस समझौते का विरोध किया

और कहा कि ब्रिटिश माल को रियायत देकर भारत ने अपने बड़े गाहक देशों को नाराज कर दिया है और फलतः उसके व्यापार को साफ हानि पहुँची है। फिर भारत के पास ऐसा माल था, जिस पर कोई तटकर नहीं लगाना चाहता। उसे ऐसे व्यापारिक समझौते के बन्धन मे जाने की जरूरत ही न थी। लेकिन समझौते के समर्थकों का कहना था कि इससे ब्रिटिश साम्राज्य स्वावलम्बी हो गया और उसे साम्राज्यभिन्न देशों पर निर्भर करने की जरूरत नहीं रही, हालाँकि यह दावा ठीक नहीं निकला और सब देशों को दूसरे देशों के साथ अलग अलग सधियाँ भी करनी पड़ी।

अन्य राष्ट्रों ने भी परस्पर मुकाबले मे बचने के लिए एक दूसरे देश से व्यापारिक संधियाँ की।

स्वावलम्बन का भाव केवल यूरोपियन राष्ट्रों मे ही नहीं, कृषिप्रधान देशों मे भी पैदा हो गया। भारतवर्ष मे व्यवसाय बहुत बढ़ गये और अब तो युद्ध के कारण सरकार ने भी यह अनुभव किया कि भारत को अपनी ही नहीं ब्रिटिश साम्राज्य की जरूरतें पूरी करनी हैं। इसलिए पिछले दो सालों से यहाँ बीसियों नये धन्धे पनप रहे हैं और युद्धसामग्री तथा बीसियों छोटे बड़े शस्त्रों के कारखाने खुल गये हैं। इस स्वावलम्बन की भावना से जहाँ भारत की उन्नति हुई है, वहाँ दूसरे राष्ट्रों की स्वावलम्बन की भावना से भारत को नुक्सान भी हुआ है। जूट पर भारत का एकाधिकार था, उसकी जगह नई नकली वस्तु ले रही है। जापान रुई व गेहूँ का बड़ा

गाहक था, अब वह अपने जीते गये प्रदेश मंचूको में इन दोनों की खेती बढ़ा रहा है।

इस तरह हमने देखा कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की कसौटी का सिद्धान्त अब पहले जितना आदरणीय नहीं रहा। अब तो स्वावलम्बन का सिद्धान्त ज़ोरों पर है और उस के साथ साथ राज्य द्वारा दखल न देने की नीति भी कमज़ोर होती जा रही है। आर्थिक जीवन पर नियंत्रण का परिवर्धित रूप ही साम्यवाद या बोलशेविज़्म है, जहाँ कि उत्पत्ति और बिक्री का सारा कार्य सरकार अपने हाथ में ले लेती है।

भारत में नया दृष्टिकोण—भारतीय सरकार भी पहले आयात निर्यात के आँकड़े दिखाकर यह सिद्ध करती रही कि भारत समृद्धि के मार्ग पर है, लेकिन भारत के अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण बदल गया है। वे अब सोचने लगे है कि वास्तविक समृद्धि आयात निर्यात के आँकड़ों मे नहीं है। वास्तविक समृद्धि है सुखी और खुशहाल जीवन मे। एक व्यक्ति खूब खाता पीता है, अच्छे कपड़े पहनता है, उसे अपनी भूख मिटाने के लिए अपने पास जो कुछ है, वह बेचने के लिए विवश नहीं होना पड़ता। लेकिन एक दूसरा व्यक्ति है, वह आधा पेट खाकर रहता है, आधा बदन ढाँप पाता है और यह भी उसे तब मुयस्सर होता है, जब वह अपने पास का सब कुछ बेच दे। ऐसी स्थिति मे पिछले व्यक्ति की बिक्री ज़्यादा होने पर भी हम पहले व्यक्ति को ही समृद्ध कहेगे।

अनेक भारतीय अर्थशास्त्री इसी विचारधारा के प्रवाह में यह भी कहने लगे हैं कि पहले भारतीय किसान अपनी सब जरूरतें पूरी करना अपना लक्ष्य समझता था, वह गेहूँ भी बोता था, दाल और कपास भी, गुड़ के लिए कुछ गन्ना बोता था। खेती उसका जीवनक्रम था न कि व्यापारिक पेशा। वह अपना खाता पीता था मौज में रहता था, लेकिन व्यावसायिक युग मे आने से वह खेती को रुपये, आने, पाई के अर्थों मे करने लगा और खेती कारखानों की पिछलग्गू बन गई। लंकाशायर के लिए वह रुई बोने लगा, पर ज्यों ही लंकाशायर ने भारतीय रुई लेनी बन्द की, किसान पर उसका प्रभाव पड़ा। पिछले बरसों मे किसान अपनी सब जरूरतें छोड़ कर चीनी के कारखानों के लिए गन्ना बोने लगा। परिणाम यह हुआ कि चीनी मिलों की हालत खराब होते ही किसान भी तबाह हो गया। इसलिए ये अर्थशास्त्री फिर वही स्थिति लाना चाहते हैं।

महात्मा गाधी का निश्चित विश्वास है कि जब तक मशीनरी रहेगी, पूंजीवाद-चाहे वह व्यक्तिगत पूंजीवाद हो, चाहे राष्ट्रीय पूंजीवाद-कायम रहेगा और उसके दुष्परिणाम भी रहेंगे। इस लिए वे कुछ अनिवार्य व्यवसायों को छोड कर फिर ग्रामोद्योगों की ओर जाना चाहते हैं। यह विचारधारा यद्यपि आज संसार के और भारत के भी बहुत कम अर्थशास्त्रियों को खींच सकी है, फिर भी बहुत संभव है कि वर्तमान महायुद्ध के बाद इसकी ओर विचारकों का ध्यान आकृष्ट हो। अत्यधिक मात्रा मे उत्पत्ति ही आज संसार की बहुत सी

समस्याओं का मूल कारण है। साम्यवादी विचारकों का कहना है कि हम आवश्यकता से अधिक पैदावार ही नहीं होने देंगे। कारखानों के शेष समय घण्टे कम कर देंगे, और बचा हुआ समय मजदूरों की सामाजिक और मानसिक उन्नति मे व्यतीत होगा। लेकिन गांधी-विचारधारा के समर्थक कहते हैं कि मशीनों से अत्यधिक उत्पत्ति का जो प्रलोभन रहता है, उसे रोकना कठिन है। फिर मशीनों को ४-५ घण्टे चला कर शेष समय बेकार रखना अलाभकर (घाटे वाला uneconomic) प्रस्ताव है। गांधीजी की विचारधारा पर हम आगामी अध्याय में प्रकाश डालेंगे।

रेशनलाइजेशन—एक तरफ गांधीजी ग्रामोद्योगों की चर्चा कर रहे हैं, दूसरी ओर पूंजीपति और वैज्ञानिक इस प्रयत्न में लगे हैं कि मशीनरी मे इतनी उन्नति की जाय कि आज जितने मजदूरों की एक कारखाने में ज़रूरत पड़ती है, उससे दो तिहाई या आधे मजदूरों से ही काम चल जावे। कपड़े के मिलों मे पहले दो सांचों पर एक मजदूर रखना पड़ता था। अब ऐसे आटोमैटिक सांचे बन रहे हैं कि एक आदमी आठ या दस सांचों को चला सकता है। इससे खर्च काफी घट जाता है। मिल मालिक इसे 'रेशनलाइजेशन' कहते हैं। यह प्रवृत्ति कहां तक बढ़ेगी, यह कहना कठिन है।

क्रयशक्ति का सिद्धान्त—आज के आर्थिक जीवन मे मजदूरों और किसानों के आन्दोलन का विशेष महत्त्व है। इन पर हम आठवें अध्याय मे कुछ विस्तार से विचार करेंगे। यहाँ यह कह देना काफी है

कि जहाँ मजदूरों और किसानों ने अपने संगठन और जागृति आन्दोलन द्वारा आर्थिक जीवन मे विशेष स्थान प्राप्त कर लिया, वहाँ राजनीतिज्ञों और अर्थशास्त्रियों ने भी यह अनुभव किया कि यदि साधारण जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रहती, उसका परिणाम मिलमालिकों की अपनी स्थिति पर भी बुरा पड़ता है। किसानों और मजदूरों के पास पैसा कम होने से उनकी विविध सामग्री खरीदने की ताकत भी कम हो जायगी। जब उनकी क्रय-शक्ति ही कम रहेगी, तो वे मिलमालिकों द्वारा तैयार की गई चीजे भी न खरीद सकेंगे, फलतः मिलमालिकों की स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इस लिए कारखानों को तरक्की देने के लिए जरूरी है कि देश की साधारण जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी हो। धन के प्रचलन-चक्र मे ही देश का आर्थिक जीवन है। इसलिए अनेक देशों मे और विशेष कर अमेरिका मे यह प्रयत्न किया गया कि मजदूरों के वेतन ऊँचे किये जावे। इस तरह मिलमालिकों से अपने स्वार्थ के लिए जाने या अनजाने मजदूरों का कुछ भला हो गया।

——:o:——

छठा अध्याय

आर्थिक और सामाजिक विचारधाराएँ

पूंजीवाद

वर्तमान संसार प्राचीन संसार से अत्यन्त भिन्न है। रहन, सहन, विचार और आदर्श, रीति-रिवाज और जीवन-पद्धति सब मे जमीन आसमान का अन्तर पाया जाता है। पहले मनुष्य का जीवन सादा था, गाँवों मे रहता था, मेहनत करता था और भरपेट भोजन कर लेता था—मोटा कपड़ा और मोटा भोजन। लेकिन अब स्थिति बिलकुल बदल गई है। मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ गई हैं, उसका जीवन पहले से बहुत जटिल हो गया है। न वह स्वावलम्बी रहा है और न उसका गाँव। अमेरिका मे होने वाली अनावृष्टि और ७००० मील दूर छिड़ने वाला युद्ध भी भारत के एक सुदूर अन्तर्वर्ती गाँव के किसान पर भी पूरा प्रभाव डालते हैं। संसार की वर्तमान स्थिति के यों तो अनेक कारण हैं, लेकिन उनमे से प्रमुख पूंजीवाद है। पूंजीवाद ने विज्ञान की सहायता लेकर ही समस्त संसार मे उथल पुथल कर दी है।

पूँजीवाद उस सिद्धान्त को कहते हैं, जिसमें उत्पादन के साधनों—भूमि, बड़े बड़े कारखानों मकानों और वितरण के साधनों—बैंक, डाकखाने, रेलगाड़ी, मोटर सर्विस आदि पर व्यक्तियों का पूर्ण अधिकार होता है। इसमें वे अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमा सकते हैं और अधिक से अधिक पूँजी जमा कर सकते हैं।

यों तो बहुत प्राचीन काल में उत्पादन के साधनों पर मनुष्य का व्यक्तिगत अधिकार था, लेकिन पूँजीवाद का वर्तमान स्वरूप तभी से विकसित हुआ, जब से विज्ञान का सहयोग पूँजीपतियों ने प्राप्त किया। पूँजीवाद का इतिहास यूरोप का और विशेष कर ब्रिटेन का पिछले तीन सौ वर्षों का इतिहास है। अमेरिका के अन्वेषण और भारत पर अंग्रेजों के अधिकार के कारण इंगलैण्ड में जो अपार धनराशि गयी, उसने ब्रिटिश पूँजी को वास्तविक रूप दिया। इसी समय सौभाग्य से भाप से चलने वाले एंजिन और सूत कातने की मशीन का आविष्कार हुआ। फिर क्रमशः और मशीनें बननी गईं। मशीनें बनी पहले भी थीं, लेकिन पूँजी के अभाव में चल न सकी थीं। ब्रिटेन के नये सम्पन्न लोगों ने अपने पास आये हुए धन को अब कल-कारखानों में लगाना शुरू किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वे सस्ती चीजें तैयार करने लगे। जब उनकी चीजें सस्ती होने लगीं, तब गाँवों के कारीगरों का धंधा खतम हो गया और वे बेकार होकर इन्हीं कारखानों में पेट भरने के लिए मजदूरी करने लगे। इस तरह गाँवों की आबादी कम होने लगी और शहरों की आबादी बढ़ने लगी। कल कारखानों का माल इतना सस्ता होता था, कि वह दूसरे

देश में जाकर भी सस्ता पड़ता था और उन देशों के भी गाँवों और उद्योग-धंधों पर असर डालता था। राजनैतिक प्रभाव से इसमें और भी सहायता मिली। ज्यों ज्यों उनके माल की खपत बढ़ती गई, त्यों त्यों उनका मुनाफा और फलतः पूँजी भी बढ़ने लगी। जब पूँजी बढ़ी, तो और ज़्यादा कारखाने खुले और ज़्यादा नफ़ा हुआ और ज़्यादा पूँजी बढ़ी, फिर और कारखाने बने। इस तरह के चक्र ने पूँजीवाद और उद्योग-धंधों को खूब बढ़ाया।

पूँजीवाद के समर्थकों का कहना है कि संसार की भौतिक और वैज्ञानिक उन्नति का मुख्य श्रेय पूँजीवाद को है। अपने लाभ की आकांक्षा से ही हो, परन्तु यह सच है कि यदि पूँजीपति विज्ञान के आविष्कारों को लाखों करोड़ों रुपया लगाकर व्यापारिक रूप न देते, तो संसार बीसवीं सदी मे भी १६ वी सदी से आगे न बढ़ता, न रेल होती, न हवाई जहाज़ और न लोहे के बड़े बड़े कल-कारखाने। यह पूँजीपतियों के निरंतर प्रयत्न का ही फल है कि आज संसार में मोटर, रेल, तार और बड़े बड़े कल कारखानों का जाल बिछा हुआ है। पूँजीवाद की व्यवस्था ने मानव जाति की उन्नति में बहुत अधिक भाग लिया है।

पूँजीवाद के विकास मे यह मुख्य सिद्धान्त काम कर रहा है कि खुली प्रतियोगिता और मुकाबला बना रहने से मानव जाति की विविध प्रकार की योग्यताओं को विकास होता है और संसार की उन्नति होती है। इसमें संदेह नहीं कि इस स्थिति में प्रत्येक पूँजीपति

अपनी चीज ज्यादा बेचने के लिए सस्ती और अच्छी बनाने का प्रयत्न करेगा। और ऐसा हुआ भी है, लेकिन यही खुली प्रतियोगिता का सिद्धान्त अब जाकर स्वयं पूँजीपति और पूँजीवाद के लिए साफ खतरा साबित हो रहा है।

अपना माल सस्ता पैदा करने के लिए प्रत्येक पूँजीपति ज्यादा से ज्यादा माल तैयार करना चाहता है। परिणाम यह होता है कि जरूरत से भी ज्यादा माल तैयार हो जाता है। जब माल ज्यादा तैयार हो जाता है, तब मूल्य भी कम रखना पड़ता है और कभी कभी इतना कम रखना पड़ता है कि उस चीज के व्यापार में लाभ के बदले हानि होने लगती है। तब पूँजीपति एक और काम करता है। वह माल की मात्रा कम करने के लिए तैयार माल को नष्ट कर देता है। पिछले कुछ वर्षों में अमेरिका में कहवा और संत्र समुद्र में फेंक दिये गये, गेहूँ भट्टों में डालकर जला दिया गया, कपास के खेत जला दिये गये। यह सब इसलिए किया गया कि फसलों को काटने और बीजने में तथा उन्हें मण्डियों में ले जाने में जो खर्च आता था, वह भी उन की बिक्री से वसूल न होता था। नहीं तो नंगों और भूखो की कमी न थी। जब इस तरह माल कम हो गया तो फिर पूँजीपतियों ने कुछ दाम बढ़ा दिये। इस तरह से पूँजीवाद के मूल में आभिन्न बहुमात्रोत्पत्ति स्वयं एक समस्या बन गई है।

अपना माल सस्ता करने के लिए खर्च कम किये जाते हैं, ऐसी मशीनें बनाई जाती हैं, जिन से आदमियों की ज़रूरत और भी कम हो जावे। जब सभी कारखानेदार इस तरह का बौद्धिक संयमन

(Rationalization) करते है, तब लाखों मजदूर बेकार और गरीब हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी खरीदने की शक्ति नष्ट हो जाती है और माल कम बिकता है। माल तैयार ज्यादा होता है, बिक्री कम होती है। फलतः पूंजीपतियों को ही नुकसान होता है। फिर दूसरी ओर बेकारी और ग़रीबी के कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समूचे देश को कई प्रकार की हानि उठानी पड़ती है। आर्थिक कष्ट तो होता ही है, स्वास्थ्य गिर जाता है, चरित्र का पतन होता है संस्कृति का विनाश होना है।

पूंजीवादी पहले तो ग़रीब कारीगरों को नष्ट करता है। फिर मध्यम श्रेणी के लोगों को, परन्तु व्यक्तिगत लाभ की महत्त्वाकांक्षा मे फिर आपस मे पूँजीपतियों का संघर्ष शुरु हो जाता है। फल यह होता है कि चतुर और धनी पूंजीपति दूसरे पूंजीपतियों को खा जाते है। धीरे धीरे देश का सारा व्यवसाय थोड़े से हाथों मे आ जाता है। एक एक पूंजीपति देश के बहुत से कारखानों पर नियंत्रण करने लगता है। भारत मे लगभग ३०० कल कारखाने करीब ३० कम्पनियों के नियंत्रण मे हैं। इन ३० मे से २७ की पूंजी एक एक करोड़ से अधिक है और इनमें से ६-७ की पूंजी ५ करोड़ से ऊपर है। अकेले टाटा कम्पनी के नियंत्रण में लगभग ३२ करोड़ रुपये की पूंजी है।

छोटे पूँजीपति तो यों नष्ट हो जाते हैं। परन्तु बड़ी बड़ी कम्पनियाँ एक में मिल कर 'ट्रस्ट' या 'कम्बाइन' बना लेती हैं। एक ही देश की नहीं, विभिन्न देशों की व्यावसायिक कम्पनियाँ भी स्वदेश विदेश का विचार छोड़कर परस्पर मिल जाती हैं और सारे व्यापार पर

अधिकार कर लेती हैं। इनके स्वार्थ दोनों देशों में हो जाते हैं और अपने ही राष्ट्र का हित इनका लक्ष्य नहीं रहता। आज रूस और दो एक अन्य देशों को छोड़कर सारी पृथ्वी भर में मिट्टी के तेल का व्यवसाय स्टैंण्डर्ड आयल कम्पनी और रायल डच कम्पनी के हाथ में है। यह दोनों ही अन्तर्राष्ट्रीय ट्रस्ट हैं और छोटी बड़ी कई सौ या कई हज़ार कम्पनियों का नियंत्रण करते हैं। अभी तो इनमें परस्पर प्रतिस्पर्धा है, इस लिए कुछ रक्षा हो रही है। पर इनके मिल जाने पर गरीब या अमीर, जिसके घर एक पैसे का भी मिट्टी का तेल जलता होगा, वह इनकी मुट्ठी में रहेगा। ये ट्रस्ट अत्यन्त प्रबल होकर राष्ट्रों की सरकारों के लिए भी एक समस्या बन गये हैं।

पूँजीपतियों का अपना अपना स्वार्थ भी पूँजीवाद के लिए खतरनाक सिद्ध हो रहा है। साधारणतः कच्चे माल से तैयार माल बनाने वाला पूँजीपति यह चाहता है कि कृषिप्रधान देश कृषिप्रधान ही रहे और हमारा माल मँगाता रहे। लेकिन मशीनें बनानेवाला पूँजीपति यह चाहता है कि सब देशों में कल कारखाने खुलें और मेरी मशीनें बिकें। भारत के हाथ ब्रिटिश पूँजीपतियों ने बड़ी बड़ी मशीनें बेच कर अपने आप तो नफा कमा लिया, लेकिन अपने ही देशवासी कपड़ामिलों के मालिकों का नुकसान भी बहुत किया। अब भारत में ही बहुत सा कपड़ा तैयार होता है।

माल सस्ता पैदा करने की प्रतिस्पर्धा में पूँजीपति अपनी पूँजी कृषिप्रधान देशों में लगाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि भारत में लगी हुई ब्रिटिश पूँजी इंग्लैण्ड में लगी हुई अपनी ही पूँजी की

प्रतिस्पर्धिनी बन जाती है। भारत का कारखानेदार अंग्रेज़ भी सदा यह चाहता है कि इंग्लैण्ड मे बने हुए माल पर खूब चुंगी लगे। इस तरह उनका आपस में ही संघर्ष शुरु हो जाता है।

इस प्रकार पूँजीवाद ने अपनी समस्याएँ स्वयं पैदा कर ली है। पूँजीवाद की व्यवस्था मे पूँजीपति का पूँजीपति से, पूँजीपति का मज़दूरों से, पूँजीपति का सरकार से, विक्रेता का क्रेता से सब जगह विरोधभाव छिड़ गया है। पूँजीवाद ने भूख का तो हल नही किया, लेकिन पदार्थों को सुलभ अवश्य कर दिया है। जो चीज़ें पहले सिर्फ अत्यन्त समृद्ध लोगों को प्राप्त थीं, वे साधारण व्यक्ति को भी पूँजीवाद के द्वारा मिलने लगी हैं।

साम्राज्य वाद

विभिन्न विचारकों ने इसके हल के लिए अलग अलग उपाय बताये हैं। परन्तु उन पर विचार करने से पहले पूँजीवाद के एक महान् परिणाम पर संक्षेप से कुछ विचार कर लें। यह परिणाम है साम्राज्यवाद। साम्राज्यवाद का उद्देश्य है दुनिया मे एक देश द्वारा दूसरे देश या देशों पर अपना शासन कायम करना।

यों तो साम्राज्यवाद का सिद्धान्त बहुत पुराना है। भारत में भी महाभारत काल में सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य आदर्श समझा जाता था। अशोक, समुद्रगुप्त, हर्षवर्धन, अकबर सभी सम्राट् थे, परन्तु उन दिनों के साम्राज्य आजकल के जैसे न थे। सभी सभ्य और असभ्य राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति एक थी। मान और अधिकार-वृद्धि के लिए पड़ोसी राज्यों पर अधिकार किया जाता था। आज

कल के ब्रिटिश, फ्रेंच, जापानी, इटालियन साम्राज्य कोरी शान शौकत के लिए स्थापित नहीं किये गये। इनका उद्देश्य आर्थिक है और स्पष्टतः वर्तमान पूँजीवाद के परिणाम हैं।

औद्योगिक क्रान्ति होने से यूरोपीय देश व्यवसायप्रधान होने लगे। व्यवसाय बढ़ने पर उन्हें अपना तैयार माल बेचने तथा कच्चा माल और खाद्य पदार्थ लाने के लिए उपनिवेशों की जरूरत होने लगी। व्यवसायी अपने प्रयत्न से ऐसा कर नहीं सकते, इस लिए उन के देश की सरकारें, जिन पर व्यवसायियों का काफ़ी प्रभाव होता है, आगे बढ़ती हैं। अपने से दुर्बल और कृषिप्रधान देश में ही अपनी इच्छानुकूल शर्तें अमल में आ सकती हैं। रेल, तार, जहाज तथा युद्ध के अस्त्र शस्त्रों के आविष्कार हो जाने से पराधीन किये गये देशों या उपनिवेशों की दूरी बहुत ही कम दीखने लगी और उन पर आधिपत्य तथा शासन करना भी सरल हो गया।

पिछली सदी में अपना अपना साम्राज्य बढ़ाने के लिए यूरोप के राष्ट्रों ने भीषण प्रयत्न किये। इसका परिणाम यह हुआ कि अपने अपने देश के क्षेत्रफल से कई गुने क्षेत्रफल को इन्होंने अपने अधीन किया हुआ है ब्रिटेन का क्षेत्रफल १ लाख वर्गमील से कम है, लेकिन उसका साम्राज्य १ करोड़ ३३५ लाख वर्गमील में फैला हुआ है फ्रांस का क्षेत्रफल सवा दो लाख वर्ग मील से कुछ कम ही है, लेकिन उसका राज्य ४५ लाख वर्गमील में है। बेलजियम ११ हजार वर्गमील का होते हुए भी ६॥ लाख वर्गमील का स्वामी है। नीदरलैण्ड स्वयं १२००० वर्गमील का है, लेकिन उसका साम्राज्य

८ लाख वर्ग मील से अधिक है। जापान अपने से ८ गुना साम्राज्य का स्वामी है, और चीन के नये जीते हुए प्रदेश को मिलाया जाय, तो वह १२-१३ गुना हो जाता है। यही हाल दूसरे राज्यों का है।

साम्राज्यविस्तार की इस सारी भावना के पीछे आर्थिक हित काम कर रहे हैं। हम पहले कह चुके हैं कि पूँजीपति पूँजीपति मे और देश देश मे प्रतिस्पर्धा बहुत बढ़ गई है। कच्चा माल सस्ता प्राप्त करने और अपना तैयार माल बेचने के लिए ऐसे बाज़ारों की ज़रूरत है, जो अपने अधीन रहे और न स्वयं माल बना सकें, न दूसरे प्रतिस्पर्धी राष्ट्रों का माल लें। इसी लिए विजित राष्ट्रों और उपनिवेशों के लिए साम्राज्यवादी राष्ट्र आपस में भी संघर्ष करते हैं।

आर्थिक पराधीनता—परन्तु सब देशों को राजनैतिक दृष्टि से पराधीन करना संभव नहीं होता। इस लिए कुछ राष्ट्रों को आर्थिक संधियों से जकड़ कर वहाँ विशेष अधिकार ले लिये गये हैं; बहुत उदार शर्तों पर व्यवसाय और व्यापार की भारी भारी सुविधाएँ ले ली गई हैं; बड़ी बड़ी रेलवे कम्पनियाँ, बिजली, ट्राम, मोटर कम्पनियाँ, बैंक आदि स्थापित करके उन उन देशों मे अपने विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये गये हैं; किसी राष्ट्र को दूसरे प्रबल शत्रुओं से बचाने का आश्वासन देकर भी उसका संरक्षण अपने हाथ मे लिया गया है। दूसरे राष्ट्रों को आवश्यकता के समय भारी भारी रकमें उधार देकर उसकी वसूली की गारंटी के नाम पर कुछ अधिकार लेने के भी बहुत से उदाहरण मौजूद हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने १८९८ से लेकर १९१७ के भीतर भीतर किसी न किसी कारण से लगभग दो

लाख वर्गमील भूमि पर अधिकार किया है, जिस पर २ करोड़ के लगभग मनुष्य वसे हुए हैं। जापान ने चीन के पूर्वोत्तरी सीमा के प्रदेश मंचूरिया को हस्तगत करके 'मंचूको' नाम से एक स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दिया और वहाँ कठपुतली सरकार कायम कर दी।

आपस में संघर्ष—पृथ्वी विशाल थी, परन्तु परस्पर साम्राज्य-विभाजन से वट गई। अव और ज्यादा रवड़ की भांति खींचकर वढ़ाई तो जा नहीं सकती। अफ्रीका प्रायः सारा वँट चुका है। एशिया में कोई कोना वचा नहीं दीखता। एक चीन है, उसे लेने के लिए जापान पिछले चार वरसों से प्रयत्न कर रहा है। परन्तु साम्राज्यवादी देशों की तृप्ति नहीं हुई। जिन राष्ट्रों के पास उपनिवेशों की कमी है, वे संसार के वर्तमान विभाजन से असंतुष्ट हैं और नये वटवारे के लिए युद्ध का आश्रय लेते हैं। यही युद्ध का मूल कारण है। नाजी जर्मनी ने जव यह देखा कि यूरोप से वाहर के उपनिवेश प्राप्त करने के लिए प्रवल राष्ट्रों से लड़ना पड़ेगा, तो इसने यूरोप की ही भूमि पर—अपनी गोरी जातियो पर ही—साम्राज्यविस्तार का निश्चय कर लिया। आज जर्मनी आस्ट्रिया को हजम कर चुका है, जेकोस्लोवेकिया और पोलैण्ड भी उसकी उदरदरी मे समा चुके हैं। फ्रांस, नार्वे, वेलजियम, हालैण्ड और यूगोस्लेविया, ग्रीस आदि भी आज उसकी मुट्ठी मे हैं। इनका न जाने क्या भविष्य होगा? इटली ने भी अवी-सीनिया पर अधिकार करने के वाद अलवानिया पर अधिकार कर लिया है।

साम्राज्य की विजय और रक्षा के लिए किया जानेवाला भारी

ौर विनाश कभी कभी विचारकों को चिन्तित अवश्य कर लेकिन पूंजीपतियों के माल की बिक्री और कच्चे माल या मज़दूरी के प्रलोभन के आगे दूसरा चारा भी नहीं दिखाई ूंजीवाद के रहते साम्राज्यवाद मर नहीं सकता।

राष्ट्रीयता

म्राज्यवाद के मूल मे पूंजीवाद है लेकिन उसे आगे बढ़ाने वाली होती है और सरकारें जब अपने देश को साम्राज्यविस्तार के लिए तैयार करती हैं, तब वे राष्ट्रीयता की दुहाई देती हैं। ता का अर्थ है अपने राष्ट्र से प्रेम और उसकी सर्वांगीन की भावना। परन्तु आश्चर्य यह है कि एक ओर राष्ट्रीयता वना जहाँ साम्राज्यविस्तार मे प्रधान सहायक बना दी जाती है, ी भावना साम्राज्य को छिन्नभिन्न करने का कारण भी बन जाती ाधीन राष्ट्रों मे साम्राज्य या गुलामी का जुआ उतार फैंकने आन्दोलन चला है, उसका मूल कारण भी यही राष्ट्रीयता. वना—अपने राष्ट्र स प्रेम और उसकी सर्वांगीन उन्नति की है।

ट्रीयता की भावना अपने समस्त देश से प्रेम करना सिखाती जनता के हृदय मे यह भाव उत्पन्न करती है कि अपने देश नैतिक, आर्थिक, सामाजिक स्वार्थों को पूरा करो। पराधीन विदेशी शासन या प्रभाव को दूर करने की अभिलाषा इसी णाम है। चीन जापान से इसी भावना के कारण लड़ रहा है।

भारत में इसी भावना से प्रेरित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा है। कमालपाशा ने इसी भावना का संचार करके टर्कों को पूर्ण स्वतंत्र करने का प्रयत्न किया था। अपने अपने राष्ट्रों को स्वाधीन करने के जो भी युद्ध किये गये हैं, उन सबका मूल कारण यही राष्ट्रीयता या देशप्रेम का भाव है।

उग्रराष्ट्रीयता—फ़ासिज़्म और नाज़िज़्म

लेकिन आजकल राष्ट्रीयता का एक और रूप भी है। इसे हम उग्र राष्ट्रवाद कह सकते हैं। राष्ट्र की उन्नति ही इसका मूलमंत्र है, इसे परम उद्देश्य मानकर यह अन्य सब संस्थाओं और सद्गुणों के विनाश की रत्तीभर भी परवाह नहीं करता। व्यक्तिगत स्वतंत्रता चूल्हे में जाय, नागरिक स्वाधीनता नष्ट हो जाय, लेकिन राष्ट्र की उन्नति होनी चाहिए। इसके लिए दूसरे देशों से युद्ध करना पड़े, अपने से दुर्बल राष्ट्रों को पराधीन करके उनका शोषण करना पड़े, सब ठीक है, क्योंकि अपने राष्ट्र की तो उन्नति होती है। इस उग्र राष्ट्र-वाद के परस्पर मिलते जुलते से दो रूप आज हमारे सामने हैं। एक का नाम है फासिज्म और दूसरे का नाम है नाजिज्म। दोनों में बहुत सी समानताएँ है। दोनों के मन्तव्य के अनुसार राष्ट्र सर्वोपरि है। १९ वीं सदी के व्यक्तिस्वातंत्र्यवादी कहा करते थे कि राज्य से व्यक्ति की स्वतंत्रता नष्ट होती है, फिर भी इसे हम नष्ट नहीं कर सकते, क्योंकि राज्य या सरकार न होने से देश में अव्यवस्था फैल जावेगा। लेकिन फ़ासिज्म के अनुसार राज्य वस्तुतः जनता का विवेक और

संकल्प हो जाता है। राज्य ही व्यक्तियों मे नागरिकता के गुण उत्पन्न करता है, उनमे सामाजिकता और एकता स्थापित करता है। राज्य उनके हितों में इस प्रकार सामंजस्य उत्पन्न करता है कि सभी हित या स्वार्थ न्यायोचित रूप से अपना अपना काम करने लगते हैं। जब राज्य के प्रति लोगों का प्रेम क्षीण हो जाता है और व्यक्तियों तथा वर्गों वाली प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है, तब राष्ट्र या जातियाँ मानो मृत्यु की ओर अग्रसर होती हैं।

राज्य और राष्ट्र के प्रति इस अगाध श्रद्धा का परिणाम 'डिक्टेटर शिप' या 'अधिनायकवाद' के रूप मे हमारे सामने आया। राज्य के प्रति अगाध श्रद्धा का अर्थ क्रिया में परिणत करने पर सरकार के प्रति अगाध श्रद्धा हो जाता है, क्योंकि सरकार ही राज्य का मूर्त चिह्न है। सरकार की आलोचना या विरोध का स्थान नहीं रहता, इस लिए जनता को सरकारी कामों मे दख़ल नहीं देना चाहिए। फिर दायरा और भी संकुचित होता है। सरकार पार्लमेंट मे भी जन-प्रति-निधियों की आलोचना सहन नहीं करती। राज्य ही सब शक्तियों और अधिकारों का केन्द्र है। यह मान लेने पर राज्य के सर्वोच्च शासक को अधिकार मिल जाने स्वाभाविक हैं। जनता अपने को राज्य से हीन मानने लगती है और प्रजातंत्र की आधारभूत भावना ही नष्ट हो जाती है। मुसोलिनी ने एक स्थान पर फासिस्ट आदर्श को इन शब्दों मे बताया है—"मेरा राष्ट्र मे पूर्ण विश्वास है। इसके बिना मै पूर्ण मनुष्य नहीं बन सकता। मेरा विश्वास है कि इटली का पवित्र भाग्य एक दिन संपूर्ण विश्व पर सबसे महान् आध्यात्मिक प्रभाव

डालेगा। मैं ड्यूस मुसोलीनी की आज्ञा का पालन करूँगा, क्योंकि इसके विना समाज स्वस्थ नहीं हो सकता।"

फ़ासिज्म अन्तर्राष्ट्रीयता या विश्वबंधुत्व मे विश्वास नहीं करता। वह साम्राज्य-विस्तार को वांछनीय और इसके लिए किये गये युद्धों को उपयोगी मानता है। साम्यवाद मे भी राष्ट्र और समस्त समाज की उन्नति आदर्श समझी जाती है लेकिन सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण और अमीर गरीब के भेद नष्ट करने पर विशेष जोर दिया जाता है। इसके विपरीत फ़ासिज्म व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार को कायम रखता है। लेकिन फिर भी जहाँ तक राज्य की शक्ति होगी, वह कभी किसी व्यक्तिगत सम्पत्ति के मालिक को कोई ऐसा काम न करने देगा, जिससे राज्य के हित मे बाधा पडती हो। वह मजदूरो और मालिकों के संघ (करपोरेशन) वना कर इनमे परस्पर सामंजस्य तो स्थापित करता है, लेकिन इनमे किसी को नष्ट नहीं करना चाहता, न मजदूर हड़ताल कर सकते हैं और न मिलमालिक ताला लगा सकते हैं, क्योंकि इससे राष्ट्रीय सम्पत्ति पर भीषण हानिकारक प्रभाव पडता है।

फ़ासिज्म का अन्तर्राष्ट्रीय रूप यह है कि वह साम्राज्यवाद मे विश्वास करता है। उसके अनुसार दुर्वल को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं। वह रोमन विशाल साम्राज्य के पुराने स्वप्न को पूरा करना चाहता है। इस लिए वह युद्ध की तैयारियों पर वहुत जोर देता है। राज्य-शासनकार्य मे वह जनता की विचारबुद्धि पर विश्वास नहीं करता, इसलिए वह केवल एक पार्टी पर विश्वास करता है। वह समस्त राष्ट के लिए एक आदर्श, एक नारा, एक नीति, और एक शिक्षा पर

विश्वास करता है। इसलिए उसकी सम्मति में नागरिकों को लिखने बोलने की स्वतंत्रता देना अनुचित है।

फ़ासिस्ट संगठन—फ़ासिज़्म का विकास बाक़ायदा सोच विचार कर नहीं किया गया। इसका विकास शनैः शनैः हुआ है। इसका संस्थापक मुसोलीनी पहले कभी साम्यवादी था, लेकिन जब उसने १९२० में देखा कि साम्यवादी इटली की हालत सुधारने में सफल नहीं हो रहे, उसका चित्त साम्यवाद के प्रति विमुख हो गया। उसने बोलशेविज़्म को इटली से उखाड़ फैंका। १९२२ मे उसने रोम का शासनसूत्र अपने हाथ में लिया। उसी समय से उसकी फ़ासिस्ट पार्टी का ज़ोर भी बहुत बढ़ गया, लेकिन १९२५ तक भी यह किसी को ज्ञात न हो सका कि उसके उद्देश्य क्या हैं। बस, तीन साल तक वह अपने विरोधी संगठनों को कुचलता रहा। अब फ़ासिस्ट पार्टी ने इटली के पुनर्निमाण की ओर ध्यान देना शुरू किया और उसने कृषि, व्यवसाय आदि पर पूर्ण नियंत्रण करके एक योजना द्वारा इटली को सम्पन्न और स्वावलम्बी बनाने की चेष्टा की।

आज इटली में फ़ासिस्ट पार्टी ही एकमात्र राजनैतिक संगठन है। उसके सदस्य मुसोलीनी की आज्ञा मानने पर विवश हैं। उनका यह आदर्श है कि मुसोलीनी हमेशा ठीक करता है। फ़ासिस्ट पार्टी का संगठन सैनिक है। सब सदस्यों को सैनिक शिक्षा लेनी पड़ती हैं। इस पार्टी की अपनी सेना है, जिसका संगठन सरकारी सेना की तरह सुदृढ़ है। फ़ासिस्ट पार्टी की सबसे प्रमुख संस्था सुप्रीम ग्राण्ड कौंसिल है। इसकी नियुक्ति मुसोलीनी स्वयं करता है।

मुसोलीनी के अलावा काउण्ट सियानो, डी अलफेरी, बैलबो आदि प्रमुख फ़ासिस्ट नेता हैं।

नाजीवाद

नाजीवाद फासिज्म का ही जर्मन रूपान्तर है। एक नेता मे समस्त शक्ति का केन्द्रीकरण, राज्य के प्रति अगाध श्रद्धा और दृढ़ अनुशासन, लिखने बोलने और संगठन के स्वातंत्र्य पर प्रतिबंध तथा साम्राज्यवादी नीति इन सब बातों मे नाजिज्म फ़ासिज्म का ही अनुकरणमात्र है, लेकिन हर हिटलर ने अपनी पार्टी का संगठन इतने अद्भुत और चमत्कारपूर्ण तरीके से किया और थोड़े से समय मे अनेक महत्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त करके इतना आतंक पैदा कर दिया कि आज हिटलर और नाजीवाद मुसोलिनी और फ़ासिज्म की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध हो चुके है। फ़ासिज्म की दृष्टि मे भी स्त्रियों का स्थान राजनीति या आर्थिक क्षेत्र नहीं, घर है। नाजीवाद भी यही मानता है। दोनों की सम्मति मे स्त्रियों का काम सन्तानोत्पत्ति और उनका पालनपोषण है। स्त्रियां और पुरुषों में जो स्वाभाविक भेद हैं, उन्हे दोनों ही कायम रखना चाहते हैं। परन्तु नाजीवाद एक और विशेषता भी साथ लाया और वह थी जाति या वंश की शुद्धता। शुद्ध 'आर्य' रक्त के वंशजों का आदर और यहूदी आदि विदेशी जाति या जातिसंकरों से घोर घृणा नाजीवाद का मुख्य सिद्धान्त है। अब तो हिटलर के प्रभाव से इटली मे भी यहूदियो का बहिष्कार प्रारम्भ हो गया है।

नाजी पार्टी का विकास—नाजी वस्तुतः नेशनल सोशलिस्ट पार्टी का संक्षिप्त रूप है। गत महायुद्ध के बाद से जर्मनी में अनेक छोटी बड़ी पार्टियों का संगठन हुआ। सभी अपना अपना कार्यक्रम पेश करती थीं, लेकिन युद्ध और उसके बाद की नई संधि की भारी शर्तों के भार के कारण जर्मनी की जो दुरवस्था हो गई थी, उसका हल किसी के पास न था। इन्ही पार्टियों मे से एक का नाम था नेशनल सोशलिस्ट पार्टी। साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए राष्ट्रीय उन्नति इसका मुख्य उद्देश्य था। हर हिटलर के इसमे शामिल होने के बाद इसका प्रभाव और संगठन बढ़ने लगा। इससे पहले इसके कुल छः सदस्य थे और हिटलर सातवाँ सदस्य था।

इस पार्टी ने अपने २५ ध्येय और कार्यक्रम नियत किये थे। इनमें कुछ मुख्य ये हैं—(१) सब जर्मन भाषा भाषियों का संगठन (२) वर्सेलीस संधि का भंग (३) भोजन की उत्पत्ति और उपनिवेशीकरण के लिए साम्राज्यविस्तार (४) विशुद्ध जर्मन रक्त के लोगों का राष्ट्र निर्माण और यहूदियों का बहिष्कार (५) राष्ट्र का उद्देश्य जनता का कल्याण (६) सब नागरिकों के अधिकार व कर्तव्य समान हैं। (७) अनुपार्जित सम्पत्ति का खातमा (८) युद्ध के समय उठाये गये नाजायज़ लाभ की ज़ब्ती (९) सब ट्रस्टों और कम्बाइनों का राष्ट्रीयकरण (१०) बुढ़ापे का बीमा और सामाजिक बीमा (११) जमीन का सुधार (१२) राष्ट्रीय शिक्षा (१३) राष्ट्रीय स्वास्थ्य की उन्नति (१४) अनिवार्य सैनिक शिक्षा (१५) अखबारों पर नियंत्रण और (१६) जर्मनी में प्रबल केन्द्रीय शासन।

इस कार्यक्रम में साम्यवादी व राष्ट्रीय दोनों अंग थे। लेकिन ज्यों ज्यों हिटलर शक्ति पकडता गया, वह साम्यवादी कार्यक्रम की उपेक्षा करने लगा। १९२० ई० से लेकर १९३२ तक यह दल हिटलर के नेतृत्व मे अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करता गया। १९२२ में नाजी पार्टी ने म्यूनिक पर धावा बोल कर मुसोलिनी के रोम-आक्रमण जैसा प्रयत्न किया, लेकिन उसमे सफल न हुआ। हिटलर गिरफ्तार हो गया, परन्तु ८ मास बाद छूट गया और पार्टी का उसने फिर से संगठन किया। सन् १९२४ मे ३२ नाजी रीशस्टैग (जर्मनी की प्रतिनिधि सभा) मे चुने गये, लेकिन १९३० मे १०७ सदस्य चुने गये। इस अरसे मे नाजीदल की भूरी सेना भी खूब संगठित और बलशाली हो गई थी। प्रारम्भ मे सेना नाजियों की होने वाली सभाओं के पहरेदार स्वयंसेवकों के रूप मे थी, लेकिन बढ़ते बढ़ते इस के सैनिकों की संख्या लाखों तक पहुँच गई। इस सेना की वजह से नाजी पार्टी का प्रभाव और भी बढ़ गया। आखिर १९३३ की ३० जनवरी को हिटलर जर्मनी का प्रधान मंत्री (चांसलर) बनाया गया और तब से नाजीपार्टी का प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। इसके बाद जर्मनी का इतिहास, हर हिटलर का जीवन या नाजी पार्टी का विकास सब एक ही हैं।

नाजी कार्यक्रम—अब फासिज्म या नाजीवाद के सिद्धान्तों के अनुसार जर्मनी का शासन होने लगा। हम ऊपर कह चुके हैं कि हिटलर ने घोषित साम्यवादी कार्यक्रम की उपेक्षा कर दी थी। लेकिन उसने जो कार्यक्रम बनाया, उसे हम पूर्ण रूप से पूंजीवादी कार्यक्रम

भी नहीं कह सकते। व्यक्तिगत सम्पत्ति को कायम रखा गया, किसी ट्रस्ट या कम्पनी को राष्ट्रीय सम्पत्ति नहीं बनाया गया, पूंजी का थोड़े से हाथों में केन्द्रीकरण भी जारी रहने दिया गया, लेकिन आर्थिक नीति का सूत्र और नियंत्रण राज्य के हाथ मे कर दिया गया। यह भी साम्यवादी भावों के कारण नहीं, लेकिन राष्ट्र की आवश्यकताओं के कारण। अब सरकार या नाज़ी पार्टी ही समस्त देश की उत्पत्ति आदि का नियंत्रण करती है।

आजकल जर्मनी में नाज़ीपार्टी ही एकमात्र राजनैतिक पार्टी है। दूसरी कोई पार्टी संगठित हो भी नहीं सकती। इसके नेता हिटलर को सर्वाधिकार प्राप्त हैं। पार्टी के सदस्य नीतिनिर्धारण में कोई भाग नहीं लेते, उनका काम सिर्फ आज्ञापालन है।

नाजी पार्टी की कार्यनीति उसके उपरिलिखित सिद्धान्तों के आधार पर चलती है। विशुद्ध आर्य वंश पर उसे विश्वास है। नाजी पार्टी के सर्वप्रमुख सैद्धान्तिक विद्वान् रोज़नबर्ग ने नाज़ी सिद्धान्तों की कल्पना करते हुए लिखा है कि "वर्तमान बुराई की जड़ १७८९ की फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति है, ज़िसने कुलीन नार्डिक वंश के प्रभाव को कम करके अकुलीन जनता की शक्ति बढ़ा दी। उसी समय से 'उदार' विचारों का प्रादुर्भाव हुआ और उससे मार्क्सवाद का जन्म हुआ। मार्क्सवाद का परिणाम था रूस का साम्यवाद। जर्मनी को फ्रैंच राज्यक्रान्ति के इन सब परिणामों को नष्ट करना है। ज़ैक, पोल, रूसी और दूसरे स्लेव सब अकुलीन जातियाँ हैं। ये स्वतंत्रता की अधिकारिणी भी नहीं हैं। जर्मनी को इन पर अधिकार करना

ही चाहिए।" नाजी जर्मनी इन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार कार्य कर रहा है। नाजी जर्मनी के प्रमुख नेता हिटलर, गोयरिंग, गोबेल्स आदि हैं।

हम ऊपर पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के विकास पर दृष्टि डालते समय देख चुके हैं कि उनके कारण संसार में नयी समस्याएँ उपस्थित हो गई हैं। पूंजीवाद की आन्तरिक राष्ट्रीय दृष्टि से पैदा हुई बुराइयों को उग्रराष्ट्रवाद कुछ हद तक रोकता है लेकिन वह स्वयं नई समस्याएँ पैदा कर देता है। इसके मूल में मानवजाति के एक बड़े भाग के प्रति घृणा, दूसरे दुर्बल राष्ट्रों का शोषण, साम्राज्यवाद और नागरिक स्वाधीनता का अपहरण, तानाशाही आदि अनेक बुराइयाँ हैं और इनके कारण नयी भीषण समस्याएँ भी पैदा हो गई हैं।

साम्यवाद

अनेक प्रमुख विचारकों का कहना है कि पूंजीवाद ने संसार की उन्नति मे भाग लिया, लेकिन वह अपनी बुराइयो के साथ साम्राज्यवाद को भी ले आया। जब तक पूंजीवाद रहेगा, तब तक उसकी समस्त बुराइयाँ भी रहेगी और साम्राज्यवाद भी रहेगा। इन्हीं त्रुटियों को दूर करने के लिए साम्यवादी दृष्टिकोण से आर्थिक और सामाजिक संगठन का प्रस्ताव हमारे सामने आया है। इसका मुख्य पुरस्कर्ता कार्लमार्क्स है। उसने मानवजाति के समस्त इतिहास का आर्थिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया। वह इस नतीजे पर पहुँचा कि सारे मानव समाज का पिछला और वर्तमान इतिहास वर्गयुद्ध का इतिहास

है। जिस वर्ग के हाथ में उत्पत्ति के साधन रहते हैं, उसी की प्रधानता रहती है। वह दूसरे वर्गों की मेहनत से अनुचित लाभ उठाता है। जो परिश्रम करते हैं, उन्हें अपने परिश्रम का पूरा फल नहीं मिलता। वे अपने जीवन की अत्यन्त आवश्यक जरूरतें भी मुश्किल से पूरी कर पाते हैं और बाकी का सारा हिस्सा शोषक अर्थात् उसे चूसने वाले के पास रह जाता है। इस तरह इस फालतू धन से शोषक वर्ग और भी बलवान बनता है। उत्पत्ति पर इस वर्ग का कब्जा होने की वजह से राज्य या सरकार पर भी इसका दबदबा रहता है। इस तरह इस शोषकवर्ग की रक्षा करना राज्य का मुख्य उद्देश्य बन जाता है। राज्य सारे शोषक वर्ग के काम काज का इन्तजाम करने के लिए एक प्रबन्ध-समिति के अलावा कुछ नहीं रहता।

लेकिन हजार कोशिश करने पर भी एक ही वर्ग सदा सबके सिर पर बैठा नहीं रहता। जब पैदावार या उत्पत्ति के नये तरीके निकल आते हैं, तो उन पर अधिकार भी नये वर्गों का हो जाता है। नया दल उन्नति करता है और आर्थिक सत्ता इसके हाथ मे होने से इसी की जीत होती है और पुराने वर्ग का खेल खतम होकर वह नष्ट हो जाता है। लेकिन यह नया वर्ग भी जल्दी ही अपने नीचे के वर्गों के लिए शोषक बन जाता है और फिर उन वर्गों में से किसी एक के हाथों हटा दिया जाता है। इस तरह जब तक एक वर्ग दूसरे का शोषण करने वाला रहेगा, तब तक यह कशमकश चलती रहेगी। यह झगड़ा उसी समय समाप्त होगा, जब कि अनेक वर्ग न रह कर सिर्फ़ एक वर्ग रह जायगा, क्योंकि तब शोषण

की गुंजायश ही न रहेगी। कोई वर्ग अपना शोषण तो कर नहीं सकता। तब आज का सा लगातार संघर्ष और प्रतिस्पर्धा न रहेगी। किसी का दमन नहीं करना होगा, इस लिए राज्य की भी आवश्यकता न रहेगी।

एक वर्ग या एक श्रेणी पैदा करने के लिए कार्लमार्क्स की सम्मति में समस्त संपत्ति को व्यक्तिगत न रख कर समाज या राष्ट्र की सम्पत्ति बना देना जरूरी है। वस्तुतः उत्पादन और श्रम के साधनों पर से वैयक्तिक अधिकार को हटा कर सामूहिक अधिकार स्थापित करने का नाम ही साम्यवाद है।

मार्क्सवाद का सब से बड़ा आधुनिक व्याख्याता लेनिन हुआ है। उसने उसकी व्याख्या और अर्थ ही नहीं किये, उनके अनुसार आचरण भी किया है। रूस में बोलशेविक क्रान्ति कर उसने वहाँ साम्यवाद को असली जामा पहना दिया।

यह समाजवाद या साम्यवाद अभी केवल रूस में अमल में आया लेकिन वहाँ भी पूर्ण आदर्श रूप मे नहीं। स्टालिन ने व्यावहारिक मार्ग को दृष्टि मे रखते हुए व्यावहारिकता के साथ काफी समझौता किया है। रूस को आर्थिक और व्यावसायिक दृष्टि से अन्य देशों के समान धरातल पर लाने के लिए विदेशी व्यवसायियों को वहाँ कारोबार शुरू करने की अनुमति दी गई, और भूमि पर राज्य की बजाय किसानों का स्वामित्व स्वीकार किया गया। साम्यवाद का आदर्श तो यह है कि सब नागरिकों की एक सी आर्थिक स्थिति हो, कोई ऊँच नीच न रहे, लेकिन अभी रूस भी उस आदर्श तक

नहीं पहुँचा। मेहनत के बदले वेतन न देकर सब की थोड़ी या बहुत आवश्यकतापूर्ति की बजाय अब भी वहाँ काम की मात्रा और किस्म के अनुसार मजदूरी दी जाती है, जिससे वहाँ भी अपेक्षाकृत धनी और दरिद्र श्रेणियाँ हैं।

साम्यवाद साम्राज्यवाद के विरुद्ध था, लेकिन अब रूस भी व्यावहारिक राजनीति के मार्ग पर चलने लगा है। उसने साम्यवाद के परम विरोधी जर्मनी के साथ संधि करके आधे पोलैण्ड पर अधिकार कर लिया था, स्वतंत्र फिनलैंड को कुचलाना चाहा था लिथुआनिया, लैटविया और एस्तोनिया को अपने मे मिला लिया था। लेकिन रूस और जर्मनी मे संधि स्थायी नहीं रह सकी। जर्मनी ने जून १९४१ में रूस पर भी आक्रमण कर दिया है और पोलैण्ड, लैटविया लिथुआनिया और एस्टोनिया आदि के बड़े भाग-पर अधिकार कर लिया है। अभी यह युद्ध जारी है इस समय रूस ने नाजी जर्मनी के नाश के लिए साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के समर्थक इंग्लैंड और अमेरिका से समझौता किया है और उसी पोलैंड से जिसे एक दिन रूस ने कुचला था आज संधि की है। इस तरह यह निश्चित है कि कार्लमार्क्स के साम्यवाद का आदर्श रूस में गिरता जा रहा है। विदेशों में साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रचार जो, थर्ड इण्टर नेशनल का मुख्य कार्य था, बहुत समय से छूट चुका है।

आज भी साम्यवाद के सम्बन्ध में अनेक छोटे बड़े मतभेदों के कारण विभिन्न देशों में अलग अलग दल हैं। अराजकतावाद राज्य या सरकार की संस्था को ही उठा देना चाहता है, सिंडिकलवाद ट्रेड

यूनियनों के आधार पर समाज का संगठन करना चाहता है, कोआपरेटिविज्म कोआपरेटिव सोसाइटियों का संघ बना कर एक नया साम्यवादी संगठन करना चाहता है। ब्रिटिश सोशलिज्म शनैः शनैः सुधार के पक्ष मे है।

गांधीवाद

हम अभी देख आये है कि संसार की विभिन्न समस्याओं और संगठन के बारे मे अलग-अलग विचारधाराएँ संसार में चल रही है। इनमे सबसे नवीन और सबसे अधिक प्रभावकारी रूप मे साम्यवाद हमारे सामने आया है। साम्यवाद अमीर और गरीब का भेद मिटा कर सबको समान धरातल पर लाना चाहता है। परन्तु म० गाधी ने इस से भिन्न एक विचारधारा हमारे सामने रखी है। उसका उद्देश्य भी संसार से विषमता और भेद-भाव हटाना है। लेकिन इन दोनों वादो मे एक बडा भारी अन्तर है।

साम्यवाद अपने उद्देश्य तक पहुँचने के लिए यथासंभव सब उपाय अमल मे चाहता है, लेकिन गाधीजी पवित्र उद्देश्य के साथ साधनों की पवित्रता पर भी उतना ही जोर देते हैं। सत्य उनका उद्देश्य है और अहिंसा उनकी प्राप्ति का साधन। उनका कहना है कि प्रत्येक मनुष्य के हृदय के अन्दर सत् की प्रवृत्ति भी होती है। अपने कष्ट-सहन, तपस्या, त्याग और अपने ऊँचे चरित्र द्वारा विरोधी की उसी प्रवृत्ति को उत्तेजित करना हमारा कर्तव्य है। पापी के व्यक्तित्व से नहीं, उसके पाप से घृणा करनी चाहिए और इस लिए बल-प्रयोग के द्वारा विवश करने की अपेक्षा उसके हृदय परिवर्तन का ही हमे

प्रयत्न करना चाहिए। हिंसा को यदि हमने एक बार भी हृदय में स्थान दे दिया, तो यह निरंतर बढ़ती जाती है। आज हमने किसी को अपने भौतिक बल से हरा दिया, वह हार गया, लेकिन ज्योंही उसने फिर शक्ति प्राप्त की, वह फिर सिर चढ़ आयगा। इस तरह हिंसा प्रति-हिंसा का चक्र चलता रहेगा और संसार मे युद्ध कभी समाप्त होने न पायगा। इसीलिए गांधीजी हिसात्मक शस्त्र का पूर्ण विरोध करते हैं।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वे विरोधी के आगे दब जाने का उपदेश देते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि अपनी जान भी चली जावे, शत्रु के आगे मत झुको, अन्याय को स्वीकार मत करो, लेकिन दूसरे पर भी हाथ मत उठाओ—उसका बुरा भी न सोचो; आखिर तुम्हारे कष्ट-सहन और आत्मत्याग से शत्रु का दिल पसीजेगा। गांधीजी की सम्मति मे शान्ति का यही एकमात्र उपाय है। आर्थिक क्षेत्र मे भी गांधीजी अहिंसा के इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। वे गरीबों के अत्यन्त हितचिन्तक हैं, लेकिन उन्हें भी यह सलाह नही देते कि वे कि पूंजीपतियों और जमीदारों पर हाथ चलावें। वे साम्यवादियों द्वारा अमीरों के कतले-आम के भी विरुद्ध हैं।

उनकी सम्मति मे वर्तमान समस्या का एक हल है वर्तमान बड़ी बड़ी मशीनरियों का खातमा। मशीनरी की वजह से ही अत्यधिक उत्पत्ति होती है और उसे खपाने के लिए ही पूंजीवाद और साम्राज्य वाद के भीषण खेल होते हैं। इस लिए हमे फिर अपने ग्रामोद्योगों की ओर लौट चलना चाहिए। इसी से अत्युत्पत्ति रुकेगी, दूसरे का

शोषण करने का साधन नष्ट होगा और पूंजीपतियों की श्रेणी अपने आप खतम हो जाने से संसार में विषमता भी नहीं रहेगी। पश्चिम के अर्थ-शास्त्री कहते हैं कि अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाओ और जीवन का धरातल ऊँचा उठाओ। इसके विपरीत गांधीजी कहते हैं कि अपनी आवश्यकताएँ कम करो। जब अपनी आवश्यकताएँ कम होंगी, तब दूसरे का धन या अधिकार हड़पने की भी जरूरत न रहेगी और फलतः पूंजीवाद और साम्राज्यवाद भी नष्ट हो जाँयगे।

फिर भी जो पूंजीपति और जमींदार मौजूद हैं, उन्हें गांधीजी सलाह देते हैं कि किसानों और मजदूरों के सुख-दुःख की चिन्ता करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम उनके ट्रस्टी हो, माल जनता का है तुम अपना उचित व्यय लेकर बाकी उन में ही फिर बांट दो।

गांधी जी बार बार इसे दुहराते हैं कि अहिंसा कमजोर लोगों के लिए नहीं है। डर कर जो अहिंसा अपनाते हैं; उन्हें कोई लाभ नहीं होता। पाप और अन्याय (चाहे वह व्यक्तिगत हो, सामाजिक हो, या राजनैतिक) के सामने आत्मसमर्पण न झुकना ही वीरता है। यों वे कहते है कि कायरता या बुजदिली की बनिस्बत शत्रु पर आक्रमण कर देना अच्छा है। यदि अपनी बहन के सतीत्व की रक्षा तुम अहिंसापूर्वक नहीं कर सकते, तो आततायी पर हाथ चला कर भी उसके सतीत्व की रक्षा करनी चाहिए। यही सिद्धान्त वे अन्यत्र भी लागू करते हैं, लेकिन वे कहते हैं कि अहिंसा से ही परम साध्य प्राप्त हो सकता है, अपने से बलवान् के आगे तुम्हारा भौतिक बल कुछ काम न देगा। जर्मनी की प्रबल हिंसा के मुकाबले में पोलैण्ड, बेल-

जियम और फ्रांस की कुछ कम हिंसा-शक्ति काम न आई। यदि वे निर्भयता और वीरतापूर्वक अड़ जाते, न उन्हें मारते और न उनका शासन स्वीकार करते, चाहे जर्मनी कितने भी भीषण अत्याचार क्यों न करता, तो गांधीजी विश्वास दिलाते हैं कि जर्मनी स्वयं संधि करने पर विवश होता और किसी राष्ट्र को अपने अधीन न कर पाता।

गांधीजी की यह विचारधारा बिलकुल नई है और संसार के अबतक के इतिहास से बिलकुल भिन्न है। इस लिए और अपने मानवहृदय की स्वाभाविक दुर्बलताओं के कारण यह कहना कठिन है कि गांधीवाद कभी समस्त संसार मे मान्य होगा, लेकिन यह असंभव भी नही है। वर्तमान भीषण महायुद्ध के बाद बहुत संभव है कि संसार के विचारकों मे वर्तमान संस्कृति के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न हो और पूंजीवाद, मशीनरी, सेनाएँ और युद्ध सबके विरुद्ध एक नया व्यापक संगठन उत्पन्न हो जाय।

सातवाँ अध्याय

आज के युग-निर्माता

आज समस्त संसार में जो भारी राजनैतिक उथल पुथल मच रही है, उसे ठीक तरह से समझने के लिए विभिन्न प्रमुख राष्ट्रों के वर्तमान कर्णधारों का संक्षिप्त परिचय जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। इनके परिचय से नई विचारधाराओं को भी जिनका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, ठीक तरह समझा जा सकेगा। हमें मालूम होगा कि किन परिस्थितियों में नवीन विचारधाराओं के प्रवर्तकों ने इन को चलाया और किस तरह उनका विकास हुआ। इस अध्याय में हम कुछ ऐसे ही युग-निर्माताओं का संक्षिप्त परिचय देना चाहते हैं।

मुसोलीनी

एक समय गरीब लुहार का पुत्र, जिसे सोने के लिए मैदान में घास के सिवा कोई बिस्तर तक न था, आज इटली का सर्वेसर्वा है। मुसोलीनी का जन्म जुलाई १८८३ में हुआ था। माता की प्रेरणा पर वह एक धार्मिक स्कूल में गया और कुछ समय शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह एक स्कूल में अध्यापक हो गया। पर इस अध्यापकी

में उसे कोई रस न आया। १६ साल की उम्र में वह स्विट्ज़रलैण्ड भाग गया और एक चाकलेट फैक्टरी मे नौकर हो गया। दिन को काम करता और रात को सोशलिज़्म' का अध्ययन करता। कुछ ही दिनों में वह आन्दोलन में भाग लेने लगा, पुलिस ने उसका पीछा किया और जेल भेज दिया। वह किसी तरह बाहर निकला और फिर पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। इटली और स्विट्ज़रलैण्ड मे वह ११ दफ़ा गिरफ्तार किया गया। इन बरसों मे उसका अध्ययन जारी रहा। मार्क्स और निशे तथा फ्रैंच और जर्मन का अध्ययन उसने इसी स्थिति मे किया।

मुसोलीनी १६०४ मे पक्का साम्यवादी बनकर इटली लौटा। उसने कई पत्र निकाले और साम्यवादी विचारों का प्रचार इटली मे शुरु किया, लेकिन १६१४ के विगत महायुद्ध ने उसके साम्यवादी जीवन का अन्त कर दिया। वह साम्यवाद की बजाय राष्ट्रीय परिभाषा में सोचने लगा और यहाँ तक कि जब इटली ने भी युद्ध मे पड़ने की घोषणा कर दी, तब वह एक सैनिक बनकर रणक्षेत्र मे कूद पड़ा। इस कारण उसे साम्यवादी पार्टी ने निकाल भी दिया। युद्ध क्षेत्र मे वह कई पदों पर कार्य करता रहा और १६१७ मे सख्त घायल हो कर वह अपने देश लौटा।

इसके बाद असली इतिहास शुरू होता है। गत महायुद्ध में मित्रराष्ट्रों के विजयी होने पर भी इटली को कुछ विशेष भाग प्राप्त न हुआ था, इस लिए इटली मे असंतोष था। आन्तरिक शासन दुर्बल था, साम्यवादी स्थिति के सुधारने मे असमर्थ थे। ऐसे दिनों में

मुसोलीनी ने अपनी फासिस्ट पार्टी की स्थापना की। स्थापना के समय केवल ४० ही सदस्य थे। लेकिन ७ साल में ही ५००० मत इसे मिले और जब १९२२ मे मुसोलीनी ने रोम की ओर विशाल प्रस्थान किया, तो उसके साथ ५०००० फासिस्ट थे। उसके अनुयायी उसे 'ड्यूस' कहते थे और आज भी वह इसी नाम से पुकारा जाता है। तत्कालीन सरकार दुर्बल थी, उसने स्तीफा दे दिया और इटली के राजा ने मुसोलीनी को इटली का प्रधान मंत्री बना दिया। इसके बाद से मुसोलीनी का जीवन और इटली का इतिहास एक है, दोनों परस्पर पर्यायवाची शब्द हो गये हैं।

उसका आदर्श था इटली को सुसंगठित करके संसार की एक महान् शक्ति बना देना। वह प्राचीन रोमन साम्राज्य के स्वप्न देखा करता था और इटली के युवकों मे भी उसने इसी भावना और महत्त्वाकांक्षा को भरने की कोशिश की। लेकिन ऐसा करने के लिए उसने सबसे पहले इटली के अन्दर एकता स्थापित करने की कोशिश की। यह कार्य सरल न था, लोग अपने अपने सिद्धान्तों व विचारों को छोड़ने को तैयार न थे। उसने कठोरता का आश्रय लिया। सबसे पहले उसने साम्यवादियो को कुचलने का निश्चय किया। प्रसिद्ध साम्यवादी नेता मोतीअती मार डाला गया। इससे जो असंतोष उत्पन्न हुआ, उसे भी उसने क्रूरतापूर्वक कुचल दिया। १९२५ मे फ़ासिस्ट पार्टी के बहुमत का लाभ उठा कर उसने डिक्टेटर के अधिकार प्राप्त कर लिये। यहीं से वस्तुतः वर्तमान डिक्टेटरशाही के युग का प्रारंभ होता है। १९२६ मे उसने कम्यूनिस्ट, सोशलिस्ट,

लिबरल और क्लैरिकल आदि सब विरोधी दलों को कुचल दिया। उनके नेताओं पर मुकदमे चलाये गये और बहुत से स्वयं इटली से भाग गये। इटली में अब एक ही पार्टी रह गई और इस तरह प्रजातंत्र के मूलभूत सिद्धान्त बहुदल का खातमा हो गया।

आन्तरिक मतभेदों से निश्चिन्त होकर उसने इटली की उन्नति की ओर ध्यान दिया। सेना बढ़ाई गई, व्यापार व्यवसाय की उन्नति की गई और शिक्षा का प्रचार किया और सबसे बढ़कर जनता में यह भावना पैदा की कि राष्ट्र सर्वोपरि है, इसके आगे अपनी सब व्यक्तिगत स्वाधीनताएँ गौण हैं। इसी लिए मज़दूरों से हड़ताल के और मिल मालिकों से मिल बन्द करने तक के अधिकार छीन लिये गये। सरकार की आलोचना तक बन्द कर दी गई।

१६३५ मे इटली ने अबीसीनीया पर आक्रमण कर दिया। राष्ट्र-संघ ने इसका विरोध किया, उसके विरुद्ध कुछ कदम उठाया भी। लेकिन इसका परिणाम उलटा हुआ। वह तो जीत ही गया, पर उसका हृदय इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि राष्ट्र-संघ के प्रमुख सदस्यों से विमुख हो गया। वह उनके और अपने भी विरोधी जर्मनी की ओर झुका। यहीं से धुरी राष्ट्रों की वह मैत्री शुरू होती है, जो आज तक भी क़ायम है। आस्ट्रिया को मिला लेने पर हिटलर का शानदार स्वागत किया, ज़ैकोस्लावेकिया पर जर्मनी के आक्रमण का भी उसने गुप्त रीति से समर्थन किया और जब महायुद्ध छिड़ गया, तब पहले तो तटस्थ रह कर जर्मनी की सहायता करता रहा और फिर

अन्त मे युद्ध मे स्वयं भी कूद पड़ा। इससे पहले ही उसने अलबानिया पर भी अधिकार कर लिया था।

सब डिक्टेटरों मे मुसोलीनी सबसे अधिक शिक्षित है। वह सफल पत्रकार है। उसे प्रति मास २५०० रुपया वेतन मिलता है, लेकिन यह उसकी स्थिति के भारी खर्चों के लिए बहुत कम है। इस लिए वह लेखों से कमाता है। वह जर्मन, फ्रेंच और अंग्रेजी भी अच्छी तरह जानता है। १९२८ ई० मे उसने अंग्रेजी पढ़ी थी। उसका अपना जीवन बहुत सादा है। मांस, मद्य और सिगरेट से उसे सख्त परहेज है। धर्म पुस्तकों का अध्ययन जारी है और प्रतिदिन प्रार्थना करता है, फिर भी वह क्रूर है, घोर साम्राज्यवादी है और युद्ध को आवश्यक मानता है।

हिटलर

जर्मनी का डिक्टेटर हिटलर भी मुसोलीनी की तरह एक दरिद्र के घर पैदा हुआ था। उसका जन्म सन् १८८९ में आस्ट्रिया में हुआ था। १२ वरस की उम्र मे ही उसके पिता का देहान्त हो गया। अनाथ होकर वह वियाना के एक विद्यालय मे चित्रकला सीखने गया। लेकिन उसे भरती नही किया गया। तब वह मजदूर बन कर ईंटे बनाने लगा, लेकिन कुछ समय बाद यह पेशा छोड़ कर रंगीन तस्वीरे बना बना कर यात्रियों को बेचता और जिस किसी तरह अपना निर्वाह करता। इन्ही दिनों जर्मनी और इंगलैण्ड फ्रांस मे युद्ध छिड़ गया। हिटलर भी जर्मन

सेना में भरती हो गया। अपनी योग्यता के कारण वह कारपोरल तक बना दिया गया। मुसोलीनी की भाँति हिटलर भी युद्ध मे गोली खाकर घायल हो गया और अपने घर लौटा।

सन् १६२० मे हिटलर एक छोटी सीं पार्टी का सदस्य बना, पहले इसमें केवल छः सदस्य थे; लेकिन इस सातवें सदस्य ने आकर किस तरह नाज़ी पार्टी का उत्थान किया, हम यह पहले अध्याय में देख चुके हैं। उसके बाद हिटलर का इतिहास ही नाज़ी पार्टी का और १६३३ के बाद से जर्मनी का इतिहास बन जाता है। हिटलर का प्रभाव लगातार बढ़ता गया, उसके विचारों में, भाषणों और लेखों में जर्मनी के अभ्युत्थान का संदेश था, इस लिए निराश और पस्तहिम्मत जर्मनी ने उसे अत्यन्त आशा और उत्साह के साथ सुना। हिण्डनबर्ग जैसे लोकप्रिय जर्मन प्रैज़िडैन्ट का भी उसने चुनाव में मुकाबला किया, लेकिन असफल हुआ। इस समय जर्मनी के व्यवसायी पूंजीपति-वर्ग ने हिटलर का साथ इस उम्मीद में दिया कि वह उन्हें सोशलिज़्म के खतरे से बचावेगा। ज्यों ज्यों हिटलर की शक्ति बढ़ती जा रही थी, त्यों त्यों उसके विरोधी भी उग्र होते जा रहे थे, लेकिन वे हिटलर का कुछ बिगाड़ न सके। १६३३ जनवरी में हिटलर ही जर्मनी का प्रधान मंत्री (चांसलर) बन गया । उसने यह पद पाते ही सब से पहले अपने विरोधियों को कुचलने का निश्चय किया। इन्हीं दिनों जर्मन पार्लमैंएट की इमारत में आग लग गई। हिटलर ने इसका आरोप अपने विरोधी साम्यवादियों पर लगा कर उन्हें चुन चुन कर फाँसी पर लटकवा दिया। हिटलर ने कहा कि अग्निकाण्ड साम्यवादियों के

भीषण विद्रोह की सूचनामात्र है। लेकिन अधिकांश राजनीतिज्ञों का कहना है कि यह भीषण अग्निकाण्ड स्वयं हिटलर की अपनी योजना थी और इसका अपराध दूसरों के गलों पर मढ़ कर अपने रास्ते का कांटा दूर करना ही उसका उद्देश्य था। अग्निकाण्ड के अभियोग मे जर्मन रीशस्टैग के बहुत से सदस्य मार दिये गये। इसका एक परिणाम यह हुआ कि रीशस्टैग के इस चुनाव में भी ४४ फीसदी नाजी सदस्य चुने जा सके थे। बहुत से कम्यूनिस्ट सदस्यों के मार दिये जाने पर अब नाजियों का बहुमत हो गया। और हिटलर ने अपने लिए २३ मार्च १९३३ को डिक्टेटर के पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिये। डिक्टेटर बनते ही हिटलर ने सभी साम्यवादी संस्थाओं को गैरकानूनी घोषित कर दिया। जर्मनी के सब मजदूरसंघ भंग कर दिये गये; हजारों विरोधी जेल मे डाल दिये गये या फाँसी पर लटका दिये गये। समस्त जर्मनी मे हिटलर का आतंक छा गया।

लेकिन अभी तक हिटलर का नंगा नाच समाप्त न हुआ था। उसे स्वयं अपनी बनाई हुई नाजी सेना से ही डर लगा कि कहीं वह उसी के विरुद्ध खड़ी न हो जाय। नाजी पार्टी का उद्देश्य प्रारंभ मे साम्यवादी था। इस का नाम ही नेशनल सोशलिस्ट पार्टी था। स्वभावतः ही उसकी सेना मे भी बहुत से सैनिक साम्यवादी विचारों से थोड़ी बहुत सहानुभूति रखते थे। पिछले दिनों जर्मनी के बहुत से प्रमुख व्यवसायी भी नाजीदल मे सम्मिलित हो गये थे और वे लगातार हिटलर को साम्यवाद के विरुद्ध प्रेरित कर रहे थे। हिटलर को उनसे

खूब सहायता मिल रही थी । अन्ततः उसने ३० जून १९३५ को जर्मनी के प्रमुखतम व्यवसायी डा० क्रप के घर में बैठकर एक कांफ्रेंस की और अपनी भूरी सेना को भंग करने की घोषणा कर दी । इसी दिन उसने अत्यन्त गुप्त रूप से भूरी सेना के प्रधान सेनापति कैप्टेन रोहम अथा अन्य सेनापतियों को, जिनका हिटलर की अब तक की सफलताओं में भारी हाथ था, मरवा दिया । जर्मनी के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्लीशर भी मार दिये गये । म्यूनिक-विद्रोह को दबा कर हिटलर को गिरफ्तार करने वाले ७५ वर्षीय बूढ़े हर वान केर भी मार दिये गये । ख्याल किया जाता है कि इस भीषण रक्तपात मे ३०० से ११०० तक जर्मनी के प्रतिष्ठित प्रभावशाली नागरिक मौत के घाट उतार दिये गये। अब जर्मनी मे हिटलर के विरुद्ध कोई चूँ भी न कर सकता था । जब प्रैज़िडैण्ट हिण्डनबर्ग की मृत्यु हो गई, तब 'फ्यूरर' (महान नेता) के नाम से वह हिटलर जर्मन राष्ट्र का राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, नेता और डिक्टेटर बन गया ।

इन्हीं दिनों उसने यहूदियों को अनार्य रक्त का कह कर उन पर बड़े बड़े अत्याचार किये । उन्हें नागरिकता के अधिकारों से वंचित कर दिया गया । वे अपना संगठन नहीं वना सकते, नौकरी नहीं कर सकते, अखबार चला नहीं सकते और कोई जायदाद रख नहीं सकते । स्कूलों मे अनार्य यहूदी आर्यों के साथ बैठ नहीं सकते । हजारों लाखों यहूदी जर्मनी से निकल भागे । समस्त जर्मनी में यहूदियों के प्रति घृणा और विद्वेष का प्रचार करके उसने नागरिकों का ध्यान अपने क्रूर कारनामों की ओर से हटा दिया ।

जर्मनी की आन्तरिक स्थिति से निश्चिन्त होकर हिटलर ने राज्यविस्तार की ओर ध्यान दिया। इसके लिए पहला काम उसने यह किया कि अपने पड़ोसी देशों मे रहने वाले जर्मनों का नाज़ीदलों के रूप मे संगठन शुरू किया। जब ये नाजी संगठित हो गये, उन्होंने अपने अपने राज्य के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन प्रारम्भ किया और जब उनका दमन किया जाने लगा, तो हिटलर ने जर्मन नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के नाम पर उन पर चढ़ाई कर दी या भीषण प्रभाव डालकर उन्हे अपने वश मे कर लिया। उन्हीं दिनों इटली ने अबीसीनिया को हड़प लिया था और राष्ट्रसंघ देखता का देखता रह गया था। हिटलर ने इसे ही उपयुक्त अवसर समझा। उसने मार्च ३६ मे राइनलैण्ड पर अधिकार कर लिया। आस्ट्रिया पर हिटलर की बहुत दिनों से नजर थी, लेकिन इटली इसे पसन्द नहीं करता था। इस लिए हिटलर नाजीविद्रोह कराके और वहां के प्रधान मंत्री डा० डालफस की हत्या कराके भी चुप रहा, लेकिन जब १९३३ मे इटली से रूस के विरुद्ध संधि हो गई, तो उसने १२ मार्च १९३८ को आस्ट्रिया मे अपनी सेनाएँ भेज दीं। आस्ट्रिया ने लड़े बिना ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। फलतः आस्ट्रिया भी जर्मन राज्य का अंग बन गया। इससे जर्मनी मे हिटलर की धाक और ज्यादा बैठ गई। इस अपहरण से एक ही रात मे जर्मनी की आबादी ७॥ करोड़ तक जा पहुँची, लोहे की कई प्रसिद्ध खाने जर्मनी को मिल गई और २५ करोड रुपयों की कीमत का शुद्ध सोना जर्मनी के हाथ लगा।

इस सफलता से हिटलर का उत्साह और भी बढ़ गया। यद्यपि

उसने घोषणा की कि यूरोप में अब मेरी और कोई मांग नहीं है, तथापि ज़ैकोस्लावेकिया पर उसकी नज़र पहले से ही थी। वहाँ भी नाज़ी पार्टी सुडेटन प्रान्त को जर्मनी के साथ मिलाने के लिए विद्रोह कर रही थी। हिटलर ने जर्मन राष्ट्रीयता के नाम पर सुडेटन प्रान्त को जर्मनी में मिला देने की मांग की। साथ ही यह घोषणा भी की कि इसके बाद यूरोप में मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे बाकी ज़ैक राज्य से भी कोई मतलब नहीं। समस्या बहुत विकट थी। फ्रांस और रूस दोनों ने ज़ैकोस्लोवेकिया पर जर्मन आक्रमण होने की स्थिति मे ज़ैक सरकार को सहायता देने की घोषणा कर दी थी। लेकिन इसका भी कोई प्रभाव न हुआ। जर्मनी का आन्दोलन उग्र रूप ही धारण करता गया। आखिर कोई हल निकालने के लिए ब्रिटेन के प्रधान मंत्री चि० चैम्बरलेन म्यूनिक में गये। किसी तरह विश्वव्यापी युद्ध को टालने के लिए चैम्बरलेन इस बात पर सहमत हो गये कि सुडेटन प्रान्त जर्मनी को मिल जावे। लेकिन हिटलर ने भी यह घोषणा की कि आगे से कोई भी झगड़ा शस्त्रबल से हल न किया जावेगा। पारस्परिक समझौते से सब बातें तय की जावेगी। ज़ैक सरकार ने शान्ति स्थापना के नाम पर या अपनी दुर्बलता से डर कर सुडेटन प्रान्त जर्मनी के हवाले कर दिया। पर बस यहीं तक नहीं हुई। कुछ ही दिनों बाद हिटलर ने ज़ैक राष्ट्रपति को बर्लिन मे बुलाया। उसे एक संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने को विवश कर दिया गया और स्लोवाकिया के सिवा बाकी सब प्रदेश जर्मनी के राज्य मे शामिल हो गया। इस सफलता से जर्मनी राज्य की आबादी एक करोड़ और बढ़ गई और उसकी अरबों रुपये की अमूल्य युद्धसामग्री जर्मनी के

हाथ लग गई, इस से जहाँ जर्मनी में हिटलर का प्रभाव और भी बढ़ गया, वहाँ यूरोप में उसके विरुद्ध तीव्र क्षोभ भी फैल गया। हिटलर ने अब भी घोषणा की कि उसे यूरोप में और कुछ न चाहिए, लेकिन कुछ ही समय में यूरोप ने देखा कि उसकी महत्त्वाकांक्षाओं का अन्त नहीं हुआ है। उसने मेमल पर अधिकार कर लिया और फिर पोलैण्ड पर हमला करके उसे रूस की सहायता से जीत लिया। इसके बाद डैनमार्क, नार्वे, बेलजियम, हालैण्ड, फ्रांस, यूगोस्लेविया और ग्रीस की तथा अन्त में रूस की भी बारी आती है और हिटलर एक विश्वव्यापी युद्ध में भीषण सफलताएँ प्राप्त करके एक के बाद दूसरे देश को कुचलता चला जाता है। लेकिन यह सब इस महान युद्ध की चर्चा का विषय हैं और इस पर हम दूसरे किसी अध्याय में प्रकाश डालेंगे।

हिटलर अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी, साहसी, राजनीतिज्ञ, परन्तु क्रूर और नृशंस व्यक्ति है। प्रायः सदा मिलनेवाली चामत्कारिक सफलता ने उसके उत्साह को और भी बढ़ा दिया है। हिटलर ने संसार के इतिहास में जितनी उथल पुथल की है, उतनी शायद ही किसी व्यक्ति ने इतिहास में की होगी। उसने अपने आदर्श और महत्त्वा-कांक्षाएँ अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मीन काम्फ़' (मेरा संघर्ष) में लिखी हैं। इनको प्राप्त करना ही उसके जीवन का उद्देश्य रहा है। उसने उपायों के औचित्य अनौचित्य या अपने वचनों की संगति पर कभी ध्यान नहीं दिया, यद्यपि उसका व्यक्तिगत चरित्र सरल सादा है, मद्य मांस, सिगरेट से उसे परहेज है। वह पक्का अवसरवादी है और समय को चूकना वह जानता ही नहीं। उसका संगठन और व्यवहारज्ञान अद्भुत

और चमत्कारपूर्ण है । उसका भविष्य क्या होगा, यह कहना आज कठिन है ।

स्टालिन

रूस का डिक्टेटर स्टालिन तिफ़लिस के पास एक गाँव मे १८७९ मे एक मोची के घर पैदा हुआ था । तिफ़लिस के कालेज में पादरी बनने के उद्देश्य से उसने शिक्षा प्राप्त की और संभव था कि वह पादरी बनकर अपना समस्त जीवन बाइबिल की शिक्षा देने मे अर्पित करता, लेकिन एक छोटी सी घटना ने उसके जीवनप्रवाह को बदल दिया । एक दिन उसने बाज़ार से कुछ फल लिये । फल खाकर ज्यों ही वह कागज़ का लिफ़ाफा फैंकने लगा, उसकी नज़र कागज़ की कुछ पंक्तियों की ओर गई । उसमे अत्याचारी ज़ार के शासन के विरुद्ध विद्रोह करने की सलाह दी गई थी । स्टालिन ने अत्यन्त चकित होकर पूछा कि वह कौन दुष्ट व्यक्ति होगा, जिसने धर्ममूर्ति पिता ज़ार के विरुद्ध ऐसे शब्द लिखे ! पर इसके एकदम बाद उसके कालिज में पुलिस द्वारा दो विद्यार्थियों की गिरफ्तारी ने उसके हृदय पर इतना तीव्र प्रभाव डाला कि उसकी मनोवृत्ति ही बदल गई । वह बाइबिल की अपेक्षा क्रान्तिकारी साहित्य में अधिक दिलचस्पी लेने लगा । यह क्रान्तिकारी लेख लेनिन के हाथ का लिखा हुआ था ।

इसके बाद से वह क्रान्तिकारी हलचलों मे भाग लेने लगा और फलस्वरूप पुलिस की आँखों का कांटा बना । वह गिरफ्तार हुआ और १ साल की कैद मिली, वह साइबीरिया के जंगलों मे भेज दिया

गया। गिरफ्तारी और निर्वासन की यह कहानी बहुत लम्बी और साहसपूर्ण है। वह पांच दफा गिरफ्तार हुआ और पांचों वार निर्वासित किया गया। चार वार वह किसी तरह बच कर भाग निकला। पांचवी वार वह तब मुक्त हुआ, जब कि १६१७ में रूस की महान् क्रान्ति ने सब क्रान्तिकारियों को जेलों से मुक्त किया। ये वर्ष दृढ़ता, कष्टसहन, भयंकर दुःसाहस, भीषण गुप्तहत्या, षड़यंत्र, आतंक वाद, क्रान्तिकारी विचारों के प्रचार, डाका, और चोरी आदि की घटनाओं से भरे हुए हैं। इन्हीं सब गुणों के कारण उसका नाम स्टालिन (लोहे का आदमी) रख लिया गया। यह नाम उसके स्वभाव के बिलकुल अनुरूप है।

१६१७ के बाद स्टालिन के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारंभ होता है। उसने नये बोलशेविक शासन के विरुद्ध विद्रोह और आक्रमण को दबाने के लिए रूस की लाल सेना का बहुत दृढ़ संगठन किया। परन्तु अब तक भी लेनिन का दायाँ हाथ ट्राटस्की ही समझा जाता था। सब को विश्वास था कि वही लेनिन का उत्तराधिकारी होगा, लेकिन संसार ने आश्चर्य के साथ सुना कि लेनिन की मृत्यु के बाद स्टालिन उसका सर्वेसर्वा बन गया। ट्राटस्की देखता ही रह गया। ट्राटस्की बीमार था और लेनिन की मृत्यु के समय उपस्थित नहीं था। स्टालिन कूट चक्रों और संगठन मे अधिक चतुर था। उसने जिनावीफ और कैमनीफ़ के साथ त्रिगुट मिला कर ट्राटस्की को रंगमंच से बाहर निकाल दिया और जब उसे इस कार्य मे सफलता हो गई, तब जिनावीफ़ की विरोधी पार्टी से मिल कर जिना-

वीफ़ दल को भी खतम कर दिया। उसने अपनी पार्टी का दृढ़ संगठन किया, जिसने ज़रा भी मतभेद प्रकट किया या सिर ऊँचा किया, उसका बड़ी नृशंसतापूर्वक वध करा दिया गया। यह कार्य १९३७–३८ तक चलता रहा और इसमे रूस के बड़े बड़े अधिकारियों, सेनापतियों और प्रमुख नेताओं को, जिनका रूस के नवीन निर्माण में बड़ा भारी हाथ था, फाँसी के तख्ते पर लटका दिया गया, गोली से उड़ा दिया गया, या किसी अन्य रहस्यमय प्रकार से नष्ट कर दिया गया। कुछ दिनों बाद ही खबर मिली कि ट्राटस्की भी मैक्सिको मे अत्यन्त नृशंसतापूर्वक मार दिया गया। स्टालिन के जीवन में ये सब हत्याएँ एक बड़ा कलंक हैं और इसी कारण रूस के सैकड़ों हज़ारों भक्त अब रूस से घृणा करने लगे हैं।

स्टालिन को रूस सरकार के वैज्ञानिक संगठन मे हिटलर या मुसोलीनी की भाँति कोई विशेष ओहदा प्राप्त नहीं था, फिर भी वह वहां का सबसे उच्च अधिकारी या और किसी भी डिक्टेटर से कम अधिकार नहीं रखता था। कम्यूनिस्ट पार्टी का वहाँ की सरकार पर पूर्ण नियंत्रण है और पार्टी का प्रधान मंत्री होने की हैसियत से वह रूसी सरकार के हर एक विभाग मे दखल देता है और उसकी इच्छा बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। मई १९४१ में उसने रूस सरकार का प्रधान मंत्री बनकर इस बड़ी भारी वैधानिक असंगति को दूर कर दिया है।

स्टालिन का रूस के पुनर्निर्माण में बड़ा भारी हाथ है और यही उसके जीवन का बड़ा भारी कार्य है। रूसी राज्यक्रान्ति के बाद

पड़ने वाले भयंकर दुर्भिक्ष ने आर्थिक और भौतिक दृष्टि से रूस को स्वावलम्बी बनाने का महत्त्व सिद्ध कर दिया। लेनिन ने इस दृष्टि से तमाम रूस में बिजली के प्रसार और औद्योगीकरण की ओर ध्यान दिया, लेकिन इसे ठीक रूप से चलाने और आज की स्थिति तक लाने का मुख्य श्रेय स्टालिन को है।

स्टालिन ट्राटस्की की भाँति पूर्ण आदर्शवादी नहीं है, यथार्थ वादी है। यही मुख्य भेद दोनों नेताओं में था। स्टालिन ने संसार की परिस्थितियों के अनुसार रूस को भौतिक दृष्टि से उन्नत करना अपना आदर्श बनाया और ट्राटस्की विश्वक्रान्ति के उद्देश्य को सदा सामने रखता रहा। इसी लिए स्टालिन ने विभिन्न पूँजीवादी और साम्राज्यवादी देशों से भी समझौता किया और १९३९ में रूस के कट्टर विरोधी जर्मनी से संधि करके संसार भर को चकित कर दिया। इससे पहले तक वह जर्मनविरोधी राष्ट्रों के साथ संगठन कर रहा था। १० मार्च १९३९ में स्टालिन ने घोषणा की थी कि हम आक्रान्त राष्ट्रों की रक्षा के लिए सदा तैयार हैं और उनकी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सदा लड़ेंगे, लेकिन २३ अप्रैल १९३९ को जब कि रूस, ब्रिटेन और फ्रांस में संधि की चर्चा चल रही थी, स्टालिन ने जर्मनी से संधि करके पोलैण्ड का पूर्वीय आधा भाग रूस में शामिल कर लिया। यह साम्यवादी सिद्धान्त के विरुद्ध था, लेकिन सफलता और उन्नति के आगे स्टालिन ने आदर्शों की चिन्ता नहीं की। पोलैण्ड पर अधिकार करके ही स्टालिन बैठ नहीं गया। उसने एस्टोनिया, लैटविया, लिथुआनिया पर भी अधिकार कर लिया और ३० नवम्बर

को फ़िनलैण्ड पर आक्रमण करके कुछ मास में उसे भी परास्त कर दिया और उसके कुछ प्रदेश पर अधिकार कर लिया। अब भी वह यूरोपीय युद्ध से संपूर्ण संपर्क मे हैं। बलकान रियासतों की राजनीति को वह बड़े ग़ौर से देखता रहा। रूमानिया के बेसरेबिया प्रदेश पर रूस ने अधिकार कर लिया और अपने पुराने विरोधी जापान से भी उसने संधि कर ली। पर स्टालिन और हिटलर दोनों जानते थे कि उनके स्वार्थ परस्पर विरोधी हैं। दोनों का दिल मिल ही नहीं सकता था और अन्त मे मे एक दिन जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया। रूमानिया, फिनलैण्ड और हंगरी भी रूस पर आक्रमण मे जर्मनी का साथ दे रहे हैं। इससे स्टालिन की कठिनताएँ भीषण रूप से बढ़ गई हैं। अभी लड़ाई जारी है।

स्टालिन चाणाक्ष और भीषण राजनीतिज्ञ है। उसने कुछ ही सालों में रूस को एक महान शक्ति बना दिया है लेकिन; इसके लिए उसे कार्लमार्क्स के बहुत ऊँचे आदर्शों की बलि भी देनी पड़ी है। अन्य डिक्टेटरों की भाँति उसका अपना जीवन भी बहुत सादा है।

प्रेज़िडैण्ट रूज़वेल्ट

हिटलर या मुसोलीनी को जिस तरह विकट परिस्थितियों मे स्वयं राष्ट्र का निर्माण करना पड़ा, अपने सब राजनैतिक प्रतिस्पर्धियों को छल प्रपंच या सैनिक बल से कुचल कर आगे आना पड़ा, वैसा कार्य रूज़वेल्ट को नहीं करना पड़ा। वह बहुत साधारण रीति से साधारण

चुनाव पद्धति से ही संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का प्रेजिडेण्ट बना, लेकिन भीषण आर्थिक समस्याओं का उसने जैसे सुन्दरतापूर्ण हल किया, उसके कारण वह भी प्रसिद्ध हो गया है। १९३०-३१ के संसारव्यापी आर्थिक संकट का सबसे भीषण परिणाम अमेरिका में पड़ा। १७० लाख आदमी बेकार हो गये थे, बीसियों बैंक बन्द हो गये थे, ५० करोड़ पौण्ड सिर्फ सट्टे में स्वाहा हो गये थे, कई रियासतों में फसलें सूख कर बरबाद हो गई थीं और लाखों भूखे शहरों में धरना देने लगे थे, अमेरिकन माल का निर्यात लगातार कम हो रहा था, और कर्जदार राष्ट्रों ने कर्जा चुकाने से इन्कार कर दिया था। ऐसे विकट समय में रूजवेल्ट मार्च १९३३ में राष्ट्रपति की कुर्सी पर बैठा।

फ्रैंकलिन रूजवेल्ट का जन्म ३० जनवरी १८८२ को न्यूयार्क में हुआ था। शिक्षाध्ययन के बाद वह १९१० में डैमोक्रेटिक पार्टी में शामिल हो गया। प्रेजिडेण्ट विल्सन के समय १९१२ में वह अमेरिकन सेना का सहायक मंत्री बना। सेना के निरीक्षण के लिए उसे १९१८ में यूरोप भेजा गया। १९२० में वह वाइस प्रेज़िडैण्ट के पद के चुनाव के लिए खड़ा हुआ, लेकिन हार गया। इसके बाद वह सब काम छोड़ कर फिर वकालत करने लगा। १९२१ में पक्षाघात के आक्रमण के कारण वह रोगशय्या पर पड़ गया और जब उठा भी, तो उसकी टांग खराब हो चुकी थी। लेकिन इससे भी उसकी उत्साहशीलता और राजनैतिक सक्रियता पर कोई प्रभाव न पड़ा। १९२८ और १९३० में दो बार वह न्यूयार्क का गवर्नर चुना गया। १९३३ में अमेरिका ने उसे राष्ट्रपति का सम्मानपूर्ण व उत्तरदायी पद सौंपा।

उसने पद सँभालते ही पहला काम यह किया कि बैंकों में सात दिन की छुट्टी कर दी, पैंशनों में ५० करोड़ डालरों की कटौती और हलकी शराब पर से प्रतिबंध उठाने के कानून बनवाने के निश्चय की घोषणा की। १३ मार्च को बैंक खुलने का दिन था, लाखों अमेरिकन बैंकों मे से रुपया निकालने को तैयार बैठे थे, बैंकों पर किसी को विश्वास न था। १२ मार्च की रात को रूज़वेल्ट ने रेडियो द्वारा अपील की—"कल सोमवार है, बैंक खुल जावेंगे। मै अमेरिकन जनता से उनके राष्ट्र के नाम पर अपील करता हूँ कि कोई व्यक्ति बैंक से रुपया न निकाले और रुपया जमा करने की कोशिश करें।" दूसरे दिन हजारों अमेरिकन बैंकों के दरवाज़ों पर खड़े थे, लेकिन रुपया निकालने नहीं, रुपया जमा कराने। रूज़वेल्ट की पहली जीत शानदार थी। लोगों को अपने इस नये नेता पर विश्वास हो गया।

इसके बाद उसने अपनी आर्थिक योजनाओं पर अमल किया, जिसकी चर्चा हम पाँचवें अध्याय में कर आये है। बेकारी दूर करने के लिए, उसने कृषकों की स्थिति ठीक करने की ओर ध्यान दिया। कृषि की उत्पत्ति पर पाबन्दी लगा दी गई; २ अरब डालर कृषकों को कम सूद पर कर्ज़ दिया गया, भोजन, मकान और ३॥ डालर प्रतिदिन पर ६२,५०,००० लोगों को जंगल पैदा करने के काम पर लगा दिया। मज़दूरों के न्यूनतम वेतन और कार्य के अधिकतम घण्टे नियत किये, विभिन्न कारखानेदारों में प्रतिस्पर्धा कम करके अत्युत्पत्ति को भी सीमित कर दिया गया, टैनेसी की विस्तृत घाटी को चार पांच

वर्षों में समृद्ध और व्यावसायिक केन्द्र बना दिया। पूंजीपतियों के विरोध का उसे सामना करना पड़ा, लेकिन बड़ी चतुरता और धैर्य से मुकाबिला किया। १९३६ और ४० में वह क्रमशः दूसरी और तीसरी बार प्रेजिडेण्ट चुना गया, यह इसका प्रमाण है कि रूजवेल्ट अमेरिका मे बहुत लोकप्रिय हो गया।

यूरोप का महायुद्ध शुरू होने पर गत युद्ध की भाँति अमेरिका के सामने समस्या पैदा हुई कि क्या करे। मित्र राष्ट्रों ने अरबों रुपयों के आर्डर दिये। तटस्थता कानून के अनुसार अमेरिका इन आर्डरों को नहीं ले सकता था, लेकिन इतना बडा प्रलोभन रोकना भी कठिन था। पूंजीपति कनाडा मे रुपया लगाने का इरादा करने लगे। आखिर लाचार होकर तटस्थता कानून स्थगित करना पडा। पर अब तो (उधार-पट्टा) कानून बना कर ब्रिटेन को अमेरिका खुल्लमखुल्ला सहायता देने लगा है। ब्रिटेन से वेस्ट इण्डीज, बरमुडा और न्यूफाउण्डलैण्ड समुद्री अड्डे पट्टे पर लेकर ५० विध्वसंक जहाज रूजवेल्ट ने उसे दे दिये। आज अमेरिका के सैकड़ो कारखाने ब्रिटेन के लिए शस्त्रास्त्र और युद्धसामग्री तैयार करने मे लगे हुए हैं। प्रेजिडैण्ट रूजवेल्ट ने स्पष्ट घोषणा की है कि वह प्रजातंत्र की रक्षा के लिए सन्नद्ध है और डिक्टेटरशाही को संसार पर हावी नहीं होने देगा।

डि वेलेरा

डी वेलेरा का जन्म अक्टूबर १८८२ में न्यूयार्क में हुआ था। तीन साल की ही उम्र में उसे आयलैंण्ड अपने संबंधियों के पास भेज दिया गया, जहाँ उसका पालन पोषण हुआ। १६०४ में शिक्षा समाप्त कर के वह एक स्कूल मे शिक्षक हो गया। इसी समय से आयलैंण्ड के राजनैतिक आन्दोलन मे उसने भाग लेना शुरू किया।

डी वेलेरा ने उन्हीं दिनों एक नया आन्दोलन चलाया। दीर्घ-कालीन ब्रिटिश शासन के कारण वहाँ आयलैंण्ड की अपनी भाषा का लोप हो चुका था। सब काम अंग्रेज़ी में ही होता था, लोगों को अपनी भाषा तक न आती थी। डी वेलेरा ने भी एक वृद्ध मोची से आयरिश भाषा सीखी और उसका प्रचार शुरू किया। उस ने घोषणा की कि यदि आयलैंण्ड की राजनैतिक स्वतंत्रता और अपनी भाषा की रक्षा, इन दो में से चुनाव करना पड़े तो मैं अपनी भाषा को लेना पसन्द करूँगा, क्योंकि अपनी भाषा के बल पर तो मै स्वतंत्रता भी प्राप्त कर सकता हूँ। उसके प्रयत्न से सारे देश में अपनी भाषा नये सिरे से सीखी जाने लगी।

१६१६ ई० में आयलैंण्ड में जो विद्रोह हुआ, डी वेलेरा भी उसके नेताओं में से था। यह विद्रोह शीघ्र ही दबा दिया गया और और वह गिरफ्तार कर लिया गया। अन्य सब नेताओं को तो गोली से उड़ा दिया गया, परन्तु डी वेलेरा का जन्म अमेरिका में होने के कारण उसे सिर्फ लम्बी कैद की सज़ा दी गई। युद्ध के उन दिनों में अमेरिका को असंतुष्ट होने का ब्रिटेन कोई भी मौका न देना चाहता

था। १९१७ में वह छोड़ दिया गया, लेकिन एक साल बाद फिर अपनी राष्ट्रीय हलचलों के कारण गिरफ्तार हो गया। इस समय वह सिपाहियों के पहरे से किसी तरह निकल गया। उसकी बहुत तलाश की गई, लेकिन वह हाथ न आया और भेष बदल कर अमेरिका जा पहुँचा। वहाँ उसने आयर्लैण्ड की स्वतंत्रता का प्रचार किया और आयरिश आन्दोलन को वहीं से संगठित किया। १९२० में वह फिर वापस आया। उसने एक दल का संगठन किया और एक राष्ट्रीय असेम्बली बना ली, जिसका प्रेजिडेण्ट वही चुना गया। उसने बादशाह के प्रति राजभक्ति की शपथ लेने से इन्कार कर दिया। इस पर आयर्लैण्ड में गृह-युद्ध छिड़ गया। नरमदली और ब्रिटिश सेना एक ओर थे और डी वेलेरा की पार्टी दूसरी ओर। डी वेलेरा विभिन्न स्थानों में छिप कर ही काम करता रहा। आखिर सन्धि हुई, आयर्लैण्ड को औपनिवेशिक स्वराज्य का दरजा मिला, पर डी वेलेरा को इससे संतोष नहीं हुआ। डी वेलेरा गिरफ्तार हो चुका था और १९२४ में वह रिहा हुआ। देश गृहयुद्ध और रक्तपात से थक चुका था, इसलिए अब डी वेलेरा ने शस्त्र छोड़ कर वैधानिक युद्ध शुरू किया। अपने विरोधी कासग्रेव दल से उसका वैधानिक संघर्ष १९३२ तक जारी रहा। १९३३ में डी वेलेरा का दल बहुमत में आया और वही प्रधान-मन्त्री चुन लिया गया। इसके बाद उसने आयर्लैण्ड को पूर्ण स्वतंत्र करने का अपना स्वप्न पूरा करने का निश्चय किया, पर इसके लिए कोई युद्ध नहीं किया गया। पहला काम उसने यह किया कि आयरिश पार्लैमेण्ट में राजभक्ति की शपथ उड़ा दी,

ब्रिटिश सम्राट् की ओर से नियुक्त होने वाले गवर्नर जनरल के अधिकार शनैः शनैः कम कर दिये, और १९२२ की संधि के अनुसार ब्रिटेन को दी जाने वाली वार्षिक रकम (५० लाख पौण्ड) देना बन्द कर दिया। इस पर ब्रिटेन व आयर्लैण्ड मे एक आर्थिक युद्ध छिड़ गया, जो १९३८ की सन्धि के साथ समाप्त हुआ। इस सन्धि के अनुसार आयर्लैण्ड ने आधी रकम देनी मंजूर की और ब्रिटेन ने बकाया रकम माफ करके आयर्लैण्ड के वे समुद्री अड्डे वापस कर दिये, जो १९२२ की सन्धि के अनुसार ब्रिटेन के पास थे।

१९३७ मे डी वेलेरा ने आयर्लैण्ड का एक नया विधान बनाया। इसके अनुसार देश का अङ्गरेज़ी नाम आयर्लैण्ड बदल कर आयरिश भाषा का आयर (EIRE) कर दिया गया; आयर भाषा को भी सरकारी भाषा बना दिया गया, आयर्लैण्ड को एक पूर्ण स्वतंत्र राष्ट्र माना गया, एक नया राष्ट्रीय झण्डा बनाया गया, जिसमें यूनियन जैक का कोई भी चिन्ह नही रखा गया, विधान मे ब्रिटिश सम्राट् का कोई उल्लेख ही नहीं किया; गवर्नर जनरल का पद भी उड़ा दिया गया। अब वहाँ अमेरिका, फ्रांस आदि की तरह प्रैज़िडैण्ट चुना जाता है। आयर्लैण्ड के इस नये विधान को ब्रिटिश सरकार ने न स्वीकार ही किया है और न अस्वीकार ही। इसलिए अब तक यह विवादास्पद है कि आयर्लैण्ड ब्रिटेन का उपनिवेश है या नहीं। वर्तमान युद्ध में डी वेलेरा ने आयरिश तटस्थता की घोषणा की है।

डी वेलेरा अत्यन्त परिश्रमी है, रविवार को भी छुट्टी नहीं मनाता। उसका रहन सहन सादा है, घर बार बड़ा होने पर भी एक

नौकर रखा है, वह भी कुछ सालों से। वह कहता है कि जितना काम मैं घर के बाहर करता हूँ, उतना ही काम मेरी पत्नी को भी घर में करना चाहिए। शतरंज, रेडियो और गणित में वह खास दिलचस्पी लेता है। अपनी भाषा से उसे बहुत प्रेम है।

महात्मा गांधी

अपने समकालीन युगनिर्माताओं से बिलकुल विभिन्न प्रकृति, विभिन्न आदर्श और विभिन्न संदेश लेकर भी महात्मा गांधी आज के संसार में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। दूसरे महापुरुष संसार के इतिहास, संसार की पुरानी प्रथाओं और संस्कारों से अपने को अलग नहीं कर सके, वे उसी प्रवाह में बह गये और भौतिक बल द्वारा ही उन्होंने अपने राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक आदर्शों को पूर्ण करने का प्रयत्न किया। लेकिन गांधीजी ने अहिंसा और सत्य के प्रचार द्वारा ही संसार की सब समस्याओं को हल करने का नया संदेश दिया है।

महात्मा गांधी का पूरा नाम मोहनदास करमचन्द है। काठियावाड़ के पोरबन्दर राज्य में २ अक्टूबर १८६९ को आप का जन्म हुआ था। धर्मशील माता का आप के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसी की वजह से आप का जीवन बार बार सांसारिक विषयों में जाते जाते बचा और आप अपने जीवन को भारतीय आदर्श के अनुसार उन्नत बनाये रख सके। १८९२ में बैरिस्टर बन कर आप
... —रत लौटे।

आपने सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश दक्षिण अफ्रीका में किया, जहाँ आप एक मुकदमे के सिलसिले में वकील बन कर गये थे। वहां रहने वाले भारतीयों की दुर्दशा और उनके साथ होने वाले भेदभाव ने आप को बहुत प्रभावित किया। आप ने वहाँ अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन का संगठन किया। यह आन्दोलन संसार के राजनैतिक इतिहास मे बिलकुल नया था। विरोधी पर अंगुली तक न उठा कर अपने आप जेल जाना, मार खाना और सब प्रकार के कष्ट सहना नयी चीज़ थी। तीन साल तक यह सत्याग्रह चला और अन्त में स्मटस को आप से समझौता करना पड़ा। इससे भेदभाव के काले कानून वापस ले लिये गये और आप 'कर्मवीर गांधी' के नाम से प्रसिद्ध होकर भारत लौटे।

भारत मे आकर गांधीजी ने साबरमती मे सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया और भारतीय राजनीति का अध्ययन करने लगे। १९१७-१८ के यूरोपीय युद्ध में आप ने ब्रिटिश सरकार की बहुत सहायता की, लेकिन युद्ध समाप्त होने पर रौलट बिल और पंजाब के गोलीकाण्ड ने आप के हृदय को बहुत प्रभावित किया। आप ने १९२० मे इसलिए असहयोग आन्दोलन का संचालन किया। इसके मुख्य कार्यक्रम ये थे—खद्दर और चरखा, अदालतों का बहिष्कार स्कूलों का बहिष्कार, सरकारी नौकरियों, पुलिस, सेना का बहिष्कार और मद्यनिषेध। यह आन्दोलन चलता रहा, परन्तु चौरीचौरा में जनता द्वारा पुलिस थाने पर आक्रमण के विरोधस्वरूप आप ने आन्दोलन स्थगित कर दिया। उसी साल आप गिरफ्तार कर

लिये गये और आप को छ साल की सज़ा मिली। १९२४ में आप बीमारी की वजह से रिहा किये गये और इण्डियन नेशनल कांग्रेस के प्रैजिडैण्ट बने। १९२८ से १९२६ तक आप अपने संगठन और प्रचारकार्य में लगे रहे। १९३० में आपने नमक-सत्याग्रह द्वारा जिस देशव्यापी अहिंसात्मक संघर्ष का प्रारंभ किया. उसका अन्त वायसराय लार्ड अरविन के साथ के समझौते में हुआ। इस समय इंगलैण्ड में भारत के वैधानिक प्रश्न का निर्णय करने के लिए गोलमेज कांफ्रेंस हो रही थी। कांग्रेस ने आप ही को अपना एकमात्र प्रतिनिधि चुना। आप लण्डन गये, वहाँ कांफ्रेंस में भाग लिया, लेकिन वहाँ कोई निर्णय न हो पाया और आप भारत लौट आये।

यहां आते ही आपको फिर १९३२ में सत्याग्रह का आन्दोलन चलाना पड़ा। आप भी गिरफ्तार कर लिये गये। आप जेल ही में थे कि इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री मि० रैम्से मैक्डानाल्ड ने साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा की। इसका अर्थ था भारत के विभिन्न सम्प्रदायों का पृथक् पृथक् प्रतिनिधित्व और पृथक् पृथक् चुनाव। सवर्ण हिन्दुओं को हरिजनों से पृथक् कर दिया गया था। इसके विरोध में गांधीजी ने आमरण अनशन की घोषणा की। इससे सारे देश में हलचल मच गई. देश के समस्त नेता यरवदा जेल पहुँचे। कई दिन तक कांफ्रेंसो और विचार विनिमय के बाद हरिजन नेताओं और सवर्ण हिन्दुओं में समझौता हुआ। इसे सरकार ने स्वीकार कर लिया। तब से गांधी जी ने तीन चार वर्ष तक जेल के अन्दर और बाहर रह कर

हरिजन-सेवा और अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन की सारे देश में धूम मचा दी।

यद्यपि १९३४ से आप कांग्रेस के साधारण सदस्य भी नहीं हैं, लेकिन कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन के सर्वेसर्वा और सूत्रधार आप ही हैं। कांग्रेस के सामने जब कोई कठिन समस्या आ उपस्थित होती है, तब तब आपही की ओर समस्त देश की दृष्टि जाती है। चरखा-खद्दर, ग्रामोद्योग, हिन्दी-प्रचार और नवीन शिक्षा-योजना आदि विविध प्रवृत्तियों में आप को दिलचस्पी है। आप वस्तुतः भारतीय जनता के हृदय-सम्राट् हैं। आपके हरिजन वा यंग इण्डिया और नवजीवन के लेख अमूल्य साहित्य की वस्तु हैं। संसार भर में इतना बड़ा महान् पुरुष और इतनी अधिक सादगी मिलनी दुर्लभ है। दीनों और दुखियों के प्रतिनिधि आप के हृदय में दया का स्रोत उमड़ता है, सत्य, अहिंसा आपके उद्देश्य हैं और सत्याग्रह व आत्मशुद्धि आपके प्रभावशाली हथियार। ईश्वर पर आप को अगाध श्रद्धा है।

इतने महान् सन्त होते हुए भी आप राजनैतिक स्वाधीनता आन्दोलन चला चुके हैं और आज भी आपके नेतृत्व में व्यक्तिगत सत्याग्रह समस्त देश में चल रहा है। वस्तुतः १९२२ के बाद भारत का इतिहास और आपका जीवन पर्यायवाची शब्द बन गये हैं।

विभिन्न राष्ट्रों के नेता

उपर्युक्त महापुरुषों के सिवाय अन्य अनेक राष्ट्रों के कर्णाधार भी संसार की राजनीति पर बहुत प्रभाव डालते हैं। उनका संक्षिप्त परिचय भी उपयोगी होगा।

मि० चर्चिल—मि० चर्चिल ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री हैं। पहले पहल आप सेना मे भरती हुए। अफ्रीकन युद्ध मे बोअरों ने आपको गिरफ्तार कर लिया था, लेकिन किसी तरह बच कर निकल आये। १६०० मे आपने राजनैतिक क्षेत्र मे प्रवेश किया और पार्लमेंट के सदस्य चुने गये। यहीं से आपकी योग्यता का सिक्का सब पर बैठ गया और आपने १६२१ तक ब्रिटेन के प्रायः सब उत्तरदायी महत्व-पूर्ण पदों पर कार्य किया। गत महायुद्ध मे आपने इंगलैण्ड रह कर या फ्रांस के रणक्षेत्र मे जाकर बहुत सफलता से कार्य निबाहा। तीन साल तक राजनीति से विश्राम लेने के बाद १६२० मे आप अनुदार दल मे शामिल हो गये और पार्लमेंट के चुनाव मे सफल हुए। आपने अर्थमंत्री का काम भी किया। प्रधान मंत्री का सिर्फ एक पद बाकी रहा था, जो आपने नही लिया था। लेकिन जब वर्तमान महायुद्ध मे ब्रिटेन के सामने अनेक भीषण समस्याएँ उपस्थित हो गई, तब उसने आपकी योग्यता और कार्यशक्ति पर विश्वास करके वह पद आपको सौंप दिया। आपकी नीति सदा उग्र रही है। जर्मनी को खुश करने की नीति के आप सदा कट्टर विरोधी रहे हैं। आपने बहुत पहले से इस युद्ध की संभावन प्रकट करते हुए ब्रिटेन को युद्ध की पूरी तैयारी करने की चेतावनी

दी थी। आप एक प्रभावशाली वक्ता और सफल व लोकप्रिय लेखक है। आपने राजनीति आदि पर कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं।

जनरल फ्रैंको—स्पेन के विधाता जनरल फ्रैको का भी स्पेन की भौगोलिक स्थिति के कारण विशेष महत्त्व हो गया। आपका प्रारंभिक जीवन सेना मे व्यतीत हुआ। १९३५ मे आप मोरक्को मे प्रधान सेनापति थे। १९३५ मे जब स्पेन मे पापुलर फ्रण्ट की अर्ध साम्यवादी सरकार चुनाव मे बहुमत से आ गई, तो आपने उसके विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। प्रजातन्त्र के इतिहास मे यह शायद पहला ही उदाहरण है कि चुनाव मे हार जाने पर एक पार्टी ने सैनिक विद्रोह कर दिया हो। फ्रैको ने १ अक्टूबर को घोषणा की कि—मै स्पेन का प्रमुख शासक और प्रधान सेनापति हूँ। इसके बाद स्पेन मे गृहयुद्ध शुरू हो गया। फ्रैंको ने इटली व जर्मनी की सहायता से सरकार को हरा दिया और स्पेन का शासनसूत्र अपने हाथ मे ले लिया। वह जर्मनी और इटली का मित्र है, लेकिन वर्तमान महायुद्ध मे जर्मनी के बहुत प्रभाव डालने के बावजूद अभी तक तटस्थ है। स्पेन के दक्षिण मे जिबराल्टर जल-प्रणाली का भौगोलिक और सामरिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। फ्रैंको का साला सिनोर सुनेर स्पेन का विदेशसचिव है, जो स्पेन की राजनीति मे फ्रैंको का परम सहायक है।

इस्मत इनोनू—टर्की का राष्ट्रपति इस्मत इनोनू भी अत्यन्त प्रभावशाली है। तुर्क स्वातंत्र्य युद्ध मे कमाल पाशा का वह दाहिना हाथ था। ग्रीको को हराने मे इस्मत का पूरा हाथ था। जब तुर्को

में अपने अरब नाम बदल कर पुराने तुर्क नाम रखने की प्रथा चली, तो इस्मत पाशा ने इनोनू स्थान पर ग्रीसों को परास्त करने की यादगार में अपना नाम इनोनू रख लिया। कमाल पाशा की मृत्यु पर वह सर्वसम्मति से तुर्की का राष्ट्रपति चुना गया, इसकी नीति योरोपियन राजनीति से तटस्थता और मित्रता की नीति है। आजकल जर्मनी और ब्रिटेन दोनो ही टर्की की मित्रता पाने का यत्न कर रहे हैं।

चांग काई शेक—आज समस्त चीन अपने राष्ट्रपति चांगकाई शेक के नेतृत्व में पिछले चार सालों से जापान के साथ युद्ध कर रहा है। चागकाई शेक संसारक्षेत्र मे प्रवेश करते ही नवीन चीन के जन्मदाता डाक्टर सनयात सेन के स्वाधीनतासंग्राम में शामिल हो गये। डा० सनयात सेन जब तक जीवित रहे, आप सदा उनका साथ देते रहे। उनकी मृत्यु पर वे चीन के राष्ट्रीय दल कुओमिन तांग के नेता हुए। १९२७ मे चीन के कम्यूनिस्टो मे तीव्र मतभेद हो गया और बरसों तक यह गृहयुद्ध जारी रहा। १९३६ मे वे कम्यूनिस्टों द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये, लेकिन एक समझौते के बाद दोनों दल मिल गये और जापान के चीन पर आक्रमण के विरुद्ध चांगकाई शेक के नेतृत्व मे आज तक लड रहे है। उनकी पत्नी भी उन्हे राजनैतिक व सामरिक कार्यों मे पूरा सहयोग देती हैं। चीनी स्त्रियों की उन्नति मे उनका भारी हाथ है।

इब्न सऊद—आज के मुस्लिम जगत मे इब्नसऊद अत्यन्त शक्तिशाली गिना जाता है। वह अरब के एक छोटे से प्रान्त के राजवंश

मे उत्पन्न हुआ था, लेकिन बचपन में ही राजगद्दी के झगड़े मे उसे निकाल दिया गया था। २० साल की उम्र में उसने छोटी सी सेना लेकर फिर अपनी राजगद्दी पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने समस्त अरब को संयुक्त करने का प्रयत्न प्रारंभ किया, जो आजतक जारी है। पूर्वी अरब से तुर्कों को निकाला और हेजाज के शासक को ब्रिटिश सहायता मिलने के बावजूद हराने के कारण इब्न सऊद बहुत प्रसिद्ध हो गया। अब वह नज़्द हेजाज के संयुक्त प्रदेश सौदी अरब का शासक है। अभी समस्त अरब को एक झण्डे तले लाने का उसका स्वप्न पूर्ण नहीं हुआ, फिर भी उसकी शक्ति कम नहीं है। मुस्लिम राष्ट्रों मे उसका बड़ा प्रभाव है और पश्चिमी एशिया की राजनीति पर वह बहुत प्रभाव डाल सकता है।

लेनिन—यद्यपि आज लेनिन जीवित नहीं है, तथापि वर्तमान संसार के इतिहास मे उसका बड़ा भारी हाथ है। यदि २० वी सदी में संसार मे सब से अधिक सफल क्रान्तिकारी कोई हुआ है, जिसने समस्त संसार का ध्यान हठात् अपनी ओर खींच लिया है और प्रत्यत्त या अप्रत्यत्त रूप से संसार के प्रत्येक भाग पर अपना थोड़ा या बहुत प्रभाव डाला है, तो वह नवीन रूस का निर्माता लेनिन ही है। लेनिन के हृदय मे बचपन से ही कार्लमार्क्स के साम्यवादी विचारों ने घर कर लिया था। वह रूस के जार के विरुद्ध पार्टी में शामिल हो गया। १० साल तक वह रूस से बाहर रहा और वहीं से रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन का संगठन और संचालन करता रहा। १६१७ के विद्रोह मे लेनिन रूस पहुँच गया और वहां नेतृत्व करने लगा।

अनेक सफलताओं और असफलताओं के बाद उसने १९१६ अक्टूबर में नरम दल को भी नष्ट कर दिया और रूस में बोलशेविक शासन स्थापित किया। कार्लमार्क्स ने मजदूरों के राज का जो स्वप्न लिया था, उसे लेनिन ने क्रिया में परिणत कर दिखाया। इस पर रूस में गृहयुद्ध छिड़ गया। विदेशों की ओर से भी विरोधियों को सहायता मिली, लेकिन लेनिन ने विद्रोहियों को कुचल दिया। इसके बाद उसका समस्त ध्यान रूस के पुनर्निर्माण की ओर लगा। रूसकी आर्थिक, व्यावसायिक और शिक्षासम्बन्धी उन्नति की ओर उसने पूरा ध्यान दिया। पर सब से बड़ा काम जो उसने किया, वह रूसी जनता के हृदय को, पुराने विचारों और आदर्शों तथा रीति रिवाजों को बिलकुल बदल डालना था। रूस का कायाकल्प हो गया। मजदूर और किसान राज करने लगे, उनका दृष्टिकोण ही बिलकुल बदल गया। स्टालिन के शब्दों में लेनिन ने निम्नलिखित कार्य किये:—

(१) पूंजीपतियों की शक्ति को नष्ट करके उसने मजदूरों और किसानों के हाथ में वास्तविक शक्ति सौंप दी।

(२) उत्पादन के सब साधन और औजार, भूमि, कारखाने आदि सब पूंजीपतियों से छीन करके मजदूरों और किसानों या इनकी सरकार के हाथ में सौंप दिये।

(३) उत्पादन का आधार परस्पर प्रतिस्पर्धा से हटा कर देशवासियों की सम्मृद्धि और भौतिक आवश्यकताओं की ओर कर दिया।

(४) साधारण जनता को बेकारी और दरिद्रता से गारंटी दी।

(५) अब मजदूर और किसान देश के मालिक हैं। वे पूंजीपतियों के लिए नहीं, अपने लिए मेहनत करते हैं।

रूस की इस महान् क्रान्ति का प्रभाव समस्त संसार पर पड़ा। सब देशों के किसान मजदूरों के हृदयों में आशा का संचार होने लगा कि उनके दिन भी फिर सकते हैं। उनका आन्दोलन बहुत बढ़ गया। उधर पूंजीपतियों ने भी देखा कि उनका प्रभाव नष्ट भी हो सकता है। मजदूरों और किसानों के बारे में उनकी नीति कुछ नरम हो गई। उनके लिए सरकारें भी नये नये कानून बनाने लगीं।

रूसके पुनर्निर्माता और समस्त संसार के किसानों मजदूरों के आराध्य देव लेनिन की मृत्यु १९२४ मे हुई।

——:o:——

आठवाँ अध्याय

जागृत जनता

जब कभी कोई क्रान्ति होती है, वह चौमुखी होती है। मस्तिष्क के विकास और विचारस्वातंत्र्य की भावना के परिणामस्वरूप किसी भी देश मे जागृति होती है और वह किसी एक दिशा मे नहीं होती। यूरोप मे जब विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ, तब पहले तो उस समय के सत्ताशाली अधिकारियो ने उसका विरोध किया। यहाँ तक कि अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों को फाँसी के तख्ते पर लटका दिया गया। उनका अपराध सिर्फ यह था कि उन्होंने उस समय के प्रचलित विश्वासों के विरुद्ध विज्ञान के बल पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। ब्रूनो को १६०० ई० मे इसीलिए जिन्दा जला दिया गया। गैलिलियो को भी सजा भुगतनी पड़ी। बाइबिल के अंग्रेजी अनुवादक के विरुद्ध पोप को इतना क्रोध था कि उसकी मृत्यु के १० साल बाद उसकी कबर खुदवा कर उसकी लाश को सजा दी गई। १६ वीं सदी मे एक मशीन को नष्ट कर दिया और उसके आविष्कारक को पानी में डुबोकर मार डाला गया, क्योंकि उस समय के लोग मशीन के विज्ञान को अभी अपना नही पाये थे।

रेलगाड़ी के आविष्कारक कुगनो को फ्रांस में कैद कर दिया गया था। लेकिन समय पलटा। लोगों में स्वतंत्र विचार का भाव उत्पन्न हुआ। वे पुराने ख्यालों के विरुद्ध सोचने लगे, विज्ञान की उन्नति ने उन्हें प्रत्येक प्रश्न पर तर्क करना सिखाया। इसका फल यह हुआ कि संसार में क्रान्ति का समय पास आ गया और कुछ ही समय मे हम देखते हैं कि अठारहवीं सदी के आखिरी हिस्से में तीन महान क्रान्तियाँ हुईं। राजनैतिक क्रान्ति अमेरिका में हुई। इसने प्रजातन्त्र का भाव संसार के सामने रखा। औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड में प्रारंभ हुई। वह फैलते फैलते सारी दुनियाँ में फैल गई। यह एक शान्तिमय, लेकिन बहुत गहरी क्रान्ति थी और समस्त संसार पर उसने जितना प्रभाव डाला, उतना इतिहास में और किसी घटना ने नहीं। तीसरी क्रान्ति सामाजिक क्रान्ति के रूप में फ्रांस में हुई। इसने प्रजातंत्र की भावना के साथ साथ समानता का भाव भी पैदा किया। यों तो ये क्रान्तियां अपने अपने देश मे हुईं, लेकिन इनका प्रभाव समस्त संसार पर पड़ा। सब देशों सब वर्गों और सब क्षेत्रों मे जागृति हुई। लोगों के धार्मिक विश्वास बदल गये, रीति-रिवाज बदल गये, महत्वाकाँक्षाएँ और आदर्श बदल गये, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सब संगठन बदल गये। मजदूर, किसान, साधारण प्रजा और स्त्रियों मे अपनी अपनी स्थिति से असंतोष उत्पन्न हुआ और आगे बढ़ने की कोशिश होने लगी। विज्ञान और साहित्य छलांगें मार कर बहुत आगे बढ़ गये।

हम इस अध्याय में इस जागृति के कुछ विविध पहलुओं पर अलग अलग प्रकाश डालने का यत्न करेंगे।

नारी-जागृति

सृष्टि के आरंभ से ही शरीर-बल मे पुरुष के स्त्री से बलवान रहने तथा बाहरी दुनिया से टक्कर लेने का काम उसीपर होने से स्त्री को स्वभावतः उसके मातहत-सा रहना पड़ा। सन्तान के उत्पादन तथा पालन-पोषण के लिहाज से स्त्री के लिए यह स्वाभाविक भी था कि किसी के भरोसे रह कर बाहरी कशमकश से वह मुक्त रहे; इसलिए उसने भी इसका स्वागत ही किया, और पुरुष के लिए उपार्जन का काम छोड़कर संग्रह का काम उसने सम्हाला। इस प्रकार पुरुष जहां संसार की दिग्विजय करनेवाला राजा बना, वहां स्त्री कोमलता और मनोरमता से पुरुष पर विजय करने के लिए घर की रानी बन गई। लेकिन आपस के सहयोग से अथवा आवश्यकतावश जो नींव पडी थी, बाद मे उसने रूढ़ि का रूप धारण किया और उसकी असलियत को भूलकर पुरुष अपने को स्त्री का स्वामी एवं स्त्री अपने को पुरुष की दासी समझने लग गयी। आदर्श मे अर्द्धांग, सहचरी और सुन्दरार्द्ध की भावना रहते हुए भी व्यवहार मे पूर्व-पश्चिम सर्वत्र यही स्थिति होगई। इसे विधाता का विधान मान लिया गया। धार्मिक नियमों एवं कानूनों मे संसार के प्रायः सभी भागों मे स्त्री का दर्जा बहुत घट गया और घर की रानी होते हुए भी पुरुष के मुकाबले उसकी स्थिति हीन मानी जाने लगी। यूरोप में तो धर्माचार्यों ने स्त्री मे आत्मा न होने और उन्हें शैतान के घर का दरवाजा तक होने का फ़तवा दे डाला और भारत मे 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी' का विचार पैदा हुआ।

समाज में नारी की स्थिति—भारत के प्राचीन काल को वैदिक काल (ईसा से १५०० वर्ष पूर्व) और पौराणिक काल (ईसा के १५०० से ५०० वर्ष पूर्व तक) और सूत्र-काल (ईसा के ५०० वर्ष पूर्व से) तीन कालों में बाँटा जा सकता है। इन तीनों ही कालों में स्त्रियों की स्थिति बहुत उन्नत रही है। वैदिक काल में स्त्री प्रत्येक बात मे पुरुष के बराबर समझी जाती थी और कतिपय दशाओं में उस समय की स्त्रियाँ वर्त्तमान यूरोपीय स्त्रियों से भी अधिक स्वतंत्र थीं। पौराणिक काल में भारत की स्त्रियों को सर्वोत्तम स्थान प्राप्त था। उस समय नृत्य, गान और घोड़े की सवारी करना स्त्रियो के गुण समझे जाते थे। पर सूत्र-काल के स्त्री-सम्बन्धी धर्मशास्त्र में हमे संकीर्णता और उदारता तथा स्वातंत्र्य और नियंत्रण का विचित्र सम्मिश्रण मिलता है। इसमें सन्तति की शुद्धता पर ख़ास ध्यान रक्खा गया है। पर माता के रूप मे स्त्री को हम एकदम उच्चतर पद पर आसीन पाते हैं।

कानूनी दृष्टि से विचार करें तो हिन्दू कानून पत्नी के अपनी निजी सम्पत्ति रखने के अधिकार को हमेशा से मानता आया है, पर सम्मिलित कुटुम्ब में पुरुष या स्त्री कोई भी सम्पत्ति के निश्चित भाग का अधिकारी नहीं हो सकता। विभक्त कुटुम्बों मे कतिपय दशाओं में विधवायें, मातायें, पुत्रियाँ और बहनें उत्तराधिकारी मानी जाती हैं। स्मृतिकार मनु के मतानुसार पति-पत्नी का संक्षेप में एक-दूसरे के प्रति यही कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे मृत्यु-पर्यन्त एक दूसरे-को मन, वचन या कर्म से दुःखी न करें। मतलब यह कि पुरुष-स्त्री दोनों

अपने व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से एक में मिला दे। पर बौद्धकाल में, कानूनी दृष्टि से पहले-सा ही स्थान प्राप्त होते हुए भी, उनकी दशा बिगड़नी शुरू होगई। यह एक विचित्र बात है कि यूरोप के रोमन-राज्य के समकालीन इतिहास में भारतीय स्त्रियों की स्वतंत्रता में जो रुकावटें डाली गई थीं, वे बहुत अंशों में वैसी ही थीं, जैसी कि रोमन राज्य में थीं। सूत्रों के अंशों की खींचतान करके मध्यकाल में स्त्रियों के विवाह आदि में कुछ प्रतिबंध लगने लग गये और मुसलमानों के आगमन से बालविवाह व परदे की नींव पड़ी। इसी समय सती, शिशु-हत्या, विधवाओं के प्रति कठोरता, बहुविवाह, कन्या-विक्रय और कन्याओं को देवार्पण करने आदि की प्रथाएँ भी शनैः शनैः थोड़े बहुत रूप में प्रवेश कर गई। वर्तमान काल में कुछ तो पश्चिम के प्रभाव से और कुछ आत्मचेतना से इस स्थिति में सुधार की प्रेरणा हुई और सती-प्रथा के खात्मे, विधवा-विवाह की स्वीकृति आदि के बाद स्त्रियों का संगठित आन्दोलन शुरू हुआ, जो नित्यप्रति प्रगति करता जा रहा है।

वर्तमान आन्दोलन—लेकिन समय बदला और स्त्रियो की स्थिति भी बदली। उनके अन्दर अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अधिकारों की भावना उत्पन्न हुई। फ्रांस की सामाजिक क्रान्ति से सबकी स्वतंत्रता और समानता का विचार उत्पन्न हुआ। स्त्रियों ने भी इस संदेश को सुना और अपने पर लागू करने की माँग की। इसमे उन्हे आंशिक सफलता प्राप्त भी हुई। उन्हे तलाक देने का अधिकार मिला और सम्पत्ति के बटवारे

में उनका भी हिस्सा माना गया। औद्योगिक क्रान्ति में हज़ारों स्त्रियों को मजदूरी मिली और वे पतियों से आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो गईं, इससे उनकी स्वावलम्बन की भावना और भी बढ़ गई।

फ्रांस के बाद स्त्री-स्वातंत्र्य का सर्वप्रथम आन्दोलन स्केण्डिनेविया में मिलता है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद वहाँ स्त्रियों को सहशिक्षा ही नहीं बल्कि आमतौर पर हरेक बात मे—सिवा बच्चों और विवाहित दम्पती की सम्पत्ति के बटवारे के—पुरुषों के समान अधिकार मिल गये। डेन्मार्क का आख़िरी कानून तो इस दिशा में पूर्णता को पहुँच गया है। उसने स्त्री-पुरुष को सब बातों में न्यायतः समान बना दिया है। संतति-निरोध का आन्दोलन जारी हुआ और तलाक मामूली बात होगई।

ब्रिटेन मे प्राचीन कानून के अनुसार पति अपनी स्त्री को साधारण दण्ड दे सकता था। यहाँ तक कि कुछ अनुचित कार्यों के लिए कोड़ों और डण्डों से पीटने की भी आज्ञा थी। १९ वीं सदी के तीन-चौथाई भाग के समय तक विवाहित स्त्री को यह अधिकार नहीं था कि वह पति की अनुमति बग़ैर अपनी भूमि किसी के नाम कर दे, न वह जायदादसंबंधी कोई लिखा-पढ़ी ही कर सकती थी। विवाह के समय मौजूद या प्राप्त चल-सम्पत्ति पर उसके पति का अधिकार होता था। स्त्रियों की स्वतंत्रता की आवाज़ यहाँ सबसे पहले १७९२ मे मेरी वूल्स्टन क्राफ़्ट की पुस्तक से उठी और जान स्टुअर्ट मिल जैसा प्रबल समर्थक पाकर उसने हलचल का रूप धारण कर लिया। १९०३ में श्रीमती पेंकहर्स्ट के नेतृत्व में भूख-हड़ताल व सार्वजनिक प्रदर्शनों

का भी तॉता लगा। लेकिन आशा-निराशा की टक्करों के बावजूद कोई ठोस सफलता नहीं मिली। स्त्रियों के लिए स्वर्ग-अवसर तो तभी आया, जब १६१४-१८ के महायुद्ध ने उन्हें पुरुषों की जगह सब काम करने का मौका दिया। इसके फलस्वरूप पार्लमेण्ट में उनके मताधिकार का बिल स्वीकृत होकर १६१८ में वह कानून बन गया। इसने स्त्रियों को बिलकुल पुरुषों के समान अधिकार मिल गये और रही-सही बाधायें १६१८ मे बने क़ानून (Sex Disqualification Act) द्वारा ख़त्म होगई। फलतः आज स्त्रियों के लिए सिद्धान्ततः पुरुषों के प्रायः सब रास्ते खुले हुए हैं। न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया आदि इसके उपनिवेश इस दिशा मे इस से भी पहले क़दम उठा चुके हैं। न्यूजीलैण्ड मे १८६३ से स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त है और आस्ट्रेलिया मे १६०२ मे स्त्रियों को फेडरल पार्लमेण्ट का मताधिकार मिल गया था।

जर्मनी मे १६०८ तक जर्मन सरकार स्त्रियों के राजनैतिक आन्दोलन को कुचलती रही। पर "गत यूरोपीय युद्ध" (१६१४-१८) के बाद थोड़े ही दिनों मे स्त्रियों को आश्चर्यजनक सफलता मिली। एक लेखक ने तो लिखा था कि "इस विषय मे यदि किसी देश की स्त्रियों ने सब से अधिक सफलता प्राप्त की है तो वह जर्मनी ही है।" लेकिन नाजी-प्रभुत्व के साथ स्थिति बदल गई है। अब स्त्रियों का क्षेत्र घर ही बना दिया गया है और पुरुषों की समानता का खयाल तक दबा दिया गया है।

रूस मे बोलशेविक सरकार के अमल मे आने के बाद स्त्रियों की

स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन होने शुरू हुए। विवाह एवं कुटुम्ब के मूल आधार को ही बदला जाने लगा। कुटुम्ब से लेकर राज्य तक किसी भी संबंध मे स्त्री-पुरुष का जो भेदभाव है, जहाँ तक क़ानून और घोषणा से संबंध है, उसे दूर कर दिया गया। विवाह करना और तोड़ना साधारण बात कर दी गई। स्त्री-पुरुष के समान कार्य और समान वेतन का सिद्धान्त स्थापित करके उन्हें नागरिकता के पूरे अधिकार कर्त्तव्य दे दिये गये। यहाँ तक कि स्त्रियों की सेना का भी संगठन हुआ, लेकिन यह सेना तो अब भंग कर दी गई है। अन्य बातों मे भी सिद्धान्त वही रहते हुए भी अमल मे कुछ हेर-फेर करने पड़ रहे है।

अमेरिका में—अमेरिका में स्त्रियों के अधिकारों एवं मताधिकार की संगठित हलचल सबसे पहले आज से १०६ वर्ष पूर्व, १८४० मे, शुरू हुई। उस वक्त स्त्रियों को बहुत कम क़ानूनी अधिकार थे—यहाँ तक कि अपने बच्चों पर भी क़ानूनी तौर पर उनका नियंत्रण नहीं था। स्त्रियों को न मताधिकार प्राप्त था, न पदाधिकार। सिर्फ़ सात धन्धे उनके लिए खुले हुए थे, जो मुख्यतः घरेलू थे। मताधिकार का बिल युद्ध जीतने की आवश्यकता के नाम पर १६१८ मे पेश हुआ और १६२० में क़ानून बना। अब यहाँ स्त्रियों को पुरुषों के समान मताधिकार और पदाधिकार प्राप्त है। वे सीनेट ही नही राष्ट्रपति के मंत्रिमण्डल तक मे पहुँच सकती है। रोज़ी कमाने की क़ानूनी स्थिति ही उन्होंने नहीं पा ली है, बल्कि इस संबंधी क़ानून बनाने मे भी उनका हाथ है। जनगणना-विभाग की सूची के

अनुसार कोई ५०० से ५३४ तक धन्धे उनके लिए खुले हुए हैं। उद्योग-धन्धे, कारीगरी, क़ानून और सार्वजनिक जीवन सभी में उन्हों ने ख्याति प्राप्त की है। मगर स्त्री-संस्थाओं को अभी भी संतोष नहीं है और उनके ख़याल में पुरुष-स्त्री की समानता में अभी भी रुकावटें मौजूद हैं।

यूरोप और अमेरिका की स्त्रियों ने केवल आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में ही नहीं, साहसिक कार्यों में भी पुरुष के मुक़ाबले में आने का दृढ़ निश्चय किया। हवाई जहाज उड़ाने, दौड़ने, कूदने, तैरने में भी उन्होंने रिकार्ड क़ायम किये। एक फ़्रांसीसी युवती श्रीमती डूमेरो २,४४८ मील तक बगैर मार्ग में ठहरे लगातार उड़ी थीं। फ्रांस की दूसरी महिला ४७,००० फीट ऊँची उड़ी। दो महिलाएँ लगातार १२३ घण्टे तक आकाश में रहीं। दक्षिणी अफ्रिका की श्रीमती वर्क ने १०० गज दौड़ ११ सैकण्ड में और इंग्लैण्ड की श्रीमती हाल ने ८८० गज २ मिनट १७॥ सैकण्ड में पूरी की। जर्मनी की एक महिला १५६ फ़ीट ४ इंच ऊँचा कूदी और अमेरिका की एक महिला ने तैर कर इंग्लिश चैनल पार किया।

एशिया में—एशिया में भी इस समय सर्वत्र स्त्रियों की स्थिति ऊँची होरही है। मुस्लिम देशों में इस्लामी कानून से स्त्रियों को जायदाद के अधिकार प्राप्त हैं, पर बहुविवाह और परदे की समस्या उनकी उन्नति के बाधक हैं। इनसे छुटकारा पाने में टर्कों ने सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण भाग लिया है, जिसका श्रेय कमालपाशा को है। १९२५ में बने कानून से टर्की की स्त्रियों को सब अधिकार समान रूप से प्राप्त हो गये हैं।

यही नहीं बल्कि कमालपाशा की प्रेरणा से वे बहुविवाह और परदे का त्याग कर यूरोपीय स्त्रियों की तरह वेष-भूषा, रहन-सहन आदि को खूब अपना रही हैं। ईरान और अफ़ग़ानिस्तान भी इस दिशा मे काफ़ी बढ़े है। मिश्र में भी स्त्रियों की हलचल जारी है। जापान की सरकार स्त्रियों के आन्दोलन का यद्यपि दमन कर रही है, पर चीन मे मेडम चांगकाई शेक राज-कार्यों मे अपने पति का पूरा हाथ बटाती हैं। चीन-जापान-युद्ध के प्रारम्भ मे वह युद्ध-मंत्री के पद पर थीं और युद्ध-भूमि मे सैन्य-संचालन भी करती रही है। अन्य स्त्रियों ने भी राष्ट्रीय युद्ध मे बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया है।

भारत में—हमारे अपने देश मे भी स्त्रियाँ आज जागृति-पथ पर है। यूरोप की तरह यहाॅ उन्हे पुरुषों के विरोध का कड़ा मुकाबला नहीं करना पड़ा, मगर क़ानूनी स्थिति और मताधिकार की दृष्टि से अभी भी वे अपने उद्देश्य को पूर्णतः सिद्ध नहीं कर पाई हैं। आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, भारत की राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस और भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने उनकी उन्नति मे पूरा भाग लिया है और उनकी माॅगों का पूर्ण और सक्रिय समर्थन किया है, उन्हें काग्रेस ने प्रधान तक का सम्मान दिया है और अपने हाथ मे शासन आने पर मंत्रिमण्डलों मे भी स्थान दिया है, मगर सरकार ने मताधिकार का दायरा अभी भी बहुत सीमित ही रक्खा है और गैरकांग्रेसी सूबों मे या केन्द्रीय सरकार में विशेष दायित्व के पद उन्हे अभी भी प्राप्त नहीं हुए हैं। इतने पर भी उनकी जागृति ठोस है और महात्मा गांधी एवं राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रभाव से वह खाली पुरुष-विरोधी न रह कर रचनात्मक

रूप ले रही है। यहाँ तक कि ग्रामों की ओर भी स्त्रियों का ध्यान गया है और स्वदेशी व अहिंसा को उन्होंने अपनाया है।

आन्दोलन का दूसरा पहलू—नारी-जागृति के इस इतिहास के अन्दर भी अनेक विचारकों के अनुसार सभी कुछ चमकीला नहीं है। स्त्री के प्राचीन धार्मिक विश्वास जड़मूल से हिल गये हैं। वह अपने लौकिक जीवन पर ज्यादा ध्यान देने लगी है। शृंगार और नये-नये फैशन के कपड़ों से उसे बहुत अधिक रुचि होगई है। करोड़ों रुपये की शृंगार-सामग्री प्रति वर्ष एक-एक देश में खप जाती है। मातृत्व की भावना और तपस्या से वह थक-सी गई दीखती है और रमणीयता का भाव आज की पश्चिमी नारी में बढ़ रहा है। जीवन के नये पश्चिमी आदर्शों के कारण विवाह का पवित्र बंधन अब यूरोप में शिथिल होने लगा है। वह छोटी-छोटी बातों पर तलाक का दावा करने लगी है। पुरुष के प्रति आदर और बड़प्पन का जो भाव सदियों से था, वह नष्ट हो चुका है। वह पुरुष के प्रति मुकाबले में खड़ी होगई है। वह बहुत आगे बढ़ गई है, लेकिन इस आगे बढ़ने में वह यह भूल गई है कि उसका अपना कार्यक्षेत्र क्या था। यह ठीक है कि उसे अधिकार तो पुरुषों के से ही मिलने चाहिएँ। वह भी उसी परमात्मा की सृष्टि है। संसार की सफलता के इतिहास में—पुरुष के निर्माण में, राष्ट्रों के उत्थान और पतन में नारी का भी वही भाग है, जो पुरुष का है। स्त्री और पुरुष मिल कर एक पूर्ण व्यक्ति बनते हैं। एक पुरानी कहावत के अनुसार स्त्री और पुरुष एक गाड़ी के दो पहिए हैं, इनमें से किसी

एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। दोनों को जीवन का, अपने अधिकारों की रक्षा का समान अधिकार है।

स्त्रियों का कार्यक्षेत्र—लेकिन अधिकारों की समानता का अर्थ कर्त्तव्य-क्षेत्र की एकता नहीं है। स्त्री और पुरुष की शरीर-रचना मे भेद कर के परमात्मा ने ही दोनों के कार्य-क्षेत्र पृथक्-पृथक् बना दिये हैं। आज की नारी इसे भूल गई है। प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता लैकी की यह राय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है—"यूरोप की स्त्रियों ने अपनी सभ्यता में चाहे जितनी उन्नति की हो, पर उनकी वह उन्नति हमेशा पुरुषोचित रही है। स्त्रियोचित गुणों का-प्रेम, विश्वास, लज्जा, दया, सहानुभूति आदि का पूर्ण विश्वास यहाँ की सभ्यता में नहीं हुआ है। यूरोप को अब पौरुषीय सभ्यता की बिलकुल ज़रूरत नहीं है। वह युद्ध, राजनैतिक घात-प्रतिघात और संकीर्ण जातीयता से बहुत घबरा गया है। अब वह पूर्ण शक्ति, जो केवल स्त्रियोचित—गुणों के विकास से ही प्राप्त हो सकती है, चाहता है।" वस्तुतः स्त्रियों के पुरुषों के कार्यक्षेत्र मे आने के बाद से यूरोप मे कुटुम्ब प्रथा का ह्रास हो रहा है। विवाह से बचने या सन्तान-निग्रह की प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ने लगी है। वे किसी बंधन मे रहना ही नहीं चाहतीं।

जर्मनी में नाज़ी सरकार ने स्त्रियों को फिर अपने घर के कार्यक्षेत्र में चले जाने की आज्ञा दी है। अब वे नौकरी नहीं कर सकतीं। उनकी उच्च शिक्षा तक पर पाबन्दी लगा दी गई है। उन्हें विवाह और सन्तानोत्पत्ति के लिए प्रेरित किया जा रहा है। इटली मे भी यही आन्दोलन चल रहा है। जापान मे भी स्त्रियों के फिर घरों में जाने

की आवाज अभी से उठने लगी है। भारतीय संस्कृति के पोषक तो भारत में यह आवाज उठा ही रहे हैं। नहीं कहा जा सकता कि इस नारी-जागरण आन्दोलन का प्रवाह किस दिशा में बहेगा।

मजदूरों की जागृति

अमीर और गरीब—यों अमीर गरीब का भेद अत्यन्त प्राचीन काल से आ रहा है, लेकिन वर्तमान औद्योगिक क्रान्ति और बड़ी बड़ी मशीनों के आने के बाद यह भेद बहुत अधिक तीव्र और स्पष्ट रूप से हमारे सामने आया। पहले गांवों में हर एक कारीगर अपने लिए अपनी चीज तैयार करता था और बेच देता था, लेकिन कल-कारखानों के प्रचार के बाद हर एक कारीगर मिलमालिक का नौकर हो गया और उसी के लिए माल तैयार करने लगा। उसका मुनाफा मालिक को मिला और थोड़ी सी नाकाफी मजदूरी कारीगर को। परिणाम यह हुआ कि मिल-मालिक ज्यादा अमीर बनता गया और कारीगर ज्यादा गरीब। गरीब मजदूरों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। उन्हे न खाने को पूरा मिलता था, न पहनने को। उनकी झोंपड़ियाँ ऐसी थीं कि पशु भी उनमे न रह सके। १३-१४ घण्टे प्रतिदिन काम, थके माँदे मजदूरों की जीवनगति जल्दी जल्दी खतम हो रही थी।

उस समय के अनेक विचारकों का ध्यान इधर गया। उन्हों ने साधारण जनता का ध्यान मजदूरों की दयनीय दशा की ओर खींचा। उन्नीसवीं सदी के एक महान अंग्रेज राजनीतिज्ञ और उपन्यासकार डिसराइली ने इनका वर्णन इस तरह किया है—"ये दो

(अमीर और ग़रीब) जातियाँ, जिनके बीच कोई सम्पर्क नहीं है, कोई पारस्परिक सहानुभूति नहीं है, जो एक दूसरे की आदतों, विचारों और भावनाओं से ऐसी अपरिचित हैं, मानो वे जुदा जुदा दायरों मे रहती हों अथवा जुदे जुदे नक्षत्रों के रहने वाले हों, जो दूसरे तरह के पोषण से बनी हैं, जिनका पालन दूसरे तरह के भोजन से हुआ है, जिन पर जुदा जुदा रिवाजों का असर पड़ता है और जिनका शासन भी एक ही कानून से नहीं होता............हाँ, ऐसी हैं ये दो जातियाँ—अमीर और ग़रीब।"

जागृति का प्रारंभ—इन दोनों श्रेणियों के पारस्परिक भेद-भाव को दूर कर के समानता लाने के विचार अनेक विचारकों ने पेश किये। इनमें जर्मनी का कार्लमार्क्स सब से प्रसिद्ध था। उसने समानता के जिस सिद्धान्त का प्रचार किया, उसे ही हम मार्क्सवाद, सोशलिज़्म या समाजवाद का नाम देते हैं। यों कार्लमार्क्स से बहुत पहले भी सर थामस मोर, फ़ोरियर, राबर्ट ओवन, प्राउडन आदि ने ऐसे ही कुछ विचार पेश किये थे, लेकिन कार्लमार्क्स ने इसे सबसे अधिक वैज्ञानिक रूप दिया और इसके प्रचार के लिए १८६४ मे एक निश्चित संगठन भी स्थापित किया। यही मजदूरों का पहला व्यापक संगठन था। मार्क्स ने एक आवाज़ उठाई—"संसार के मज़दूरो, एक हो जाओ और पूंजीवाद का जुआ उतार फैंको।" मार्क्स का स्थापित किया हुआ यह संघ 'प्रथम इण्टरनैशनल' के नाम से विख्यांत है। इसके कई हजार सदस्य थे।

आन्दोलन का विकास—कुछ समय बाद इसके सदस्यों में अराजकतावाद के प्रश्न पर फूट पड गई और यह टूट गया। लेकिन यह जाते जाते भी सारे यूरोप पर महान प्रभाव छोड़ गया। विभिन्न देशों के मजदूरों मे जागृति और संगठन के भाव पैदा हुए। वे सोचने लगे कि हम भी उसी परमात्मा के मनुष्य हैं, हमे भी संसार मे जीवित रहने और सुखी होने का अधिकार है। हम मेहनत करते हैं, लेकिन हमे वेतन बहुत कम मिलता है, पूंजीपति हमारा शोषण कर रहे हैं, हमे भी आराम के लिए समय चाहिए और हम आठ घण्टों से अधिक काम न करेंगे। इन सब विचारों का परिणाम यह हुआ कि—जगह जगह मजदूर अपना गुप्त या प्रत्यक्ष संगठन और अपनी शिकायतें दूर करने का आन्दोलन करने लगे। शुरू शुरू मे इनकी कोई ताकत न थी, इन्हे दबाने और कुचलने का यत्न किया गया, परन्तु जागृति और संगठन का भाव जोर पकड चुका था, दबाये न दबा। वे धीरे धीरे ताकत पकड़ते गये और उनकी ट्रेड यूनियन संस्थाएँ प्रभावशाली होती गई। समय के साथ साथ ट्रेड यूनियनों के संगठन का क्षेत्र प्रान्तव्यापी या देशव्यापी होता गया। ज्यों ज्यों इनका प्रभाव बढ़ता गया, सरकारे भी इनकी बात मानने लगीं और सब देशों में मज़दूर कानूनों की बाढ़ सी छा गई। *

---

*यह एक आश्चर्य की बात है कि इंग्लैण्ड मे जो पहला फैक्टरी का कानून बना था, वह एक दयालु मिलमालिक मि० ओवन के विचार और परिश्रम का परिणाम था। इस कानून के अनुसार ९ वर्ष के बच्चों से १२ घंटे से ज्यादा काम लेना गैरकानूनी करार दे दिया गया। मजदूरों की तब कैसी दर्दनाक हालत थी, यह इसी धारा से स्पष्ट है।

यूरोप के साम्यवादी नेताओं ने १८८६ में फिर एक अन्तर्राष्ट्रीय मजदूरसंघ की नींव डाली, जो द्वितीय इण्टरनेशनल के नाम से प्रसिद्ध है। साम्यवादियों का निश्चित विचार था कि विभिन्न राष्ट्रों के युद्ध पूंजीपतियों के स्वार्थों से प्रेरित होते हैं। इस लिए जनता को इन युद्धों में भाग नहीं लेना चाहिए। इसका प्रचार भी खूब ज़ोरों से किया गया। लेकिन जब १६१४ में यूरोप का महायुद्ध शुरू हुआ, तो अधिकांश साम्यवादी अपने अपने देश की सीमा सं बाहर न सोच सके और युद्ध में सहयोग देने के लिए तैयार हो गये। फलतः यह संगठन भी टूट गया। इसी युद्ध के काल मे १६१६ मे लेनिन ने रूस में तीसरे इण्टरनेशनल के नाम से नया संगठन किया। इसका कार्य-क्षेत्र रूस तो था ही, विभिन्न देशों मे साम्यवादी भावों का प्रचार करना भी इसका एक विशेष उद्देश्य रहा, जो पीछे से स्टालिन ने दूसरे देशों के साथ संधि के परिणामस्वरूप छोड़ दिया।

अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर कार्यालय—युद्ध के कारण यद्यपि दूसरा इण्टरनेशनल टूट गया था, फिर भी मजदूरों में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का भाव घर कर चुका था और पूंजीपति व शासक भी इसे अनिवार्य तथा उपयोगी समझने लगे थे। इसलिए युद्ध के बाद जब राष्ट्रसंघ की नींव रखी गयी, तो उसी के साथ अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर कार्यालय भी बना दिया गया। इसने मजदूरों के लिए घोषणापत्र प्रकाशित किया, जिसमें मजदूरों के बहुत से अधिकारों की घोषणा की गई थी। इसके सदस्य साठ राष्ट्र थे। प्रत्येक सरकार अपने दो प्रतिनिधि, एक मिलमालिकों का और एक मजदूरों का प्रतिनिधि भेजती थी। इसके

निर्णय मानने के लिए प्रत्येक सरकार बाधित नहीं थी, फिर भी इसके प्रस्तावों का लाभ काफी हुआ। मजदूरों की स्थिति में काफी सुधार हुए। अपने २० साल के जीवन में इसने ६६ समझौते और ८६५ प्रस्तावों के द्वारा कुछ व्यावहारिक सिद्धान्त और आदर्श कायम किये हैं, जिनमे मजदूरों के काम के घण्टे, यूनियन बनाने के अधिकार, मजदूर स्त्रियों को सुविधा, बीमारी-बेकारी का बीमा तथा शिक्षा और स्वास्थ्य आदि मुख्य हैं।

इंग्लैण्ड में मजदूर सरकार—इंग्लैण्ड तथा अन्य यूरोपियन देशों मे मजदूर आन्दोलन बहुत तेजी से बढ़ रहा था। मजदूरदल ने इंग्लैण्ड की पार्लमेंट मे अपने प्रतिनिधि भेजने शुरू किये, यह देख कर दूसरे देशों मे भी मजदूरदल ने व्यवस्थापिका सभाओं पर अधिकार करने का प्रयत्न शुरू किया। १९२४ मे पहली बार और १९३१ मे दूसरी बार इंग्लैण्ड में रैम्से मैकडानल्ड के नेतृत्व में मजदूर सरकार बनी, लेकिन पर्याप्त बल न होने के कारण यह सरकार कुछ कर नहीं सकी। हाँ, इससे मजदूरों का बल बहुत बढ़ गया। इस लिए जब आर्थिक परिस्थितियों से विवश होकर सरकार ने १९२६ ई० मे कोयले की खानों के मजदूरों के वेतन १३॥ फीसदी कम कर दिये, तो मजदूरों ने ४ मई को हड़ताल कर दी। हड़तालियों की सहानुभूति मे बिजली, रेलवे, बन्दरगाह तथा अन्य कारखानों मे भी मजदूरों ने हड़ताल कर दी। बहुत जल्दी ही हड़ताल इतनी व्यापक हो गई कि २५ लाख मजदूर इस हड़ताल मे शामिल हो गये। परन्तु इस हड़ताल ने मजदूरों का बल बढ़ाने की बजाय उसे घटा दिया। इंग्लैण्ड मे जनमत मज-

दूरों के विरुद्ध हो गया। कुछ दिनों में मजदूरों ने हड़ताल स्वयं ही समाप्त कर दी, परन्तु इंग्लैण्ड को इससे २ अरब ३० करोड़ रुपयों का नुकसान हो गया। इसके बाद यद्यपि १६३१ मे भी मजदूरों की सरकार कायम हुई, तो भी मज़दूर आन्दोलन उस सीमा पर नहीं पहुँचा। आनेवाली आर्थिक मंदी और अन्तर्राष्ट्रीय सङ्कट ने उनके आन्दोलन पर भी प्रभाव डाला और जनमत उनके बहुत अधिक अनुकूल नहीं हो सका।

मध्य यूरोप में प्रतिक्रिया—इंग्लैण्ड के सिवा मध्य यूरोप के देशों में मजदूर आन्दोलन की दिशा दूसरी ओर चली। वहाँ रूस के साम्यवाद और बोलशेविक सरकार का प्रभाव ज़्यादा था। इसलिए जर्मनी और इटली मे साम्यवादियों ने मजदूरों की सहायता से साम्यवादी सरकार स्थापित करने का प्रयत्न किया। लेकिन वे इतने शक्तिशाली न थे कि समस्त अशान्ति और अव्यवस्था को काबू मे ला सकते। उनकी हलचलों से देश मे कमज़ोरी बढ़ रही थी। न देश की आर्थिक स्थिति की स्थिरता थी और न शान्ति। राष्ट्र की उन्नति की अपेक्षा उन्हे अपने अपने श्रेणीहित की फिक्र थी। परिणाम यह हुआ कि जनमत को उनकी शक्ति पर विश्वास न रहा और जब इटली में मुसोलिनी ने साम्यवाद के विरुद्ध फ़ासिज़्म का झण्डा उठाया, तो जनता उसके साथ हो गई।

यही हाल कुछ साल बाद जर्मनी मे हुआ। इन दोनों देशों के नेताओं ने देश को यह समझाया कि वर्गहित की अपेक्षा राष्ट्रहित ऊँचा है और इसीलिए राष्ट्रहित के आगे वर्गहित की वलि दे देनी

चाहिए। फलतः दोनों देशों मे मजदूरसंघ तोड़ दिये गये और उनसे हड़ताल करने का अधिकार छीन लिया गया।

फ्रांस की भी यही दशा हुई। मजदूरों ने बड़ी हड़तालें संगठित कीं। इनकी एक विशेषता यह थी कि मिलों के अन्दर कारीगर चले जाते और काम करने से इन्कार कर देते। इन हड़तालों को 'अन्दर रही' हड़ताल या 'Stay in Strike" कहते हैं। इसके बाद वहाँ सोशलिस्ट सरकार बनी और उन्होंने मजदूरों के हित के लिए कई कानून बनाये। ४० घण्टे का सप्ताह, युद्धोद्योगों का राष्ट्रीयकरण, फ्रांक की कीमत गिराना और वैतनिक अवकाश आदि इनमें प्रमुख थे। लेकिन कुछ ही समय बाद इस सरकार को हटना पड़ा और फिर ४० घण्टे का सप्ताह भी हटाना पड़ा। बात यह थी कि पूंजीपतियों ने कहा कि वे सप्ताह में सिर्फ ४० घण्टे मिल चलाने की अपेक्षा मिल बन्द कर देना अच्छा समझेंगे, क्योंकि ४० घण्टे का नियम अक्रियात्मक है और घाटा पहुँचाने वाला है। फ्रांस की तरह स्पेन मे भी सब साम्यवादी दलों ने 'पापुलर फ्रण्ट' के नाम से मिल कर स्पेन का शासनसूत्र हाथ मे लिया और वहाँ किसानों और मजदूरों के लिए कई कानून बनाये। लेकिन कुछ ही समय बाद जनरल फ्रैंको ने इस सरकार के विरुद्ध गृहयुद्ध शुरु कर दिया। इटली व जर्मनी की फासिस्ट सरकारों की सहायता से स्पेन की 'पापुलर फ्रण्ट' सरकार को फ्रैंको ने हटा दिया और इस तरह मजदूरों की शक्ति को बहुत धक्का लगा।

जिस तरह से स्त्रियों के आन्दोलन की प्रतिक्रिया शुरू हुई है,

उसी तरह मजदूर आन्दोलन की प्रतिक्रिया भी कुछ समय पूर्व प्रारंभ हो चुकी थी। स्त्रियों ने पुरुष समाज के हितों की चिन्ता नहीं की, उसी तरह मजदूरों ने राष्ट्र की आर्थिक उन्नति की चिन्ता न करके अपनी उन्नति पर ही ध्यान दिया। परन्तु राष्ट्रीयता की भावना, अर्थ संकट तथा पूंजीपतियों के प्रचार ने देश मे यह भावना पैदा कर दी कि मजदूरों की मांगें अनुचित हैं और इसका परिणाम यह हुआ कि मजदूर आन्दोलन को गहरा धक्का लगा।

अमेरिका में—अमेरिका मे मजदूर-आन्दोलन बिलकुल विभिन्न दिशाओं मे चला। वहाँ के मजदूरों का पहले तो संगठन इतना व्यापक न था, सिर्फ १५ फीसदी मजदूर-संघों मे सम्मिलित हो सके। फिर उसका आधार न वर्गयुद्ध था और न उसने राजनैतिक अधिकार पाने का कभी इरादा ही किया। इसके विपरीत उसमे तो साम्यवाद के विरोधी तत्त्व ही अधिक थे। उसका उद्देश्य केवल कारखानों मे अपने अधिकारों के लिए लड़ना था। यूरोप के देशों की तरह वहाँ कोई राजनैतिक पार्टी कायम नहीं हुई। अमेरिका के मजदूर आन्दोलन मे एक और भी महत्वपूर्ण घटना हुई। मजदूर संघ में अधिकतर दक्ष (कारीगर) मजदूर थे, लेकिन साधारण अदक्ष (unskilled) मजदूरों ने १९३५ मे एक नया संगठन बनाया। इन दोनों संघों मे काफ़ी विरोध हुआ। आज भी वहाँ दोनों मजदूर संघ है और इन दोनों का विरोध जारी है। आर्थिक मन्दी के कारण जब मजदूरों की दशा बहुत ख़राब हो गई, तब प्रेज़िडैण्ट रूज़वेल्ट ने मजदूर संघों का समर्थन कर उन्हें कानूनी तौर पर

स्वीकृत करने के लिए मिल मालिकों को बाधित कर दिया । इससे मजदूर संघों का बल वहाँ बहुत बढ़ गया है ।

बेकारी का बीमा—अमेरिका और यूरोप के अनेक राष्ट्रों में मजदूरों की बेकारी की ओर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। आज तो युद्ध की वजह से बेकारी नहीं है, लेकिन तीन चार साल पूर्व आर्थिक संकट के दिनों में बुरी हालत थी । लाखों मजदूर बेकार हो गये थे । इनकी सहायता के लिए सरकारें आगे बढ़ीं । इंग्लैण्ड में १७ शिलिंग प्रति सप्ताह हरेक बेकार को गुजारे के लिए दिया जाने लगा । इसी तरह बीमारी और बुढ़ापे के लिए भी कुछ न कुछ दिया जाता है । अमेरिका में बूढ़ों को पेंशन दी जाने की व्यवस्था १९३९ में ही बनी है । फ्रांस में प्रसव और विवाह के अवसर पर राज्य काफ़ी सहायता देता है । मजदूरों के दिलबहलाव, सिनेमा, नाटक, खेल संगीत आदि की भी व्यवस्था प्राय: सभी उद्योगप्रधान देशों में हो रही है ।

एशिया में—यूरोप और अमेरिका में ही नहीं, एशिया में भी मजदूर आन्दोलन ने काफी उन्नति की । चीन में तो मज़दूरों व किसानों की सरकार का आन्दोलन चला । वहाँ साम्यवादी नेताओं ने राष्ट्रीय सरकार के विरुद्ध साम्यवादी सरकार की स्थापना कर डाली और कुछ ही बरसों में चीन के हजारों मील लम्बे एक विशाल प्रदेश पर अधिकार कर लिया । ज़मींदारों से जमीनें छीन ली गईं, कारख़ाने सरकार की सम्पत्ति हो गये । चीन की इन दोनों सरकारों

में चिरकाल तक गृह-युद्ध चलता रहा और अब जापान के आक्रमण का मुकाबला करने के लिए दोनों दल मिल गये हैं।

भारत मे यूरोपियन देशों व अमरीका की अपेक्षा मजदूर आन्दोलन अभी बहुत नया है, फिर भी इनकी अपनी एक शक्ति बन चुकी है। रेलवे, कपड़े के कारखानों और जूट मिलों मे मजदूरों का संगठन बहुत अच्छा है। मजदूरों के हित के लिए फैक्टरी एक्ट मे बहुत से संशोधन किये गये हैं और उनकी कई मांगें मान ली गई हैं। लेबर कमीशन ने १६३१ मे बहुत सी सिफारिशे की थीं, जिनमे से ५४ घण्टे का सप्ताह प्रमुख है। राष्ट्रीय नेताओं का भी मजदूरों को सहयोग प्राप्त है। म० गांधी स्वयं अहमदाबाद मे व्यापक मजदूर हड़ताल का संगठन कर चुके है और आज भी उन्हीं की सलाह से अहमदाबाद का मजदूर संगठन चल रहा है। यहाँ भी हड़ताले संगठित और असंगठित रूप से बहुत सी हुई हैं। ट्रेड यूनियन एक्ट के अनुसार मज़दूरों को संगठन के अधिकार प्राप्त हैं। मज़दूरों के प्रतिनिधि व्यवस्थापिका सभाओं मे लिये जाते हैं। प्रसविणी मजदूर स्त्रियों को सवेतन अवकाश का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है, उनके और उनके बच्चों के लिए हितकार्य (welfare) शुरू हो गये हैं। साल मे उन्हे सवेतन अवकाश, न्यूनतम वेतन, बेकारी का बीमा आदि की सिफारिशों पर कानून निकट भविष्य में ही बनाये भी जाने वाले हैं। चोट या दुर्घटना पर मुआवजे के पहले कानून मे अब काफ़ी सुधार हो गये हैं।

अन्य भी सब देशों मे अपनी अपनी परिस्थितियो के अनुसार थोडे बहुत अन्तर से मजदूरों का आन्दोलन चल रहा है।

किसान आन्दोलन

मजदूरो से भी पुराना और ज्यादा शोषित वर्ग किसान का है। लेकिन सच पूछो तो अभी तक भी नेताओं का जितना ध्यान मजदूरों की ओर गया है, उतना किसानों की ओर नहीं। इसके अनेक कारणों मे से एक यह भी है कि मजदूरों के स्वार्थ बिलकुल एक हो सकते है, परन्तु किसानो के नहीं। वे मजदूरों की तरह एक स्थान पर इकट्ठे एक मालिक के नीचे नहीं रहते। रूस के बोलशेविक आन्दोलन ने किसानो को जागृत किया, वहाँ जमींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध असंतोष उत्पन्न हुआ, लेकिन वह मजदूर आन्दोलन की तरह व्यापक नही हो सका। स्पेन मे 'पापुलर फ्रण्ट' की सरकार ने किसानों के लिए जमीनों का नये ढंग से वितरण किया। इंग्लैंण्ड, डैनमार्क आदि अनेक देशों मे सरकारों ने किसानों की स्थिति की जाँच के लिए कमेटियाँ नियुक्त की और वे इस परिणाम पर पहुँचे कि किसानों को अपनी जमीन मिलनी चाहिए। इसके लिए करोड़ों रुपया सरकार ने खुद अपने पास से देकर बड़े बडे जमीदारों से जमीने ले लीं और किश्तों पर किसानों को दे दीं।

डेनमार्क ने इधर बहुत पहले ध्यान दिया। १८५० ई० मे वहाँ उन किसानों की संख्या, जिनकी अपनी अपनी ज़मीन न थी, ४२.५ फीसदी थी। १९०५ मे यह संख्या घट कर १० फीसदी रह गई। १९३५ मे सिर्फ २ फीसदी।

अमेरिका मे किसानों की उन्नति के लिए क्या किया गया, यह हम न्यू डील और प्रेज़िडैएट रूज़वेल्ट के प्रकरण मे देख आये हैं। भारत में पिछले कुछ सालों से किसानों के लिए बहुत कुछ किया गया है। यह हिसाब लगाया गया था कि भारत के किसानों पर १६ अरब रुपया कर्ज़ है। अब सब प्रान्तों मे किसान ऋण सहायक आदि कई कानून पास हो गये हैं, जिनके अनुसार किसान के हल बैल आदि कुर्क नहीं हो सकते, उनकी मौरूसी जमीन नही छीनी जा सकती, ब्याज की दर भी नियत मात्रा से ज़्यादा नहीं ली जा सकतीं, सूद मिला कर मूल धन के दुगने से अधिक नहीं लिया जा सकता, कोई ग़ैरकानूनी लागें नहीं वसूली जा सकती आदि। किसानों को जमींदारों से बचाने के और भी कितने ही नियम हैं। सरकार भी किसानों की ओर अब थोड़ा बहुत ध्यान देने लगी है, यद्यपि अभी तक न तो वह अर्थाभाव से किसानों के लगान व मालगुजारी मे कमी कर सकी है, न आबपाशी मे। प्रान्तीय सरकारों ने किसानों के बहुत से अधिकार कानूनी तौर पर स्वीकृत कर लिये हैं।

किसानों की समस्या के साथ मुख्य प्रश्न जमींदारी पद्धति का है। उग्र किसान नेता इस पद्धति को ख़तम करने पर ज़ोर दे रहे हैं, यद्यपि निकट भविष्य मे इसकी कोई संभावना नहीं। १६३५ के नये कानून से लाखों किसानों को मताधिकार मिल गया है, और कांग्रेसी नेताओं ने गाँव गाँव में घूम घूम कर किसानों मे काफ़ी प्रचार किया

है। इस कारण आज का भारतीय किसान ज्यादा समझदार हो गया है और अब अपने अधिकारों की चर्चा करने लगा है।

धार्मिक भावना बदली

स्त्रियों, किसानों और मजदूरों की जागृति के अलावा क्रान्ति और जागृति की लहर अन्य क्षेत्रों में भी चल रही है। यह सब आन्दोलन आर्थिक दृष्टि से हैं, लेकिन इसी सदी में सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों मे भी कम परिवर्तन नहीं हुआ।

एक समय था, जब मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क पर धर्म का इतना अधिक प्रभाव था कि उसका संपूर्ण जीवन धार्मिक विश्वासों, धारणाओं और रीति-रिवाजों से ओतप्रोत हो गया था। लोग एक परोक्ष और अदृश्य आध्यात्मिक सत्ता की, जिसे ईश्वर आदि का नाम दिया गया, पूजा करने लगे। ब्राह्मण, पादरी, मुल्ला आदि धार्मिक उपदेश देने वाली श्रेणी ने ईश्वर के नाम पर जो प्रथाएँ चलाईं, वे भी धार्मिक कर्तव्य बन गये। उन्होंने जो कहा, उसी पर विश्वास कर लिया गया, क्योंकि जनता के लिये ईश्वर एक दुर्बोध और अज्ञेय वस्तु थी।

विज्ञान ने तर्क और परीक्षण की कसौटी पर प्रत्येक वस्तु को कसने की शिक्षा दी है, इस लिए मनुष्य के धार्मिक विश्वास शिथिल होने लगे हैं। और वह अन्ध विश्वासों से ऊपर उठने लगा है सदियों की धार्मिक भावनाएँ और आचरण-सम्बन्धी धार्मिक नियमों की पाबन्दियाँ भी उठती जा रही हैं, धर्म-मन्दिरों मे लोग कम जाने लगे हैं और ईश्वर-विरोधी विचार तक भी पैदा होने लगे हैं।

रूस, स्पेन और मैक्सिको आदि में ईश्वर और धर्मविरोधी आन्दोलन आरम्भ हो गया है। साम्यवादी विचारक धर्म के इसलिए विरुद्ध हैं कि उनके विचार मे धार्मिक भावना ने मनुष्य की स्वतंत्र विचार शक्ति को नष्ट कर दिया है और उन मे इसी कारण क्रान्ति की भावना पनपने नहीं पाती।

प्रारम्भ मे ईश्वरविरोधी आन्दोलन कुछ जोर भी पकड़ता देखा गया, लेकिन आज यह आन्दोलन भी शिथिल पड़ने लगा है। वस्तुतः धर्म के संस्कार इतने अधिक बद्धमूल हो चुके हैं कि वे हटाए नहीं हटते। इस आन्दोलन का इतना अवश्य प्रभाव हुआ है कि लोगों में पादरियों और धर्ममन्दिरों के प्रति आस्था बहुत कम हो गई है। मैक्सिको मे रैड इन्डियन ईसाई गिरजों मे अपने साथ दुर्व्यवहार से खिन्न होने के कारण यह आन्दोलन चला रहे हैं। जर्मनी मे भी इस आन्दोलन का उद्देश्य ईश्वर के अस्तित्व को हटाना नहीं, अपितु राज्य को ईश्वरीय दर्जा देना है। इटली मे धर्म राज्य की कठपुतली है। फ्रांस मे धर्मभावना कमजोर है। इंग्लैण्ड मे ईश्वर पर विश्वास तो बहुत कम है, लेकिन वे धार्मिक प्रथाओं को बिना महत्व दिए हुए ही व्यावहारिक रूढ़ि के रूप में अब भी पालते जाते हैं। टर्की मे कमाल पाशा के प्रयत्न से धार्मिक विचारों मे बहुत परिवर्तन हो गया है। मुसलमान अपनी कट्टरता के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके धर्मगुरु खलीफ़ा का उठा दिया जाना असंभव था। हिन्दुस्तान मे इसीलिए खिलाफ़त का महान् आन्दोलन चला था, लेकिन कमालपाशा ने १९२४ में ख़िलाफत का खातमा कर दिया। तुर्की उसे सह गया। बाकी मुस्लिम

राष्ट्रों को भी सहना पड़ा। मुल्लाओं के विशेषाधिकार छिन गये। मुसलमानों के कानून की पुरानी किताब शरियत उड़ा दी गई और नया सिविल कोड जारी किया गया। भारतवर्ष में धर्म का अभी जनता के जीवन में बहुत स्थान है। शिक्षित भारतीय भी सामाजिक रूढ़ियों से निकल बचने का साहस नहीं दिखाते।

धर्म का भविष्य—धर्म ने सत्य उपकार, संयम आदि जिन नैतिक सिद्धान्तों और शिक्षाओं को जन्म दिया था, उनको आज के बड़े बड़े विचारक भी मानने लगे हैं, यद्यपि उनकी व्याख्या वे अपने ढंग से करने लगे हैं। वर्तमान विचारों का एक प्रभाव यह हुआ है कि धर्मशास्त्री अपनी अपनी धर्म पुस्तकों की व्याख्या विज्ञानानुकूल करने लगे हैं, जिससे उनमें प्रतिपादित उपदेश जनसाधारण के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करने में असमर्थ न हों। वर्तमान युग की यह विशेषता है कि इसमें साधारण जनता को महत्ता दी गई है। व्यक्तिनिष्ठा का काल चला गया, समाजनिष्ठा का काल आया है। जो धर्म केवल पारमार्थिक मोक्ष की चिन्ता करता है, वह आज लोगों को आकृष्ट नहीं कर सकता। आज तो ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जो समाज और राष्ट्र का भी कल्याण कर सके। धर्म ने यदि यह नयी दृष्टिकोण स्वीकार कर ली, तो धर्म का भविष्य उज्ज्वल है।

सामाजिक क्रान्ति

धार्मिक विचारों मे क्रान्ति के परिणामस्वरूप उन सामाजिक विचारों और आदर्शों में भी परिवर्तन हुआ, जिनका आधार धार्मिक स्मृति ग्रन्थ थे। शिक्षा के कारण और कुछ परिस्थितियों के कारण लोगो ने अपनी बहुत सी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध विद्रोह किया। आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द और ब्राह्म समाज के प्रवर्तक राजा राममोहनराय के प्रचार का वहुत अच्छा परिणाम हुआ। लोगों मे पुराने अन्धविश्वास नष्ट हुए ही, बालविवाह, अनमेल-विवाह, बलात् वैधव्य, परदा आदि सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध भी आन्दोलन हुआ। आज पिछले २० साल से भारतीय समाज काफ़ी बदल चुका है। सम्मिलित परिवार की प्रथा का भी शनैः शनैः लोप हो रहा है। पुराना रहन सहन, विचार तौर तरीका सब वदल गया है।

जात-पात और छूतछात दो वुराइयाँ हिन्दू समाज मे वहुत गहराई तक पहुँची हुई थीं, लेकिन राजा राममोहन राय, ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा गांधी आदि अनेक महापुरुषों के प्रयत्न से छूतछात का भाव नष्ट होता जा रहा है। महात्मा गांधी ने दलितों या हरिजनों की उन्नति के लिए विशेष रूप से प्रयत्न शुरू किया है। उनके अन्दर भी इतनी जागृति उत्पन्न हो गई है कि वे अपने अधिकार समझने लगे हैं। देव-मन्दिर देखने, कुओं, तालावों, होटलों, स्कूलों और सड़कों आदि सार्वजनिक स्थानों पर जाने के वे अधिकार माँगने लगे हैं और वहुत स्थानों पर उन्हें अधिकार मिल भी गये हैं। अनेक प्रान्तीय सरकारों ने मन्दिरप्रवेश की कानूनी वाधाएँ दूर कर दी हैं।

हरिजन अब अपने को अछूत मान कर परे परे नहीं रहते, बल्कि अपने को दूसरे सवर्णों के समान मानने लगे हैं। खानपान के घेरे में ही रोटी और शादी के बंधन भी अब टूटने लगे हैं। भिन्न भिन्न वर्णों और प्रान्तों के बीच अब विवाह होने लगे हैं। भोजन का बंधन तो अब करीब करीब टूट चुका है। समुद्रयात्रा का बंधन भी अब खतम हो चुका है।

दूसरे देशों में—जो भारत में हुआ, वही अन्य देशों में भी हो रहा है। कमालपाशा ने टर्की का दृष्टिकोण उदार कर दिया है। वहाँ कभी चित्रकला, फोटो और फुटबाल को धर्मविरुद्ध समझा जाता था। तुर्की टोपी और दाढ़ी रखना धार्मिक कर्तव्य समझे जाते थे, लेकिन अब वहाँ नई संस्कृति का राज्य है, परदा बिलकुल लोप हो चुका है, स्त्रियाँ यूरोपियन स्त्रियों से पीछे नहीं रहीं। अफगानिस्तान, ईरान, ईराक और मिश्र आदि मुस्लिम मुल्कों में भी सामाजिक क्रान्तियाँ हो रही हैं। चीन में अफीम पीने का व्यसन भीषण रूप से जड़ जमा चुका था। इसका प्रभाव चीन के चरित्र व स्वभाव पर बहुत बुरा पड़ रहा था। सामाजिक क्रान्ति के साथ ही समस्त चीन अफ़ीम के विरुद्ध कमर कस कर खड़ा हो गया। इसके लिए उसे विदेशी शक्तियों से भी संघर्ष करना पड़ा, लेकिन आखिर वह सफल हुआ। लम्बी लम्बी चोटियाँ और स्त्रियों के पैर छोटे करने के लोहे के जूते भूतकाल की वस्तु बन गये। सब चण्डूखाने बन्द कर दिये गये।

———

अन्य क्षेत्रों में

शिक्षा—शिक्षा के सम्बन्ध में भी पुराने विचार बदल रहे है। नये शिक्षाशास्त्री कह रहे है कि विद्यार्थियों को पीटना अनुचित है। स्कूल का वातावरण घर की अपेक्षा भी प्रेमयुक्त होना चाहिए। शिक्षा पद्धति मे भी रटने की बजाय खेल खेल में समझाने की कोशिश करनी चाहिए। मौण्टिसरी की शिशु शिक्षण-पद्धति भारत मे भी लोकप्रिय हो रही है। विद्यार्थियों को बन्द कमरों की बजाय खुले बागों में पढ़ाने की चर्चा भी चल रही है। ग़रीबों के बच्चों को कमेटी या सरकार के प्रबंध से दूध पिलाने की माँग भी बढ़ रही है। प्रायः प्रत्येक सरकार शिक्षा-प्रचार की ओर विशेष ध्यान देने लगी है और निरक्षरता से युद्ध किया जा रहा है।

युवकों की मनोवृत्ति—जहाँ समाज की अन्य श्रेणियों मे नये भावों का परिणाम प्रत्यक्ष हो रहा है, वहाँ विद्यार्थियों और युवकों मे आत्माभिमान का एक अद्भुत भाव पैदा हो रहा है। अपने माता पिता और गुरुओं के प्रति वह श्रद्धा नहीं रही। वे अब अपने बड़ों की आलोचना करने लगे हैं। उन्हे अपनी बुद्धि और विवेक पर अत्यधिक विश्वास हो गया है। वे उनकी कोई आज्ञा जब तक उन्हे समझ मे न आ जावे, मानने को तैयार नहीं। फलतः स्कूलों और कालेजों मे अधिकारियों के विरुद्ध असंतोष और हड़तालों द्वारा उसका प्रदर्शन, जो आज से २०-२५ साल पूर्व अज्ञात सी वस्तु थी, आम हो गया है। विभिन्न राष्ट्रों के स्वाधीनता आन्दोलनों और राजनैतिक क्रान्तियों में

विशेष भाग लेने के कारण उनका उत्साह और आत्मविश्वास बढ़ गया है। विविध देशों में चली हुई स्काउटिंग संस्था ने भी युवकों को कुछ आगे बढ़ाया है।

राजनैतिक जागृति

प्रजातंत्र की क्रान्ति—यद्यपि हम राष्ट्रीय जागृति का सबसे बाद में उल्लेख कर रहे हैं तथापि जागृति शब्द से हमारे हृदय में जो सबसे पहले विचार आता है, वह राजनैतिक जागृति का ही है। राजनैतिक जागृति का साधारण अभिप्राय यह है कि प्रजा अपने राजनैतिक अधिकारों को अनुभव करे और उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करे। राजनैतिक जागृति के लम्बे इतिहास में हमें जाने की जरूरत नहीं। इतना ही कहना काफी है कि इंग्लैण्ड में बहुत पहले ही राजा और प्रजा में राजनैतिक अधिकारों के लिए संघर्ष शुरू हो गया था। १२१५ ई० में मैगनाचार्टा पर हस्ताक्षर किये गये और इसके अनुसार राजा ने प्रजा के अधिकार मानने और सिर्फ अपनी इच्छा से उनकी सम्पत्ति जब्त न करने का वचन दिया। इसके बाद शनैः शनैः इंग्लैण्ड में राजा और प्रजा में जो संघर्ष हुआ, उसका परिणाम यह हुआ कि शासनाधिकार राजा के हाथ से छिन कर प्रजा के हाथ में आ गया और आज वहां प्रजातंत्र शासन कायम है। यही हाल दूसरे अनेक देशों में हुआ। फ्रांस में तीन क्रान्तियाँ हुई। राजाओं के सिर काट डाले गये और हज़ारों सैनिक व प्रजा के आदमी मारे गये। तब जाकर कहीं प्रजा के हाथ में अधिकार आये। इन अधिकारों का

स्वरूप क्या है, इस पर हम विस्तार से शासनपद्धति के अध्याय मे विचार कर आये हैं। यूरोपियन देशों में ही नहीं, एशियाई देशों मे भी ऐसी राजनैतिक क्रान्तियाँ हुई हैं। डा० सनयात सेन के महान् नेतृत्व मे चीन ने मंचू शासन का अन्त कर दिया और प्रजातंत्र शासन की स्थापना की। कुछ ही समय हुआ कि स्याम मे रक्तहीन क्रान्ति हुई थी और प्रजा ने बहुत से अधिकार प्राप्त कर लिये।

स्वाधीनता आन्दोलन—परन्तु राजनीतिक क्रान्ति का एक दूसरा रूप भी है। यद्यपि दोनों का आधार एक ही है—प्रजा के हाथ मे शासन सूत्र, लेकिन परिस्थिति भेद से दोनों का बाह्य रूप कुछ भिन्न हो गया है। हम साम्राज्यवाद के प्रकरण मे बता चुके हैं कि किस तरह यूरोपियन राष्ट्रों ने अपने अपने साम्राज्य कायम किये और किस तरह यूरोप विशाल एशिया की छाती पर जम कर बैठ गया। विदेशी शासन के विरुद्ध शुरू में थोड़ा बहुत संघर्ष होने के बाद शान्ति भी आ गई थी, परन्तु पश्चिमी स्वतंत्र देशों के संघर्ष, और विदेशी शासन की बुराइयों के गहरे अनुभव ने पराधीन राष्ट्रों मे भी उत्तरदायी शासन प्राप्त करने की भावना पैदा की। कुछ ही समय मे इसका स्वरूप स्वराज्य प्राप्त करने का हो गया। २० वीं सदी के प्रारंभ में हम देखते हैं कि एशिया के विभिन्न पराधीन देशों में स्वाधीनता आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। इससे बहुत पहले अमेरिका भी इंग्लैण्ड से लड़कर स्वाधीन हो चुका था। देशप्रेम और राष्ट्रीयता का प्रवाह इतने जोरों से उमड़ा कि बहुत से देशों के इतिहास पलट गये। रूस-जापान युद्ध मे रूस के पराजय ने एशियाई लोगों के दिलों से यूरोप का डर दूर

कर उनमे आत्मविश्वास का संचार कर दिया। बस, समस्त एशियाई देश अपनी अपनी मुक्ति के लिए खड़े हो गये। जिस प्रकार पूंजीवाद की औषधि साम्यवाद है, उसी प्रकार साम्राज्यवाद की औषधि राष्ट्रवाद है।

भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि प्रान्तीय स्वराज्य एक अंश तक मिल गया है और पूर्ण स्वराज्य के लिए भारत का आन्दोलन जारी है। फारस के राष्ट्रीय दल ने रिज़ा-शाह पहलवी के नेतृत्व मे नई सरकार स्थापित की और यूरोपीय परतंत्रता की जंजीर को तोड़ डालने का निश्चय किया। आज वह पूर्ण स्वतंत्र राष्ट्र है। सौदी अरब के इब्न सऊद ने अंग्रेजों के विरोधी पक्ष मे होते हुए भी सफलता प्राप्त की और आज वह एक शक्ति बन गया है। अफ़ग़ानिस्तान ने रूस से मिल जाने का भय दिखला कर अपने को ब्रिटिश प्रभाव से मुक्त कर लिया। चीन ने ब्रिटिश प्रभाव को नष्ट करने के लिए संघर्ष किया और पिछले चार साल से जापान के पंजे से छूटने के लिए वह जीवनमरण का युद्ध कर रहा है। सीरिया मरोको और हिन्द चीन मे भी फ्रांसीसी सरकार के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा है। सब देशो की राजनैतिक जागृति का उन देशों के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ा। सब कुसंस्कार दूर हो गये और आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने के लिए व्यापार और कल कारखानों की जोरों से तरक्की हुई। शिक्षा का प्रचार एकदम बढ़ गया। सरकारें प्रजाहित के प्रत्येक काम मे दिलचस्पी लेने लगीं।

अपनी भाषा की रक्षा—जब कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों को परा-

धीन करता है, तब वह उसकी भाषा को भी नष्ट कर देता है। इसी की प्रतिक्रियास्वरूप जब किसी राष्ट्र मे स्वाधीनता, आन्दोलन शुरू होता है, तब अपनी भाषा और संस्कृति से प्रेम भी उस राष्ट्रीयता का एक अंग हो जाता है। भारतीय कांग्रेस ने पहले अंग्रेज़ी भाषा को स्वीकार किया था, पर महात्मा गांधी के समय से उसके विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और शनैः शनैः अंग्रेज़ी का ज़ोर कम हो रहा है और राष्ट्र-भाषा का आन्दोलन प्रबल हो रहा है।

पिछले कुछ वर्षों से अनेक राष्ट्रों मे यह प्रवृत्ति चली है कि विदेशी भाषा के नामों का त्याग करके अपनी भाषा के ही नाम प्रयुक्त किये जावें। इस दिशा मे टर्की के कमाल अतातुर्क ने सबसे पहला कदम रखा। टर्की का धर्म इस्लाम है, वहाँ अरब संस्कृति, अरब लिपि, अरब भाषा, अरब रहन-सहन का प्रचार बहुत अधिक था। कमालपाशा ने धर्म और विदेशी संस्कृति मे अन्तर किया। उसने इस्लाम और उसकी धार्मिक प्रथाओं को वैसे ही क़ायम रखा, लेकिन उसमे से अरबीपना निकाल दिया। नमाज़ और अज़ां के तुर्की अनुवाद कर दिये गये, अरब पहरावा और अरब रिवाज बदल दिये गये, अरब लिपि तक का ख़ातमा कर दिया और अन्त में साधारण मनुष्यों के नाम भी अरब न रख कर तुर्क नाम रखने का आन्दोलन किया। मुस्तफ़ा कमाल पाशा 'कमाल अतातुर्क' हो गये और इस्मत पाशा इनेनू हो गये।

यह प्रवृत्ति अन्य भी अनेक देशों मे पैदा हुई। आयर्लैण्ड मे अंग्रेज़ी का राज्य था, उनके मुल्क तक का नाम आयर्लैण्ड था,

लेकिन अब मुल्क का नाम आयर हो गया है, लुप्त आयर भाषा का नये सिरे से प्रचार करके डि वेलरा ने उसे राजभाषा बना दिया गया है। पर्शिया के शाह रजाशाह पहलवी ने भी घोषणा कर दी है कि अब से इस देश का नाम पर्शिया या फ़ारस न होकर ईरान होगा। स्याम के नरेश ने भी स्याम देश की जगह थाइलैण्ड नाम रख दिया है।

——.o.——

नवाँ अध्याय

विज्ञान की यह दुनिया

लोक-कल्याण का विज्ञान

इस संसार को बिलकुल बदल देने का मुख्य श्रेय विज्ञान को है। पिछले अध्याय में हम ने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्रान्तियों की चर्चा की है। लेकिन इनके मूल मे वैज्ञानिक क्रान्ति थी। विज्ञान की सफलता ने ही मानव जाति के हृदय में विचार स्वातंत्र्य और तर्क की भावना पैदा की, जिसका परिणाम आज विविध जागृतियों के रूप मे हम देखते हैं।

विज्ञान के मोटे तौर पर हम दो तीन भाग कर सकते हैं। एक सैद्धान्तिक और विचारात्मक, दूसरा व्यावहारिक विज्ञान और तीसरा चिकित्सा, मनोविज्ञान आदि।

आज मनुष्य के व्यवहार मे जो चीज़ें आ रही हैं, उनमे से अधिकांश के साथ विज्ञान का कुछ न कुछ संबंध है। हम यात्रा करते है, तो व्यावहारिक विज्ञान के साधनों से। उन्हीं के द्वारा एक दूसरे के समाचार जानते हैं। हमारा भोजन भी उन्हीं के ज़रिये एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाया जाता है। जो अख़बार हम पढ़ते हैं, हमारी

पुस्तकें और हमारे लिखने के कागज तथा कलम वैज्ञानिक उपा
के विना तैयार नहीं हो सकते। वैज्ञानिकों के आविष्कार
वहुत चमत्कारपूर्ण हैं और मनुष्य को आश्चर्य में डाल देते हैं
रेलगाड़ी, हवाई जहाज, टेलिफोन, रेडियो आदि आविष्कारों को दे
कर मनुष्य की वुद्धि चकरा जाती है। हम नीचे संक्षेप में कुछ
आविष्कारों और उनके रहस्यों का परिचय देते हैं।

रेलगाड़ी

रेलगाड़ी का आविष्कार, यद्यपि कुछ पुराना पड गया है, तथापि
आज भी इसका महत्व कम नहीं हुआ। देश के एक कोने से दूसरे कोने
तक व्यापारिक सामान और सवारियाँ पहुँचाने का सव से अधिक
सुविधाजनक साधन यही है।

यदि हम एक हंडिया मे पानी खौलाएं और उसके ऊपर ढक्कन रख
दें तो भाफ़ के जोर से ढक्कन ऊपर उठता और फिर गिरता है। पानी
की भाफ के इस गुण के आधार पर ही कारखानों के इंजन काम
करते है तथा रेलगाडी का इंजन चलता है। पानी की भाफ़ से
कारखाना चलाने का आविष्कार सव से पहले जेम्स वाट ने १७७७ ई०
मे वरमिंघम मे किया था। जेम्स वाट एक नटखट लडका था। वह
अपने घर मे चूल्हे पर रखी हुई चाय की केतली के ढक्कन को उछलते
हुए देखा करता था। तभी से उसके मन मे समा गया था कि अवश्य
पानी की भाफ के वल से वड़े वड़े काम हो सकते है और आगे चल
कर उसने सफलतापूर्वक इंजन तैयार किया।

जेम्स वाट के इंजन की रचना के आधार पर जार्ज स्टीफनसन ने

पटरी पर चलने वाला इंजन बनाया। जार्ज स्टीफनसन एक निर्धन कुल में पैदा हुआ था। इसका पिता एक कोयले की खान में मज़दूरी करता था, पीछे से वह भी कोयले की खान में मजदूरी करने लगा। कोयले की खान मे पानी खींचने के लिए एक इंजन लगा हुआ था। एक बार यह इंजन बिगड़ गया। स्टीफनसन ने बहुत परिश्रम करके इस इंजन को सुधार दिया। इससे उसे इंजन की रचना का पूरा ज्ञान हो गया। उन दिनों खान मे से कोयला बाहर लाने के लिए घोड़ा-गाड़ियाँ उपयोग मे लाई जाती थीं। स्टीफनसन ने कोयला ढोने के लिए एक एंजिन बनाया जो कि पटरी पर चलता था। सन १८२९ में जार्ज स्टीफनसन को सर्वोत्तम इंजन बनाने पर ५०० पौं० इनाम मिला था।

रेलगाड़ी के इंजन मे ऊपर के गोल कोठे मे पानी गरम होता है। इसकी भाप नल में से गुजरती हुई पहिए के सामने बेलनाकार बरतन मे एक तरफ से घुसती है। यह भाप इस बरतन मे लगी हुई डाट को आगे धकेलती है, फिर भाप इसी बरतन में पीछे से आती है। इससे वह डाट पीछे जाता है। इस प्रकार डाट आगे पीछे चलता रहता है। इसके साथ लगी हुई लोहे की छड़ इंजन के पहिये को चलाती है। रेलगाड़ी के इंजन के पास जाकर हम इस क्रिया को अच्छी तरह देख सकते है।

हवाई जहाज़

मनुष्य जाति को आकाश मे उड़ने की महत्वकांक्षा बहुत समय से रही है। वैज्ञानिकों ने समय समय पर इस के लिए यत्न किया। पहले

पहल गुब्बारे बनाये गये। इन मे उद्रजन या हीलियम से भरे हुए थैले होते थे। इनके नीचे आदमियों के बैठने के लिए कोठा लटकता रहता था। उद्रजन हवा से बहुत हलकी होती है, इसलिए ये गुब्बारे हवा मे तैरते रहते थे। इन मे बड़ा दोष यह था कि यह हवा के प्रवाह के साथ चलते थे। अपनी इच्छानुसार इनकी दिशा मोड़ना कठिन था। कभी कभी ये उतरते उतरते पहाड़ों पर या समुद्र मे जा उतरते थे जिससे कि उड़ाने वालों की जान जोखिम मे रहती थी। इनकी चाल भी बहुत कम थी।

इनके बाद इन गुब्बारों मे कई प्रकार के सुधार किये गये। इनकी चाल बढ़ाने के लिए इनमे पेट्रोल के इंजन लगाये गये और दिशा बदलने के लिए पतवार लगाई गई। इससे इनकी चाल तो कुछ बढ़ गई, परन्तु इंजन का भार उठाने के लिए गैस के थैलों की संख्या बहुत बढानी पड़ गई। इससे गुब्बारों का आकार बहुत बढ़ गया और वे खर्चीले भी हो गये।

आजकल जो हवाई जहाज हम देखते हैं, उनकी बनावट उन गुब्बारों से बिलकुल भिन्न है। यह गुब्बारों की तरह वायु से हलके नहीं होते। ये धातु के बने होते हैं। इनके चलाने के लिए इनके आगे दो फलकों वाला पंखा लगा होता है। शहरों मे जिस प्रकार बिजली के पंखों के फलके एक तरफ से मुड़े हुए होते हैं, वैसा ही हवाई जहाज का पंखा होता है। हवाई जहाज के अन्दर एक पेट्रोल का इंजन लगा होता है। यह इंजन इस पंखे को बहुत वेग से घुमाता है। यह पंखा प्रायः एक मिनट मे एक हजार वार घूमता है। जिस प्रकार पानी मे

चलने वाली नाव के चप्पू पानी को काटते हैं और नाव चलती है, उसी प्रकार इन पंखों के फलके बहुत वेग से हवा को काटते हैं। इससे हवाई जहाज़ तेज़ी से चलता है। हवाई जहाज़ को आकाश में उड़ाने के लिए हवाई जहाज़ के पंख लगे होते है। जहाज़ के आगे चलने पर पंखों के नीचे वायु का दबाव पड़ता है। यह दबाव हवाई जहाज़ को ऊपर उड़ाता है। हवाई जहाज़ का उड़ाना पतंग के उड़ने के सदृश होता है। तुमने देखा होगा कि सब पक्षियों के पीछे पूँछ होती है। हवाई जहाज़ के पीछे भी पूँछ होती है। इसे नीचे ऊपर करके हवाई जहाज को ऊपर चढ़ा सकते हैं और नीचे उतार सकते हैं। दिशा बदलने के लिए पूँछ के ऊपर नाव जैसी पतवार लगी होती है।

नई प्रकार के हवाई जहाज़ का आविष्कार करने मे बहुत से मनुष्यो का हाथ है, परन्तु इसके बनाने का सबसे अधिक श्रेय अमरीकानिवासी ऑरविल राईट और विलबर राईट नाम के दो भाइयों को है। इन्हें राईट बन्धु कहा जाता है। राइट बन्धु साईकल की दुकान करते थे और दुकान से कमाया हुआ पैसा और अपना खाली समय हवाई जहाज़ के प्रयोग में लगाते थे। अपना समय और धन वैज्ञानिक उन्नति के लिए बलि चढ़ाने के उद्देश्य से ही राईट बन्धुओं ने अपना विवाह नहीं किया। बहुत वार आशा और निराशा के घोर संग्रामों के बाद सात वर्ष तक एकान्त में निरन्तर परिश्रम करके १९०३ मे ये लोग हवाई जहाज़ को जनता के सम्मुख रख सके। सबसे प्रथम हवाई जहाज़ एक उड़ान मे २४ मील तक उड़ सकता था।

हवाई जहाज़ के आविष्कार से आवागमन मे बहुत सुविधा हो गई है। यह दो-तीन सौ मील प्रतिघंटा की चाल से उड़ सकते हैं। इसके लिए किसी प्रकार की सड़क या पटरी की जरूरत नहीं। पहाड़ों की चोटियों और समुद्र की लहरों और बड़े बड़े रेगिस्तानों को हवाई जहाज पर बैठ कर आसानी से पार किया जा सकता है। विदेशों मे डाक जल्दी पहुँचाने मे हवाई जहाज से बड़ी सहायता मिली है। हिन्दुस्तान से इंगलैण्ड तक पहुँचने मे पहले १५-२० दिन लगते थे। अब यह सफ़र ४-५ दिन मे तय किया जा सकता है। लड़ाइयों मे शत्रु की किलाबन्दी मालूम करने और उन पर बम बरसाने मे भी हवाई जहाज बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। आजकल के युद्धों मे मुख्य कार्य हवाई जहाजों का ही होता है।

रौकेटशिप

आतिशबाजी के परीक्षण को देखकर वैज्ञानिकों ने रौकेटशिप का एक नया आविष्कार किया है। आतिशबाजी मे मसाले के विस्फोट से बाँस या लकड़ी का एक टुकड़ा ही क्षण मे सैकड़ों गज की दूरी पर जा पहुँचता है और विस्फोट के समाप्त होते ही अपने बोझ के कारण वह पृथ्वी पर गिर पड़ता है। वैज्ञानिकों ने सोचा कि यदि एक छोटी सी आतिशबाजी मे इतनी विस्फोटक शक्ति है, तो बड़ी भारी शक्तिशाली विस्फोटक शक्ति एक ऐसे कमरे को भी दूर ले जा सकती है, जिसमे ५-७ आदमी बैठे हुए हों। बस, दिमाग मे विचार आने की देर थी, परीक्षण शुरू होने लगे। एक मामूली सा वायुयान लिया गया और उसमे बहुत सा भार लाद कर आतिशबाजियों मे आग लगा दी

गई और वह एक दम आस्मान मे जा पहुँचा। इसकी गति इतनी तेज होती है कि वैज्ञानिकों का अनुमान है कि जब इसमे पूर्ण सफलता प्राप्त हो जायेगी तब मनुष्य दिल्ली मे सवेरे का काम निभा कर दोपहर का भोजन जापान कर सकेगा। वहाँ से वह अमेरिका होता हुआ रात को वापस दिल्ली आकर ६-१० बजे सो भी सकेगा। वैज्ञानिक तो अब यह स्वप्न लेने लगे है कि रोकेट की सहायता से चाँद तक भी पहुँचा जा सकता है। जहां रोकेट के ये उपयोग सोचे जा रहे हैं, वहाँ उसका भयंकर दुरुपयोग—मानव जाति के संहार की भी कल्पना मनुष्य के रूप मे युद्धविशारद पशु करने लगे है। ऐसे रौकेटों मे विषैले बम आदि भर कर एक निश्चित स्थान को उद्देश्य में रख कर फैंके जांवगे, जिससे वह ठीक स्थान पर शत्रु सेनाओं को भस्म कर दे। १००-१५० मील दूर मार करने वाले गोले इसी आधार पर बनाये भी गये है।

छापाखाना

प्राचीन काल में पुस्तके हाथ से लिखी जाती थीं। उस समय पुस्तकें बहुत कीमती होती थी और पढ़ाई का काम मुख्यतया मौखिक ही हुआ करता था। छपाई का काम सबसे पहले चीन मे आज से लगभग एक हजार वर्ष पहले आरम्भ हुआ था। वे लोग लकड़ी के तख्तों पर अक्षर खोद कर इन तख्तों पर स्याही लगाते थे और फिर कागज़ पर छाप लेते थे। योरुप वालों ने चीन से यह काम सीखा और वे भी लकड़ी के तख्तों से छापने का काम करते रहे।

आजकल के ढंग की छपाई का आविष्कार सब से पहले जर्मनी-निवासी गटनबर्ग ने किया। उसने एक एक अक्षर के अलग लकड़ी के

टाईप बनाए । उसके बाद लकड़ी की जगह सीसे के टाईप ढाल कर बनाए जाने लगे।

यदि हम किसी छापेखाने मे जाकर वहाँ का काम देखे तो हम आसानी से छापने का तरीका समझ सकते हैं। जिस प्रकार साड़ियों पर फूल छापने के लिए लकड़ी के ठप्पे होते है, उसी प्रकार छापाखाने मे प्रत्येक अक्षर को छापने के लिए अलग अलग सीसे के ठप्पे होते हैं। इन ठप्पों को टाईप कहते हैं। टाइप मे अक्षर उलटा बना होता है। और छापने पर सीधा पड़ जाता है। एक एक अक्षर का टाइप अलग अलग अपने अपने निश्चित खाने मे पड़ा होता है। जो कुछ छापना होता है, उसके अनुसार कम्पोजीटर एक अक्षर उठाकर लाइन मे रखता चला जाता है। इसे कम्पोज करना कहते हैं। लाइन मिला कर पूरा पृष्ठ बन जाता है। इसे एक चौकठे मे कस कर इस पर वह एक बेलन घुमाता है। इस बेलन पर स्याही लगी होती है। और सब अक्षरों पर स्याही लग जाती है। अब इस पर एक कागज रख कर ऊपर से गद्दीदार लोहे के तख्ते से दबाने से कागज पर अक्षर छप जाते हैं। बड़े प्रेसों मे छपाई का काम मशीन से होता है। बहुत से पृष्ठ एक साथ चौकठे मे कस कर मशीन मे जड़ देते हैं। मशीन चलाने पर अपने आप ही अक्षरों पर स्याहीवाला रोलर फिर जाता है और कागज़ रख देने पर दबाव से छप जाता है। छापने की विविध मशीनों मे एक घंटे में एक से हजार प्रतियाँ छप सकती हैं।

आज कल प्रेस के काम मे बड़ी उन्नति हो चुकी है। हिन्दुस्तान टाइम्स और स्टेट्समैन जैसे समाचार-पत्र, जिनकी प्रतिदिन पचास-

पचास हज़ार प्रतियाँ छपती हैं, इन मामूली मशीनों से नहीं छप सकते। इन अख़बारों को कम्पोज़ करने के लिए भी एक मशीन होती है जिसे लाइनोटाइप कहते हैं। मशीन में सामने की ओर टाइप राइटर की तरह बहुत से बटन लगे होते हैं। जिस बटन को दबाया जाता है, उस पर लिखे हुए अक्षर का नया टाइप ढल कर अपने आप कम्पोज़ होता जाता है। बारी बारी से बटन दबाने से अपने आप ही कम्पोज़ीटर का काम होता जाता है। एक मशीन एक दर्जन कम्पोज़ीटरों के बराबर काम करती है। कम्पोज़ हो जाने के बाद इस के छापने की भी ख़ास मशीन होती है। यह मशीन देखने में पूरा पूरा कारख़ाना होता है। इस में अनगिनत कल पुर्ज़े होते हैं। इसमें सब काम अपने आप ही होता है। एक तरफ़ कागज़ की बड़ी रील रखी होती है। इसमें से कागज़ खुल कर मशीन में जाता और दूसरी ओर से छप कर, कटकर तह किया हुआ अख़बार निकलता जाता है। रोटरी मशीनें ४५ से ७२ हज़ार प्रतियाँ तक एक घण्टे में छापती हैं।

टेलीफ़ोन और टेलिविज़न

टेलीफोन का आविष्कार अमरीकानिवासी ग्राहम बेल ने किया था। ग्राहम बेल एक धनी पुरुष के घर में उनके गूंगे व बहरे पुत्र को पढ़ा कर निर्वाह करता था। उसको पढ़ाते हुए वह इस परिणाम पर पहुंचा कि जब हम बोलते हैं, तब वायु में कम्पन पैदा होते हैं। यह कम्पन कान के अन्दर पर्दे पर चोट देते हैं, तो शब्द पहुंचता है। इसी नियम पर उसने टेलीफ़ोन का निर्माण किया।

टेलीफोन मे जहाँ हम बोलते हैं, उस के सामने एक कार्बन का पत्रा लगा रहता है। इसे डायाफ्राम कहते हैं। इस के पीछे कार्बन या कोयले का चूरा भरा होता है। कोयले के चूरे मे से बिजली की धारा गुजर रही होती है। यह बिजली तार द्वारा सुनने वाले आदमी के टेलीफोन मे गुजरती है। टेलीफोन पर बोलने से वायु मे कम्पनों की चोटों का प्रभाव कार्बन पर पड़ता है। इससे बिजली की धारा की ताकत बढ़ती और घटती रहती है। सुनने वाले की टेलीफोन मे एक लोहे का पत्रा होता है। इसके पीछे बिजली का चुम्बक जड़ा हुआ होता है। धारा की ताकत के बढ़ने घटने से चुम्बक की ताकत भी बढ़ती और घटती है। इसका प्रभाव यह होता है कि चुम्बक के आगे लगा हुआ लोहे का पत्रा आगे पीछे काँपता है और वायु को चोटे देता है। इस प्रकार टेलीफोन मे बोलने से जिस प्रकार की चोटे वायु को मिली, उसी प्रकार की चोटे सुनने वाले को अपनी टेलीफोन पर वायु से मिलती हैं। परिणाम यह होता है कि बिलकुल वही शब्द सुनाई देता है।

टेलीफोन इस ज़माने का एक आश्चर्यजनक आविष्कार है। सैंकड़ों मील पर बैठे हुए हम अपने मित्रों से उसी प्रकार बातें कर सकते हैं, मानो कि आमने-सामने बैठे हुए हों। व्यापारियों के लिए टेलीफोन से बड़ी सुविधा हो गयी है। दुकान पर बैठे हुए अपने गाहकों से तथा दूसरे व्यापारियों से बातचीत कर सकते हैं। आज कल टेलीफोन द्वारा लाखों रुपयों के लेन-देन घर बैठे ही होते रहते हैं।

टेलीफोन के प्रयोग से अभी वैज्ञानिकों को सन्तोष नहीं हुआ। वैज्ञानिकों ने अब एक ऐसा यन्त्र बनाया है, जिससे सैंकड़ों मील की

दूरी पर बैठे हुए आदमी को जहाँ बोलने की आवाज़ साफ़ सुनाई देती है, उसके साथ ही बोलने वाले का चित्र भी सामने दिखाई देता है। इस यन्त्र को टेलीविज़न कहते हैं। इसकी सहायता से दूर दूर देशों के समाचार और वहां के फोटो कुछ मिनटों मे ही हमारे देश मे पहुँच जाते है। अखबारों को वहाँ के समाचार और चित्र प्राप्त करने मे बड़ी सुविधा हो गई है।

रेडियो या बेतार

आजकल बड़े शहरों मे रेडियो का प्रचार बढ़ता जा रहा है। रेडियो से हम घर बैठे सारी दुनिया की खबरें सुन सकते हैं। टेलीफोन मे बिजली के गुजरने के लिए खम्भों पर तारें लगी होती हैं, परन्तु रेडियों से बाते सुनने के लिए तार की कोई ज़रूरत नही होती, घर मे एक रेडियो रखा जाता है। घर के ऊपर दो खम्भों के ऊपर के सिरों पर तार लगाई जाती है। यह तार आकाश मे से बिजली की लहरों को पकड़ती है। इसे एरियल कहते है। इस तार का एक सिरा कमरे के अन्दर रखे हुए रेडियो मे लगा रहता है।

जो कोई चाहे, अपने घर मे रेडियो रख कर दुनिया भर की बातें सुन तो सकता है, परन्तु वह अपनी बात दूसरों को सुना नहीं सकता। कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, लाहौर आदि शहरों मे सरकार की ओर से ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन होते हैं। इन स्थानों पर देश विदेश के समाचार साधारण जीवनोपयोगी बाते तथा गायन आदि के प्रोग्राम रखे जाते हैं। संसार के किसी भी कोने मे जिसके पास रेडियो हो, वह इन प्रोग्रामों को सुन सकता है।

ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन मे एक यन्त्र होता है। इसे माईक्रोफोन कहते है। माईक्रोफोन की रचना टेलीफोन के बोलने वाले भाग से मिलती जुलती होती है। इसमे बिजली की धारा गुजरती रहती है। गायक माइक्रोफोन के सामने मुँह करके गाता है। इससे वायु मे शब्द की लहरे बिजली की लहरों का रूप धारण कर लेती हैं। यह लहरें तांबे की तार मे से गुजरती हुई एक और यन्त्र में से गुजरती हैं, जो कि इन लहरों की शक्ति को हजारों गुना तेज कर देता है। यहाँ से यह ब्राडकास्टिंग स्टेशन के एरियल मे जाती हैं। यह एरियल बहुत ऊंचे ऊंचे होते है। एरियल इन लहरों को आकाश मे फैला देता है। एरियल से छूटी हुई लहरें सारे भूमंडल में बड़े वेग से फैल जाती हैं। इनकी चाल बहुत तेज़ है, एक सैकिंड मे सात बार सारे भूमण्डल के चारों ओर चक्कर लगा सकती है।

हमारे घर के रेडियो का एरियल इन लहरों को पकड़ कर इन बिजली की लहरों को फिर शब्द की लहरों का रूप देकर वायु मे छोड़ता है और हम उस गायन को सुन सकते हैं। हमारा रेडियो हमारी इच्छानुसार हमें कलकत्ता, बम्बई, लन्दन, जर्मनी, फ्रांस या दुनियाँ के किसी भी देश के प्रोग्राम सुना सकता है। हरेक ब्राडकास्टिंग स्टेशन की बिजली की लहरों की लम्बाई अलग अलग होती हैं। हमारे रेडियों मे एक सुई लगी रहती है। इसे घुमाने से हमारा रेडियो अमुक लम्बाई की लहरों को पकड़ने लगता है। इससे हम अपने अभीष्ट स्थान के प्रोग्राम सुन पाते हैं।

बिना तार के बातें करने का आविष्कार इटलीनिवासी मारकोनी

ने किया था। यह भेंट देकर मारकोनी ने संसार का महान् उपकार किया है। आजकल जहाज़ों और हवाई जहाज़ों में भी बेतार का प्रबन्ध होता है। जब किसी जहाज़ पर कोई आपत्ति आती है तो वह बेतार द्वारा अपने समाचार भेजता रहता है। इससे उसके आस पास के दूसरे जहाज़ उसकी सहायता के लिए तुरन्त पहुँच जाते हैं।

सिनेमा

सिनेमा वैज्ञानिक युग का एक आश्चर्यजनक आविष्कार है। पहली बार सिनेमा के चित्र पर चलते और बोलते हुए चित्रों को देख कर आदमी वास्तव मे ही स्तब्ध रह जाता है। आजकल सब बड़े शहरों में सिनेमा घर बन चुके है।

सिनेमा में दो विशेषताएँ होती हैं। एक तो चित्रों का चलना फिरना और दूसरा चित्रों का बोलना। पहले हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि सिनेमा चित्र किस प्रकार चलते हैं। हमारी आँख जब किसी चीज़ को देखती है, तो उस वस्तु के हट जाने के बाद भी आध सैकिंड तक उसका चित्र हमारी आँख में बना रहता है। यदि हमारा मित्र एक चिनगारी वाली लकड़ी को पकड़ कर वेग से गोलाकार घुमावे तो हमे चिनगारी का पूरा गोला दीखता है, क्योंकि चिनगारी एक स्थान से हट कर आगे चली जाती है, परन्तु उसका चित्र हमारी आँखों में कुछ देर तक रह जाता है। इस प्रकार चिनगारी की सब अवस्थाओं का चित्र एक साथ आँख मे रहने के कारण हमे पूरा चमकता हुआ गोला दीखता है। सिनेमा में चित्रों

के चलने फिरने का यही कारण होता है। वास्तव मे सिनेमा के पर्दे पर आदमी के चित्र चल नहीं रहे होते, परन्तु एक के बाद एक करके एक मिनट मे अलग अवस्था के सैंकड़ों चित्र लैम्प द्वारा डाले जाते हैं। हमारी आँखों को यह प्रत्येक चित्र अलग अलग नहीं दीखते, परन्तु चित्रों का एक सिलसिला मालूम पड़ता है। इसी कारण हमें चित्र चलते फिरते हुए प्रतीत होते हैं।

सिनेमा के चित्र फोटोग्राफ़ी के केमरे द्वारा तैयार किये जाते हैं। सिनेमा के पात्र जब अपना प्रोग्राम कर रहे होते हैं, तो इस कैमरे से उनके फोटो एक लम्बी सी लिपटती हुई रील पर एक सैकिंड मे १६ से २० तक एक के बाद एक करके अपने आप ही उतरते जाते हैं। इसी रील को फिल्म कहते हैं। एक फिल्म मे लगभग १६००० छोटे छोटे चित्र होते हैं। इस फिल्म को सिनेमाघर के खास प्रकार के लैम्प मे लगाते हैं। लैम्प से यह चित्र बड़े होकर पर्दे पर पड़ते हैं। यह फिल्म एक तरफ से खुल कर लैम्प के सामने गुजरती हुई दूसरी ओर लिपटती जाती है। हर एक चित्र बिलकुल थोड़ी देर के लिए लैम्प के सामने ठहरता है। दर्शक को एक चित्र के हटने और दूसरे चित्र के आने का भान नहीं होता, परन्तु एक ही ताँता प्रतीत होता है।

सिनेमा चित्रों के बोलने का वही ढंग होता है, जो कि ग्रामोफोन का होता है। इस मे थाली की तरह के रिकार्ड नही होते, परन्तु ग्रामोफोन जैसी सुई चलती हुई फिल्म के साथ एक किनारे पर पहले से तैयार की हुई लकीर पर रगड़ खाती है। इससे शब्द पैदा होता है। यह लकीर भी फोटो लेने के साथ खुलती जाती है।

धार्मिक फिल्मों से जनता को बहुत लाभ होता है। उन्हें शिक्षाप्रद तथा दैनिक जीवन में उपयोगी बातों का ज्ञान होता है। हिन्दुस्तान में सिनेमा से हिन्दी का प्रचार बहुत बढ़ गया।

एक्सरेज़

सन् १९३५ में प्रो० रान्टजन अपनी प्रयोगशाला में बिजली के कई परीक्षणों में मग्न थे। उन्होंने एक बन्द काच की नली के अन्दर आमने सामने के सिरों के साथ प्लाटिनम के पत्ते लगाए। इस नली में से लगभग सारी वायु निकाल दी गई थी। इन दोनों पत्रों के साथ बिजली की बैटरी जोड़ने पर उन्होंने देखा कि ट्यूब के अन्दर एक पत्ते से दूसरे पत्ते तक बिजली के कण दौड़ रहे हैं। इन बिजली के कणों की धारा में उन्होंने एक प्लाटिनम की थाली टेढ़ी करके रख दी। इस बिजली की वह धारा नली के बाहर छूटने लगी। रान्टजन ने किरणों के आगे एक गत्ता रखा तो उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि यह किरणें गत्ते को पार कर गईं, फिर उन्होंने अपना हाथ इन किरणों के सामने रख दिया। उन्होंने देखा कि उनके हाथ की केवल हड्डियाँ ही दीख रही हैं। पहले तो वे घबराए, कि शायद इन नई प्रकार की किरणों से उनका हाथ जल गया है, परन्तु बाहर जाकर उन्हें यह देख कर सन्तोष हुआ कि उनका हाथ सही सलामत है। उन्होंने ऐसी किरणों का आविष्कार कर लिया था, जो कि मांस, कपड़ा, चमड़ा आदि नरम वस्तुओं को पार कर जाती हैं और धातुओं, हड्डियों तथा अन्य वस्तुओं को पार नहीं कर सकतीं। इन किरणों का नाम 'एक्सरेज' रक्खा गया।

'ऐक्सरेज' का आविष्कार डाक्टरों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। जब किसी आदमी के शरीर मे कोई बन्दूक की गोली या कोई और कठोर पदार्थ घुस जाय अथवा कोई बच्चा पैसा निगल जाय और उसका पता न लगे तो उस के शरीर मे से ऐक्सरेज गुजार कर फोटो लिया जाता है। इससे उस पदार्थ के ठिकाने का एकदम पता लग जाता है। शरीर के अन्दर की बीमारियों का पता लगाने के लिए इन किरणों की सहायता से अन्दर की नसों की फोटो ली जाती है। और उससे मालूम पड़ जाता है कि शरीर मे किस प्रकार का विकार है।

'ऐक्सरेज' डाल कर असली और नकली हीरों की परख की जाती है। नकली हीरे 'एक्सरेज' द्वारा भेदे जा सकते हैं, परन्तु असली हीरे नहीं भेदे जा सकते।

चुंगी पर काम करने वाले अफसर बाहर से हुए पारसलों पर 'ऐक्सरेज' डाल कर जान लेते हैं कि उन पारसलों मे क्या सामान है।

बिजली के घरेलू उपयोग

हम पिछले पृष्ठों मे टेलीफ़ोन, बेतार टेलीविजन, ऐक्सरेज आदि का वर्णन कर चुके हैं। यह सब यन्त्र बिजली से काम करते हैं। वास्तव मे बीसवी सदी बिजली का युग है। आजकल शायद ही ऐसा कोई यन्त्र होगा, जिसमे बिजली का प्रयोग किसी न किसी रूप मे न होता हो। बड़े शहरों मे बिजली के बल से ट्राम और रेल गाड़ियाँ दौड़ती हैं।

बिजली के इन उपयोगों के अतिरिक्त इस युग में बिजली एक घरेलू उपयोग की चीज बन चुकी है। घर में बिजली के लैम्प जलते

हैं। इन में न मिट्टी के तेल की जरूरत पड़ती है और न दियासलाई ही चाहिए। इस से फेफड़ों को हानि करने वाला धुआं भी नहीं निकलता। घर मे बिजली लगा कर रोटी सेकी जा सकती है और दाल शाक भी पक सकता है, कपड़े धोये जा सकते हैं, झाड़ दिया जा सकता है, बिजली की हजामत करने की मशीन से बहुत आसानी और सफाई से हजामत की जा सकती है। जिस प्रकार नाइयों के पास सिर के बाल काटने की मशीन होती है, उसी प्रकार के बिलकुल छोटे छोटे दाँतों वाली हजामत करने की मशीन होती है। इससे हजामत करने के लिए साबुन, पानी और ब्रश अनावश्यक होता है। सरदियों में बिजली की भट्टियों से कमरे को गरम किया जाता है।

बिजली की सहायता से बहुत प्रकार के रोगों का इलाज किया जाता है। बिजली से इलाज करने के तरीके को विद्युत् चिकित्सा या इलैक्ट्रोपैथी कहते हैं। शहरों के तंग मकानो में जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच सकता, वहाँ बिजली की सहायता से (Ultra violet rays) अलट्रा वायलट रेज पैदा करके उन किरणों को शरीर पर डालते हैं। इन से शरीर में स्फूर्ति आती है।

इन सब या ऐसे आविष्कारों तक ही विज्ञान सीमित नहीं है। इससे भिन्न भिन्न विषयों मे भी मनुष्य के विचार और अन्वेषणशील मस्तिष्क ने दौड़ लगाई है और नयी नयी बातों का पता लगाया है। मनोविज्ञान और शरीर-रचना का परस्पर गहरा सम्बन्ध है, यह कहते हुए अब हमें वैज्ञानिक बताने लगे हैं कि कुछ शारीरिक ग्रन्थियां की जिन्हें अंग्रेजी में ग्लैण्ड कहते हैं, कमी बेशी के कारण मनुष्य

का स्वभाव आलसी, झूठ बोलने या चोरी करने का हो जाता है। यदि इन ग्रन्थियों का अनुपात ठीक हो जाय, तो आधे से अधिक अपराध कम हो जावे। एक ग्लैण्ड के रस निकाले जाने पर वीर और बहादुर योद्धा भी कायर हो सकता है और किसी जरूरी ग्लैण्ड का रस डालने पर दुराचारी भी सदाचारी हो सकता है। बहुत सी बीमारियों के इलाज नये मनोविज्ञान के तरीकों पर किये जा रहे हैं। सन्तान शास्त्र मे भी नये नये परीक्षण किये जा रहे हैं। बिना नर मादा के संयोग के ही बहुत से मेढक पैदा किये गये हैं। अच्छी नसल के पशु पैदा करने के लिए स्वस्थ पुष्ट पशुओं का वीर्य छोटी ट्यूबो मे बन्द किया जाता है और इंजैक्शन द्वारा अच्छी नसल पैदा की जा रही है। हमने पाँचवे अध्याय मे कृत्रिम रासायनिक पदार्थों की चर्चा की है। वह भी विज्ञान की कृपा है। कोयले से भिन्न भिन्न २३ पदार्थ निकाले गये हैं। इनका आपस मे कोई मेल नहीं है। वेजलीन, कई प्रकार के तेल, एस्पीरिन और विविध रंग सब कोयले से तैयार हो रहे हैं। कृषिशास्त्र मे भी बड़े बड़े परीक्षण हो रहे हैं। विभिन्न पौदों के मेल से नये फूल और नये फल तैयार किये जा रहे हैं। कृत्रिम खाद और कृत्रिम वातावरण द्वारा कुछ ही दिनों मे फसले तैयार की जाने लगी हैं। पशुओं का चारा १० दिन में ही तैयार होकर ऊँचे पौदे बनने लगा है। दूसरे भी ऐसे अनेक शास्त्र हैं, जिनसे वैज्ञानिकों ने नये नये रहस्य खोज निकाले हैं। एक वैज्ञानिक ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यह संसार ठीक उसी तरह शनैः शनैः बिखर रहा है, जिस तरह घड़ी की चाबी देने के बाद वह धीरे धीरे बिखरती जाती

है। और भी बीसियों ऐसे नये सिद्धान्त निकले हैं, जिन्हें सुन कर मनुष्य चकित हो जाता है।

लोकविनाशकारी विज्ञान

भौतिक विज्ञान की उन्नति से मनुष्य का लाभ अधिक हुआ है या हानि, इस प्रश्न का उत्तर किसी एक पक्ष में देना तो कठिन है, परन्तु यह प्रत्यक्ष है कि विज्ञान द्वारा हुए लाभ हमारा ध्यान उतनी शीघ्रता और तीव्रता से नहीं खींचते, जितनी कि हानियाँ।

वैज्ञानिकों ने नये नये नर-संहार-कारी साधन खोज निकालने में विज्ञान का इतना अधिक उपयोग किया है कि बहुत-सी बातों पर तो सहसा विश्वास भी नहीं होता। विज्ञान ने नर-संहारक शस्त्रास्त्रों का ऐसा काया-पलट कर डाला है कि अब युद्धों में केवल शारीरिक बल, मानसिक वीरता और सेनाओं की संख्या का कुछ भी मूल्य नहीं रह गया।

युद्ध में वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग होने से पहले तक, लड़ाई केवल सेनाओं में होती थी, नागरिक जनता पर शत्रु-पक्ष के शस्त्रास्त्रों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था, अब तो बीसियों मीलों तक गोला फेंकने वाली तोपों, बम-वर्षक वायुयानों, विषैली गैसों और नाना प्रकार के रोगाणुओं का आविष्कार हो जाने के कारण सौ-सौ वर्ष के बूढ़े और चार चार दिन के बालक तक युद्ध के प्रभाव से नहीं बच सकते।

टैंक—पहले हम स्थल पर प्रयुक्त होने वाले कुछ शस्त्रास्त्रों का परिचय देते हैं। गत (सन् १९१४-१८) युरोपियन महायुद्ध में,

खाइयों मे छिपकर लड़ती हुई सेना का सामना करने के लिये टैंक नामक एक प्रकार की सशस्त्र मोटर-गाडी का आविष्कार किया गया था। इसकी विशेषता यह है कि यह ऊँची नीची कंकरीली पथरीली जमीन में भी चल सकती है। इसका शरीर मोटी लोहे की चादर से ढका रहता है और भीतर बैठे हुए चालक शत्रु पर गोलियाँ बरसाते हुए आगे बढते जाते हैं। दूसरे शब्दों मे इसको हम 'चलता फिरता दुर्ग' कह सकते हैं।

टैंको का सामना करने के लिये टैंक-विरोधी तोपे बनायी गयीं, जिनके गोलों की विशेषता यह है कि वे टैंक की फौलादी चादर को भी छेद कर उसे आगे बढ़ने के अयोग्य बना देते हैं। दूसरा उपाय टैंकों को रोकने का यह किया गया था कि उनके मार्ग मे ऐसी गहरी खाइयाँ खोद दी जायं जिनके दोनों पार्श्व दीवार की तरह सीधे हों। परन्तु जर्मनी ने हलके और भारी कई किस्म के ऐसे टैंक बना लिये हैं जो इन खाइयों से भी नहीं रुकते और इनको रौंदते हुए आगे बढ़ जाते हैं। टैंकों को रोकने के लिए बिजली के जाल भी बिछाये जाते है या जमीन पर बारूदी सुरंगे बिछाई जाती है जो एक दम फट उठती है।

आरम्भ मे टैंका की गति धीमी थी। अब तो उनकी गति भी इतनी तेज हो गयी है कि टैंकों की सेना एक दिन मे अस्सी मील तक तय कर लेती है। ऐसे टैंक भी बनाये गये हैं, जो पानी पर तैर सकते हैं। ये टैंक पानी की बाधा को नहीं मानते।

भीषण तोपें—टैंक तो लड़ाई के मैदान मे ही काम देने वाली वस्तु है, परन्तु लम्बी मार करने वाली तोपे दूरस्थ नगरों और

जहाजों पर भी गोला फेंक सकती हैं। अस्सी मील तक गोला फैंकने वाली तोपे बन चुकी हैं। ये गोले वस्तुतः एक के भीतर दूसरा, दूसरे के भीतर तीसरा और तीसरे के भीतर चौथा, इस प्रकार अनेक गोलों का समूह होते हैं। उनकी रचना ऐसी होती है कि पहला गोला फट कर शेष गोलों में आगे बढ़ने की गति उत्पन्न करता है। पहले गोले से उत्पन्न हुई गति समाप्त होने से पहले ही दूसरा गोला फटकर नयी गति उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार क्रमशः नयी गति प्राप्त करता हुआ गोला बहुत दूर चला जाता है और अपने लक्ष्य तक पहुँच कर विनाश का काम पूरा कर देता है। ऐसे गोले फेंकने वाली तोपों का नाम हाविट्‌ज़र तोप है।

बख्तरबन्द गाड़ियां—लड़ाई में सेनाओं की प्रगति को निर्बाध बनाने के लिये आरमर्ड कारों का अर्थात् बख्तर-बन्द मोटरगाड़ियों का आविष्कार किया गया है। जैसा कि इनके नाम से प्रकट है इन गाड़ियों को साधारण मोटरलारियों से मुख्य विशेषता यह होती है कि ये फौलादी चादर से ढकी रहती हैं, ताकि शत्रु-सेनाओं के अस्त्रों की बौछार मे भी आगे बढ़ सके।

ऊपर के शस्त्रास्त्रों से मिलते जुलते ही अन्य भी कई नये शस्त्रास्त्र बनते जा रहे हैं, परन्तु उनका विस्तृत विवरण अभी तक प्रकट नहीं हुआ। उनके नामों से ही उनका कुछ परिचय मिलता है। यथाः — फाइटिंग फौरट्रेस (लड़ने वाला क़िला) और टारपीडो-टैंक आदि।

टारपीडो—स्थल के समान जल के युद्ध में प्रयोग के लिये भी अनेक विनाशक शस्त्रास्त्र विज्ञान की कृपा से मनुष्य को प्राप्त हुए हैं। इनमें टारपीडो, पनडुब्बी, वायुयान-वाहक आदि नाम तो अब इतने प्रचलित हो चुके हैं कि इनसे बालक तक परिचित हैं।

टारपीडो एक ऐसा गोला है जो पानी में मछली की भाँति आगे बढ़ने का अपना मार्ग आप ही बनाता जाता और शत्रु के जहाज़ अथवा अन्य बाधक वस्तु से टकरा जाने पर फट कर उसका नाश कर देता है।

पनडुब्बी—टारपीडो गोले प्रायः पनडुब्बियों से छोड़े जाते हैं। जैसा कि पनडुब्बी नाम से प्रकट है, यह एक ऐसी छोटी-सी नाव होती है जो पानी के नीचे चलती है। इस मे चिमनी की भाँति एक नली (पेरिस्कोप) लगी रहती है, जिसमें से पनडुब्बी वाले शत्रु के जहाज को देखकर टारपीडो का निशाना साधते हैं। जब पनडुब्बी को ऊपर आना होता है, तब उस की पानी की हौजी खाली कर दी जाती है और वह ऊपर आ जाती है।

पनडुब्बियों को डुबाने के लिये ऐसे गोले छोड़े जाते हैं जो पानी मे गहरा डूब कर चोट करते हैं। इनको अंग्रेजी मे 'डेप्थ-चार्ज' कहते हैं।

बारूदी सुरंगें—समुद्र मे जहाज प्रायः जिन मार्गों से आते जाते हैं, उनको रोकने के लिये अथवा किनारे पर जहाजों को न आने देने के लिये पानी मे ऐसी बारूदी सुरंगें (माइन) बिछा दी जाती हैं जो पानी मे डूबकर भी पानी की सतह से बहुत नीचे नहीं जातीं।

ये सुरंगें एक दूसरे के साथ एक बिजली के तार द्वारा ऐसे गुथी रहती हैं, जैसे माला के फूल धागे द्वारा। इस तार मे उलझने अथवा सुरंगों से टकराने से सुरंग फट जाती और जहाज डूब जाता है। इन सुरंगों की मालाएँ युद्ध-काल मे मीलों तक बिछा दी जाती हैं।

इन को समुद्र मे से साफ़ करना बड़ी जोखिम का काम है और उसके लिये विशेष प्रकार के छोटे जहाज़ होते हैं, जिनका नाम ही 'माइन-स्वीपर' (सुरंग साफ़ करने वाला) रखा गया है।

जर्मनी ने एक नयी प्रकार की सुरंग बनायी थी, जिसे मैगनेटिक माइन अर्थात् चुम्बकी सुरंग कहते थे। यह समुद्र में तैरती रहती थी और इसके चुम्बकी क्षेत्र में जहाज़ आते ही थे, आप से आप ऐसे ही जहाज़ की तरफ़ को चली जाती थी, जैसे लोहे की छोटी सुई चुम्बक की तरफ जाती है और जहाज़ से छूते ही टकरा कर फट जाती तथा जहाज़ को डुबो देती थी। इससे बचने के लिये जहाज़ों के चारों तरफ बिजली के तारों की ऐसी पेटियाँ लपेटी गयी हैं, जो चुम्बकी सुरंगों के चुम्बकी प्रभाव को उदासीन कर दे। इसके अतिरिक्त शब्द-भेदी सुरङ्गे भी बनी है।

टारपीडो का वर्णन पहले कर चुके हैं। कुछ समय पूर्व तक टार-पीडो केवल पनडुब्बियाँ अथवा अन्य जल-यान द्वारा फेंका करते थे। अब ऐसा भी टारपीडो बन गया है, जो वायु-यानों द्वारा फेंका जाता है और जल-यानों को डुबाता है। इसे प्रायः एयरक्रेफ़्ट कैरिअर अर्थात् वायुयान-वाहक जहाजों पर से उड़े हुए वायु-यान फेंकते हैं।

डूबने से रक्षा — जहाज़ों को यथाशक्ति अमज्जनीय (जो न

डूब सके) बनाने के लिये जर्मनी ने ऐसे युद्ध-पोत बनाये हैं जिनमें अनेक कमरे हवा से भरे रहते हैं। ये जहाज बडी कठिनाई से डूबते हैं।

वायुसेना—युद्ध मे विनाश के लिये वायु-यानों का प्रयोग अनेक प्रकार किया जाने लगा है। हाल के (सन् १६३६) युरोपियन युद्ध से पहले तक, वायु-यानों का मुख्य उपयोग शत्रु-पक्ष पर बम-वर्षा समझा जाता था। इस युद्ध में न केवल बम-वर्षा के अनेक प्रकार प्रकट हुए, यह भी प्रकट हुआ कि वायुयानों द्वारा स्थल-सेनाओं को क्या सहायता मिल सकती है।

वायुयान रणक्षेत्र के अगले भाग में शत्रु-सेनाओं पर चील की भाँति झपटते, आगे के मार्गों पर बम बरसा कर शत्रु-सेना का रसद गोला बारूद आदि आना रोकते तथा अपनी सेना के आगे बढ़ने का मार्ग परिष्कृत करते, ठीक रण-क्षेत्र मे रसद, गोला बारूद और सिपाही उतारते, जहाजों को डुबाते, शोर मचाने वाले बम गिरा कर शत्रु की सेना तथा प्रजा मे घबराहट उत्पन्न करते, और ऊपर से शत्रु की गतिविधि का निरीक्षण करते तथा फ़ोटो आदि लेते हैं।

बम—बम भी नाना प्रकार के हैं। शोर मचाने वाले, फटने वाले, आग लगाने वाले, चकाचौंध रोशनी करने वाले, नियत समय पश्चात् फटने वाले इत्यादि कितने ही प्रकार के बम होते हैं।

बमों के अतिरिक्त वायुयानो से विषैली गैसें, रोगों के कीटाणु, खेती को नष्ट कर देने वाले रासायनिक द्रव्य और 'फ़ाउन्टेनपेन' 'साबुन की टिकिया' आदि ऐसी वस्तुएँ भी फेंकी जाती है, जिन्हे देख कर तो आदमी ललचा जाय, परन्तु जो उठाने पर फटकर बम का काम दे।

बम, टारपीडो, टैंक आदि प्रत्यक्ष विनाशक वस्तुओं के अतिरिक्त, विज्ञान ने अनेक प्रकार की किरणें आदि ऐसी विनाशक शक्तियाँ भी मनुष्य को दी है, जो सुगमता से इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होतीं। मृत्यु-किरण नामक एक ऐसी किरण आविष्कृत हो चुकी है, जिसके द्वारा एक नियत क्षेत्र मे सब प्रकार के यानों का चलना एक दम बन्द किया जा सकता है। सौभाग्य-वश अभी तक इसका प्रयोग इतना सरल नहीं हुआ कि इसे युद्ध-क्षेत्र मे प्रयुक्त किया जा सके। और भी कई प्रकार की किरणें है, जिनकी शक्तियाँ आविष्कारकों ने जान-बूझ कर गुप्त ही रखी है।

साम्राज्यवादी देशों की परस्पर शत्रुता के कारण, जिन देशों को अनेक प्रकार के कच्चे माल नही मिल पाते, उन्होंने कई प्राकृतिक वस्तुओं की जगह कृत्रिम पदार्थों का निर्माण कर लिया है। यथा, जर्मनी मे कृत्रिम रबर, कृत्रिम ऊन, कोयले से पेट्रोल आदि अनेक वस्तुएँ बनायी गयी हैं।

भोजन तक ऐसे कृत्रिम बनाये गये हैं, जो बहुत कम खाने से क्षुधा-निवृत्ति हो जाय। जर्मन सिपाही अपने सामान का बोझ विशेष बिना बढ़ाये सात सात दिन को पर्याप्त होनें वाले ऐसे भोजन अपने साथ रखते हैं। उनके पास थकान मिटाने वाली गोलियाँ भी रहती है।

दसवाँ अध्याय

हमारा देश भारतवर्ष

भौगोलिक परिचय

भारतवर्ष बहुत विशाल देश है। कटाव बहुत कम होने पर भी भारतवर्ष की तट रेखा प्रायः ६००० मील है। पर स्थल सीमा केवल ६००० मील है और फारस, अफगानिस्तान, रूस, चीन और स्याम* से मिली हुई है। और इन सीमाओं के भीतर भारतवर्ष का क्षेत्रफल १८ लाख ८ हजार वर्ग मील अर्थात् ब्रिटेन से २२ गुना या रूस छोड़ कर शेष यूरोप के बराबर है। उत्तर मे दक्षिण तक इसकी लम्बाई २००० मील है और पूर्व से पश्चिम तक इसकी दूरी २५०० मील है। आबादी की दृष्टि से भारतवर्ष संसार का दूसरा देश है। इस विशाल क्षेत्र मे समस्त संसार की ⅕ जनसंख्या (प्रायः ४० करोड़) का निवास है।

भौगोलिक स्थिति—भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संसार के स्थल समूह के प्रायः मध्य मे एशिया महाद्वीप है और एशिया महाद्वीप के मध्य मे भारतवर्ष है। चीन,

---

* १९३७ से बरमा को भारत से अलग करके एक स्वतन्त्र देश बना दिया गया है, तब से भारत की पूर्वी सीमा बरमा हो गया है।

फ़ारस, मिश्र, यूनान, इटली आदि कई देशों के प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में प्रधान स्थलमार्गों का प्रारम्भ भारतवर्ष से होता था। जलमार्गों के लिए भारतवर्ष की स्थिति और भी केन्द्रवर्ती है। कोलम्बो से पर्थ (आस्ट्रेलिया) और डरबन (दक्षिण अफ्रीका) प्रायः समान दूरी पर ही हैं। कलकत्ते से सिंगापुर और हांगकांग होकर याकोहामा (जापान) के लिए अक्सर जहाज़ घूमते रहते हैं। अदन और स्वेज़ नहर होकर यूरोप मे हम प्रायः दो ही सप्ताह मे पहुँच सकते हैं। योरुप के आगे अमरीका का पूर्वी तट बम्बई से उतना ही दूर है, जितना कि अमरीका का पश्चिमी तट कलकत्ते से पूर्व की ओर है। वायुमार्ग के लिए भारत की स्थिति और भी महत्त्व-पूर्ण है। वायुयानों द्वारा संसार का चक्कर लगाने वाले प्रायः सभी यात्री कराची या कलकत्ते मे पैट्रोल लेने के लिए उतरते हैं।

जलवायु—भारतवर्ष को सम्पूर्ण संसार का नमूना या एक छोटा संसार कहा जा सकता है। गरम से गरम और शीतल से शीतल जलवायु इस देश में प्राप्त होता है। हिमालय की बरफीली चोटियाँ और राजपूताने का गरम रेगिस्तान इसी देश में है। चिरापूंजी मे प्रति वर्ष ४६० इंच से ऊपर वर्षा होती है और उत्तरी सिंध में वर्ष भर मे ४ इंच भी वर्षा नहीं होती। कहीं काश्मीर और बंगाल जैसी शस्य-श्यामला भूमि है, तो कहीं ऊबड़ खाबड़ पथरीले टीले और रेतीले रेगिस्तान।

विविधता—इस महान् देश की प्रकृति मे जितना अन्तर है, उतना ही भेद भारत-निवासियों मे भी है। सीमाप्रान्त के एक गौर-वर्ण हृष्ट-पुष्ट विशालकाय पठान और उड़ीसा के पतले सिकुड़े कृशकाय कृष्णवर्ण उडिया मे परपर बहुत अधिक भेद है। पंजाबी, बंगाली, गुजराती, मद्रासी, महाराष्ट्र, बिहारी, राजस्थानी सब की बोली, लिपि, सब की शरीराकृति, बात-चीत, रुचि, स्वभाव सब का पहरावा व सब के भोजन आदि मे कोई समानता नहीं है। भारत मे करीब २२५ भाषाएँ बोलने वाले रहते हैं, परन्तु फिर भी समस्त भारतवर्ष एक है। पेशावर क एक पठान, मारवाड़ के एक राजपूत, नदिया के एक भट्टाचार्य ब्राह्मण और त्रिचनापली के एक अब्राह्मण रेडी मे परस्पर क्या समानता है, यह कहना कठिन है, परन्तु हम आगे जाकर देखेगे कि ये सब एक ही देश के निवासी हैं, एक ही सूत्र से पिरोये हुए हैं।

नदियाँ—भारतवर्ष पर प्रकृति माता की अपार दया है। पंजाब की पाँचों नदियों और समुद्र के समान विशाल सिंधु, भारत के विस्तृत प्रदेश को सींचने वाली १५०० मील लम्बी गंगा और यमुना, गोंडक चम्बल और पूर्वीय भारत को सिंचित करने वाली ब्रह्मपुत्र के अलावा महानदी, कावेरी, गोदावरी, नर्मदा और तापती आदि नदियाँ भी इस विशाल देश के विविध भागों को अमृत प्रदान करती हैं।

उपज—भारतवर्ष की खेती और खानें प्रति वर्ष अपार सम्पत्ति पैदा करती हैं। गेहूँ, चावल, जौ, बाजरा, चना, ज्वार, आदि अनाज

विविध दाल और शाक तरकारी, चाय और गन्ना भारत में बहुतायत से होता है। रुई, जूट, तेल के बीज, नील, अफीम, तमाखू, रेशम, लाख और रबड़, तथा तरह-तरह की कीमती लकड़ी आदि पदार्थ भी भारत मे बहुत होते हैं। जूट पर तो समस्त भारत का एकाधिकार है। अधिकांश आम भारतवर्ष मे ही होता है।

भारतवर्ष खनिज दृष्टि से भी बहुत सम्पन्न है। सोना, लोहा, चांदी, कोयला, नमक, मिट्टी का तेल, अबरक, संगमरमर, स्लेट, मकान बनने के पत्थर, मेगनीज, शोरा, फिटकरी, गंधक आदि प्रायः सब प्रकार के खनिज भारत मे पाये जाते हैं।

जातियाँ—मानव जाति के जो भाग किये गये हैं, उनमे से तीन मुख्य जातियाँ—आर्य, द्राविड़, और मंगोल भारत मे रहते हैं। आजकल विविध ज.तियों के मेल से कई संयुक्त जातियाँ भी बन गई हैं। दक्षिणी हिन्दुस्तान मे प्रायः द्राविड़ लोग रहते हैं। इनका कद कुछ छोटा और रंग काला होता है। ब्रह्मा, आसाम आदि पूर्वी भागों मे रहने वालों मे मंगोल रुधिर की अधिकता है। उत्तर भारत मे रहने वाले जाट, राजपूत और राजपूताना, काश्मीर, पंजाब के क्षत्रिय आर्यवंश के हैं। युक्तप्रान्त, राजपूताना और बिहार मे आर्य द्राविड़ों का सयुक्तरूप पाया जाता है।

धर्म—भारतवर्ष मे यों तो छोटे छोटे मत मतान्तर सैकड़ों की संख्या मे हैं, लेकिन मुख्य धर्म चार ही हैं। हिन्दू या वैदिक धर्म को मानने वाले २४ करोड़ हैं, इस्लाम को मानने वाले भी ८ करोड़ हैं। ईसाई और सिख धर्म को मानने वाले भी क्रमशः ४०

और ५० लाख के करीब हैं। पारसियों की संख्या करीब एक लाख है।

भाषाएँ—यों तो भारतवर्ष में बोली जाने वाली भाषाओं की संख्या २०० से ऊपर है, लेकिन प्रमुख भाषायें और उनके बोलने वालों की संख्या निम्नलिखित हैं:—

हिन्दी (पंजाबी और अन्य देशों सहित)	१५ करोड़
बंगाली	५½ करोड़
तैलगू	२½ करोड़
मराठी	२ करोड
तामिल	२ करोड़
कनाड़ी	१½ करोड़
गुजराती	१ करोड

भारतवर्ष के राजनैतिक दृष्टि से दो भाग किये जा सकते हैं। ब्रिटिश भारत और रियासतें। रियासतों का क्षेत्रफल करीब ७१५००० वर्ग मील है और आबादी ८ करोड से कुछ ज्यादा।

सामरिक मर्मस्थल

भारतवर्ष की भौगोलिक सीमा का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक दृष्टि से इसकी पश्चिमोत्तरी सीमा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आज यद्यपि समान शत्रु हिटलर को कुचलने के लिए ब्रिटेन और रूस ने हाथ मिलाया हुआ है, दोनों ने मिल कर ईरान पर सैनिक अधिकार कर लिया है, और ईरान के रास्ते दोनों

एक दूसरे को सहायता पहुँचा रहे हैं, पर अफ़ग़ानिस्तान के उत्तर में रूस हमेशा ब्रिटिश सरकार के लिए ख़तरे के रूप में रहा है। रूस ने अफ़ग़ानिस्तान की सीमा पर रेलवे का जाल बिछा रखा है और उसका सैनिक संगठन भी बहुत दृढ़ है। रूस के एक रेलवे स्टेशन टमेज़ से पेशावर २०० मील है। दूसरे रेलवे स्टेशन कुश्का से चमन ३५० मील दूर है। रूसबहुत दिनों से एक रेलवे लाइन बनाने का स्वप्न ले रहा है जो कि कुश्का से हेरात (अफ़गानिस्तान) होते हुए ईरान मे बन्दर अब्बास तट रेलवे लाइन बना ली जाय। इस तरह एक बन्दर गाह हाथ मे लेकर अरब सागर मे रूस उतर सकता है। जब रूस मे नई बोलशेविक सरकार बनी थी और साम्राज्यवाद के विरुद्ध लेनिन ने घोषणा की थी, तब भी ब्रिटिश सरकार को रूस की सदि-च्छाओं पर विश्वास नहीं हुआ था, और इस युद्ध के प्रारम्भ मे जब जर्मनी और रूस एक दूसरे की ओर झुक रहे थे तब यह भय व संदेह और भी बढ़ गया था। युद्ध के प्रारम्भिक कुछ दिनों तक अनेक ऐसी अफ़वाहें उड़ीं कि रूस की भारत पर दृष्टि है और जर्मनी व रूस पूर्व मे संयुक्त कार्रवाई करने का विचार कर रहे हैं। पर जर्मनी के साथ होने वाले इस युद्ध मे रूस की सैनिक शक्ति सर्वथा कुचली सी गई है,रूस की निजू सत्ता संशय मे है। अब रूस से भारत को खतरा नहीं, खतरा है तो जर्मनी से, कहीं वह रूस को परास्त कर इस मार्ग से न बढ़े।

अफ़गानिस्तान के अलावा वज़ीरिस्तान भी हमेशा अशान्ति का सूचक रहा है। यह अफ़गानिस्तान तथा भारत सरकार

शासित होने वाले प्रदेश के बीच मे है। यहाँ ब्रिटिश सरकार काफी बडी छावनी रखती है, लेकिन फिर भी समय समय पर अशान्ति बनी ही रहती है। १६३६ नवम्बर मे इपी के फकीर ने जो युद्ध शुरू किया था, वह यद्यपि दो साल बाद समाप्त हो गया, फिर भी उसकी एकाध चिंगारी अब भी सीमान्त प्रदेश मे दीख ही जाती है। कोहाट और बन्नू तक उनकी टोलियों के हमले होते हैं और वे इक्के दुक्के सम्पन्न या साधारण गृहस्थ, स्त्री बच्चे को चुरा ले जाते हैं।

कबीलियों का यह इलाका पहाडी है,इस पर हमला करना अत्यन्त कठिन है इसकी लम्बाई ४५० मील और चौडाई १०० मील है, २५ लाख आबादी है। सारी आबादी बहुत से कबीलियों मे बंटी हुई है हर एक कबीले का अपना अपना जिरगा (प्रतिनिधि मंडल) होता है। ब्रिटिश सरकार ने इन कबीलों को शान्त करने के लिए तीन प्रकार के उपाय किये हैं। (१) जगह जगह सैनिक छावनी (२) खास खास कबीले के सरदारों को रुपया देकर वश मे रखना और (३) इलाके मे सडकें, हस्पताल और स्कूल बनवा कर कबीले वालों को रोजी देना और सभ्य बनाना। अभी कुछ समय पूर्व गाधी जी के सहकारियों ने कबीलों मे चरखे, ग्रामोद्योगों की ओर दिलचस्पी पैदा करने का प्रयत्न किया है। लेकिन अभी तक वहाँ के पठानों का चरित्र वैसा ही है, उसमे कोई परिवर्तन नही हुआ।

भारत के उत्तर मे चीन के सिनकियाग आदि प्रान्तों मे भी रूस की हलचले कम नहीं रहीं। तिब्बत यद्यपि ब्रिटेन का मित्र है, तथापि रूस भी वहाँ अपना प्रभाव बढाने को सदा उत्सुक रहा है।

भारत के पूर्वोत्तर मे चीन का विशाल प्रदेश है। बरमा से चुंग-किंग जाने वाली सड़क का भौगोलिक व राजनैतिक महत्त्व बहुत अधिक है। चीन को ब्रिटेन इसी मार्ग से सहायता भेज रहा है और जापान भी इसी मार्ग पर अधिकार करना या इसे नष्ट कर देना चाहता है। चीन जापान में जो युद्ध हो रहा है, इसके भविष्य का परिणाम भारतवर्ष पर भी प्रभाव डाल सकता है।

भारत के पूर्व मे स्याम या थाईलैण्ड (नया नाम) है। जापान इस पर निरन्तर अपना प्रभाव बढ़ा रहा है। थाईलैण्ड को प्रेरित कर जापान ने फ्रांस के उपनिवेश हिन्द चीन से संघर्ष करने पर प्रेरित किया और बाद मे स्वयं मध्यस्थ बन कर अपना प्रभाव वहाँ भी बढ़ा लिया। कुछ समय हुआ कि स्याम के प्रधान सेनापति ने घोषणा की थी कि जापान एशिया में जो नयी व्यवस्था क़ायम करना चाहता है, स्याम उसमे सम्मिलित हो जायगा। इधर ब्रिटेन और अमेरिका भी उस पर काफ़ी दबाव डाल रहे हैं, और स्याम अभी तक तटस्थ है। पर रोज़ समाचार आते हैं कि जापान स्याम पर आक्रमण करने वाला है। जापान का यह भी स्वप्न है कि वह स्याम मे से एक नहर निकाल कर सिंगापुर के ब्रिटिश अड्डे से बच कर सीधा दक्षिणी हिन्द महासागर में आ जाये। यह नहर बनेगी या नहीं, यह अभी नहीं कहा जा सकता।

भारत के दक्षिण और पश्चिम मे दक्षिणी हिन्दसागर और अरब सागर है। ब्रिटेन के प्रबल समुद्री बेड़े और आने जाने के पूर्वी और पश्चिमी द्वारों—सिंगापुर और स्वेज़—पर ब्रिटेन के सुदृढ़ अधिकार के

कारण ये रास्ते अब तक सुरक्षित रहे है। ईरान और ईराक इतने कम बलशाली हैं कि उनसे कभी ख़तरे की कल्पना भी नहीं की गई। वर्तमान युद्ध मे जर्मनी ने कई वार इन पर प्रभाव बढ़ाना चाहा पर ब्रिटेन ने इन देशों पर आक्रमण कर उन पर अपना सैनिक संरक्षण स्थिर कर लिया है।

वैधानिक प्रगति का इतिहास

शासन पद्धति के प्रकरण मे हम भारत के वर्त्तमान शासन का विस्तार से वर्णन कर आये हैं, लेकिन अधिकांश भारतीयों को इस शासन विधान और वर्तमान राजनैतिक स्थिति से असंतोष है। उनकी सम्मति मे जब जब सरकार ने वैधानिक विकास की उन्नति की ओर कोई कदम रखा है, वहुत समय बीतने पर रखा है और उस से भारत को सन्तोष नहीं हो सका है। हम यहाँ संक्षेप से भारत के वैधानिक विकास पर प्रकाश डालते हुए सरकार की ओर से की गई घोषणाओं का भी उल्लेख करना चाहते हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा कि भारत का वर्तमान शासन-विधान कैसे पहुँचा और उसका उद्देश्य क्या है ?

कंपनी के शासन में—१६०० ई० मे जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ब्रिटिश सरकार ने भारत मे व्यापार करने का अधिकार-पत्र दिया था, उसी मे भारत सरकार के कानून निर्माण के अधिकारों का अंकुर छिपा हुआ है। कम्पनी को कानून वनाने और विधान तैयार करने का अधिकार दे दिया गया था। १६६१ मे ब्रिटिश सरकार ने किले बनाने, मुद्रा जारी करने, युद्ध और संधि बनाने के

अधिकार देकर कम्पनी को व्यापारिक संस्था से राजनैतिक संस्था बना दिया। १७६५ मे मुग़ल बादशाह शाह आलम ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा मे कम्पनी को मालगुज़ारी वसूल करने का अधिकार दे दिया और इस तरह कम्पनी के हाथ मे पहली बार भारतीय प्रजा के लिए भी सरकारी अधिकार आगए।

१७७३ में कम्पनी द्वारा अधिकृत भारतीय प्रदेश के सुशासन के लिए ब्रिटिश पार्लमैंट ने गवर्नर-जनरल और उसके लिए चार सलाहकारों (कौंसिलरों) की नियुक्ति करके भारतीय शासन में ब्रिटिश पार्लमैंट का हस्ताक्षेप प्रारम्भ किया, यद्यपि स्वामित्व कम्पनी का ही माना जाता रहा। इसी समय एक सुप्रीम कोर्ट की भी स्थापना की गई। अब कम्पनी के अधिकार केवल आर्थिक और व्यापारिक क्षेत्र तक ही सीमित रह गये। १७८४ मे पिट के इण्डिया एक्ट द्वारा ब्रिटिश पार्लमैंट ने कम्पनी के भारतीय प्रदेशों के शासन के निरीक्षण के लिए लण्डन मे एक कण्ट्रोल बोर्ड बना कर पार्लमैंट के प्रति उत्तरदायी मन्त्रियों का भारतीय शासन पर नियन्त्रण स्थापित कर दिया। १८१३ और १८३३ के कानूनों द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापार का एकाधिकार छीन लिया गया और उस की स्थिति केवल ब्रिटिश सभा के ट्रस्ट के तौर पर भारत मे राजनैतिक शासन प्रबन्ध करने भर की रह गई। बंगाल के गवर्नर-जनरल को भारत का गवर्नर-जनरल बना दिया गया। इन सब कानूनों का एक ही परिणाम था कि पार्लमैंट का हस्ताक्षेप कम्पनी के काम मे लगातार बढ़ता रहा और इस प्रकार भारत में एक प्रकार का

द्वैध शासन चलता रहा। कानून से एक ओर कम्पनी तथा दूसरी ओर पार्लमैंट का एक बोर्ड मिल कर शासन करते थे।

१८३३ के चार्टर की एक विशेषता उसकी प्रमुख घोषणा है, जो शासन मे भारतीयो के समान अधिकार का सिद्धांत स्वीकृत करती है। इस समय तक भारतीयों मे कम्पनी-शासन की भारतीय-विरोधी नीति से कुछ न कुछ असंतोष उत्पन्न हो चुका था। फलतः इस चार्टर की एक धारा मे कहा गया था—"पूर्वोक्त प्रदेशों के कोई भी निवासी या बादशाह के कोई प्रजाजन जो वहाँ रहते हों, केवल अपने धर्म, स्थान, वंश या वर्ण के कारण कम्पनी मे किसी स्थान पद या नौकरी से वंचित न रखे जावेंगे।" कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने इस के महत्व को इस प्रकार समझा था —

"इस धारा का आशय कोर्ट की सम्मति मे यह है कि ब्रिटिश भारत मे कोई शासन करने वाली जाति न रहेगी। उनकी योग्यता की दूसरी कुछ भी कसौटियाँ रखी जावेंगी. जाति या धर्म का कोई भेदभाव न रखा जायगा। बादशाह के प्रजाजन मे से किसी को, फिर वे चाहे भारतीय, ब्रिटिश या संयुक्त जाति के हों, सनदी या बेसनदी नौकरियों से वंचित नही रखा जायगा, यदि दूसरी बातों मे वे उनके योग्य हों।"

सम्राट के शासन में—१८५८ मे ब्रिटिश पार्लमेंट ने जो कानून बनाया, उसने तो कम्पनी का अन्त ही कर दिया। उससे पहले १८५७ मे विद्रोह हो चुका था। यह विद्रोह यद्यपि सफल नहीं हुआ, लेकिन ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को समाप्त कर दिया और शासन-सूत्र अपने हाथ मे ले लिया। इसी समय भारत मंत्री

बनाया गया और उसकी सलाह के लिए एक कौंसिल बनाई गई। इसी के साथ महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा की—"हम यह मानते हैं कि जिस तरह हम अपनी दूसरी प्रजाओं के साथ कर्त्तव्य पालन से बँधे हुए है, उसी तरह हम भारतीय प्रजा के साथ भी कर्तव्य से बंधे हुए हैं और सर्व शक्तिमान् की दया से हम इन सब कर्तव्यों का ईमानदारी और होशियारी से पालन करेगे।" लार्ड डर्बी को इसी घोषणा के बारे मे विक्टोरिया ने लिखा था कि इसका अर्थ यह है कि ब्रिटिश प्रजा की तरह ही भारतीयों को भी सब अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त होंगी। इसके वाद १८६१ मे कानून द्वारा बम्बई, बंगाल और मद्रास में व्यवस्थापिका सभाएँ स्थापित की गईं। गवर्नर-जनरल की एक्ज़िक्यूटिव कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यों मे वृद्धि की गई और इनमे कुछ भारतीय भी रखे गये। १८८२ मे लार्ड रिपन ने स्थानीय शासन संस्थाओं की रचना की और १८६२ मे वायसराय की एक्ज़िक्यूटिव कौंसिल के सदस्यों की संख्या १६ कर दी गई। ग़ैर सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई, उन्हें प्रश्न पूछने और सरकारी बजट पर आम बहस करने का भी पहली बार मौका दिया गया, परन्तु यह खयाल रखा गया कि ग़ैर सरकारी सदस्यों का बहुमत न हो जावे। १६०८ से ब्रिटिश सम्राट एडवर्ड सप्तम ने प्रतिनिधितन्त्र संस्थाओं की उपयोगिता बताते हुए उसे कुछ व्यापक रूप से प्रचलित करने का विचार प्रकट किया था।

मिन्टो-मार्ले सुधार—सन १८६२ के बाद महत्त्वपूर्ण कानून पार्लमेंट ने सन् १६०६ में पास किया। इसे ही मिन्टो-मार्ले सुधार

कहते है। इस एक्ट के द्वारा केन्द्रीय और प्रान्तीय कौंसिलों के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या पहले से और भी अधिक वढ़ा दी गई। केन्द्रीय कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या वढा कर ६० तक और बंगाल कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या लगभग ४५ तक कर दी गई। प्रान्तीय कौंसिलों मे गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत रखा गया लेकिन इसमे मनोनीत सदस्य भी थे। कौसिलों को बहस करने के कुछ और अधिकार भी दिये गये।

भारत के राजनैतिक जीवन मे पृथक् निर्वाचन पद्धति का श्री गणेश भी मिण्टो-मार्ले योजना के साथ ही होता है। परन्तु इस समय यह केवल मुसलमानों के लिए जारी की गई।

माण्टफोर्ड सुधार—१९१७ मे भारत मन्त्री मि० मान्टेगू ने एक महत्व-पूर्ण घोषणा की—"ब्रिटिश सरकार का भारत मे यह उद्देश्य है कि—शासन के हर एक विभाग से भारतवासियों का सम्पर्क दिन प्रति दिन बढ़ाया जाय और स्वराज्य संस्थाओं का शनैः शनैः विकास हो, ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के अविच्छिन्न अंग भारत मे धीरे धीरे उत्तरदायी शासन पद्धति स्थापित हो सके।" इसी समय मांटफ़ोर्ड सुधारो के नाम से जो विधान तैयार हुआ वह १९१९ मे प्रारम्भ हो गया। इसके दो भाग थे। एक केन्द्रीय और एक प्रान्तीय। केन्द्रीय शासन तो आज भी वैसे ही चल रहा है, लेकिन प्रान्तीय शासन सर्वथा बदल चुका है। वर्तमान केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन का परिचय चौथे अध्याय मे दिया गया है। १९१९ से १९३७ तक के प्रान्तीय शासन की मुख्य विशेषताऍ निम्नलिखित थी।

(१) सब प्रान्तो मे एक एक कौंसिल ।

(२) द्वैध शासन पद्धति—सार्वजनिक स्वास्थ्य, अस्पताल, शिक्षा-कृषि, सहकारी-संस्थाये और उद्योग धन्धों आदि की वृद्धि हस्तान्तरित विषय रखे गये —अर्थात् असेम्बली के सदस्यों के हाथ मे दिये गये । शेष सब महत्वपूर्ण विषय लगान, मालगुज़ारी, कानून, व्यवस्था, कर्ज़, आय-व्यय, कारखाने आदि सुरक्षित रखे गये । इन पर प्रान्तीय असेम्बली का कोई अधिकार न था ।

(३) प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्य बढ़ाये गये, लेकिन ग़ैर सरकारी मनोनीत करने का अधिकार सरकार ने अपने पास सुरक्षित रखा ।

(४) प्रत्यक्ष परन्तु सांप्रदायिक चुनाव और

(५) गवर्नर के पूर्ण अधिकार ।

औपनिवेशक स्वराज्य का उद्देश्य—लेकिन इस समय तक भारत की राजनैतिक आकाक्षाये बहुत बढ़ चुकी थीं, इन सुधारों से लोकमत को संतोष नहीं हो सकता था । भारत की माग औपनिवेशिक स्वराज्य की थी । उसी के लिए आंदोलन जारी रहा । सरकार ने भी समय समय पर भारत के प्रति अपने उद्देश्य के बारे मे कई घोषणाएं की । सम्राट् ने ड्यूक आफ़ कनाट द्वारा यह सन्देश दिया :—

वर्षों से, शायद पीढ़ियों से देशभक्त और राजभक्त भारतीय अपनी मातृभूमि के लिए स्वराज्य का स्वप्न देखते आ रहे होंगे । आज आपके लिए मेरे साम्राज्य के भीतर स्वराज्य का श्रीगणेश

हुआ है, मेरे अन्य उपनिवेश जिस 'स्वराज्य' का उपभोग कर रहे हैं, उसकी ओर बढ़ने का आपके लिए यह सब से अच्छा अवसर है।" इस सन्देश की एक विशेषता यह थी कि इस मे 'स्वराज्य' शब्द का ही प्रयोग किया गया था, जिस का प्रयोग कांग्रेस करती थी और जिस का सर्व प्रथम प्रयोग दादा भाई नौरोजी ने किया था। १६२८ मे तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री रैम्से मैकडानल ने यह आशा प्रकट की थी कि कुछ सालों मे नही, कुछ महीनों मे ही ब्रिटिश कामनवैल्थ मे भारत भी औपनिवेशिक पद पाकर सम्मिलित हो जायगा। १६२६ अक्तूबर मे वायसराय लार्ड अरविन ने एक लम्बी चौड़ी घोषणा के सिलसिले मे कहा कि '१६१६ के सुधार कानून का अर्थ लगाने मे विलायत और भारत दोनों ही देशों मे ब्रिटिश सरकार की इच्छाओं पर सन्देह प्रकट किया गया है। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने मुझे यह स्पष्ट रूप से घोषित कर देने का अधिकार दिया है कि १६१७ की घोषणा मे यह अभिप्राय असंदिग्ध रूप से है कि भारत को अन्त मे औपनिवेशिक दर्जा मिले।" लेकिन इन सब घोषणाओं से भी भारत को सन्तोष न हुआ। उसका कहना था कि यह उद्देश्य कब पूरा होगा, उस की अवधि भी शीघ्र नियत करनी चाहिए। लेकिन सरकारी उच्च अधिकारी अवधि के बारे मे चुप रहते हुए बार बार उसी घोषणा को दोहराते रहे। भारतमन्त्री श्री वैजवुड बैन ने दो ढाई महीने बाद ही कहा कि—"भारत मे ब्रिटिश नीति का उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य के रूप मे घोषित किया जा चुका है।"

१६१७ की घोषणा के अनुसार भारतीय वैधानिक प्रगति पर अपनी

रिपोर्ट देने और भावी विधान की रूपरेखा तैयार करने के लिए साइमन कमीशन नियुक्त किया गया था, लेकिन इसमे एक भी भारतीय न रखने से सारे देश मे असन्तोप की जो तेज़ लहर फैल गई थी, वह उसकी असन्तोषजनक रिपोर्ट पर और भी ज़्यादा हो गई। इस रिपोर्ट की तीन विशेषताये थी :—

(क) ब्रिटिश भारत व देसी रियासतों मे एक अखिल भारतीय संघविधान।

(ख) प्रान्तो मे उत्तरदायी शासन की प्रगति और

(ग) केन्द्र मे अनुत्तरदायी शासन।

लेकिन यह रिपोर्ट निकलने से पहले ही सरकार ने यह अनुमान कर लिया था और यह घोषणा कर दी थी कि रिपोर्ट निकलने के बाद सरकार एक परिषद् का आयोजन करेगी, जिस मे वह ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधियों के साथ विचार-विनिमय करके यह निश्चय करेगी कि भारत के लिए किन किन शासन-सुधारों की सिफ़ारिश पार्लमेंट से की जाय।"

गोलमेज कान्फ्रैंस—१९३० मे जब कांग्रेस का सत्याग्रह आन्दोलन ज़ोरों पर था, लण्डन में राउण्डटेबल कांग्रेस या गोलमेज़ कान्फ्रैंस बुलाई गई। इस मे सरकार ने ब्रिटिश भारत व रियासतों के कुछ व्यक्तियों को प्रतिनिधि के तौर पर निमन्त्रित किया। कांग्रेस ने गोलमेज़ कांफ्रैंस के इस अधिवेशन का बहिष्कार किया क्योंकि उसे इस बात का आश्वासन नहीं दिया गया था कि इस परिषद् का एक मात्र उद्देश्य भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य का खाका तैयार

करना होगा। यह अधिवेशन १२ नवम्बर १६३० से १६ जनवरी १६३१ तक रहा। इसने तीन सिद्धान्त स्थिर किये.—

१. भारत का विधान सघविधान रहेगा, जिस मे ब्रिटिश भारत व रियासते शामिल होंगी।।

२. केन्द्र मे कुछ महकमों को छोडकर मन्त्रिमण्डल की व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायिता और

३. प्रान्तों मे गवर्नरों के विशेप अधिकारों के साथ पूर्ण उत्तरदायी शासन।

मार्च १६३१ मे गाधी अरविन पैक्ट द्वारा काग्रेस और सरकार मे समझौता हो गया। सत्याग्रह स्थगित हो गया और काग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि वनकर गान्धी जी राउण्ड टेवल कान्फ्रैस की दूसरी बैठक मे शामिल हुए। काग्रेस इस आशा पर सम्मिलित हुई थी कि विधान मे जो कुछ भी संरक्षण या प्रतिबंध रखे जावेगे, वे भारत के हित मे होंगे। लेकिन वहाँ कोई समझौता न हो सका और गाधी जी वापस लौट आये। इन्ही दिनो ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री ने यह कह कर कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधि परस्पर कोई निर्णय नही कर सके हैं, एक निर्णय दिया, जो साम्प्रदायिक निर्णय या कम्यूनल एवार्ड के नाम से प्रसिद्ध है। इस मे यह नियत किया गया था कि प्रान्तीय और केन्द्रीय धारा सभाओं मे हिदू दलित हिन्दू मुसलमान, सिख, ईसाई, एंग्लो इंडियन किस किस अनुपात मे जावेगे। इसका आधार भी जातिगत पृथक् चुनाव रखा गया। *

---

* देखिए ६५ पृष्ठ का फुट नोट।

सन् १९३२ के अन्त मे ब्रिटिश सरकार ने छोटे पैमाने पर गोलमेज़ परिषद् का एक और अधिवेशन किया; लेकिन चूँकि कांग्रेस फिर सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू कर चुकी थी । इस लिए वह उसमें शरीक नहीं हुई ।

नया विधान—मार्च सन १९३३ मे ब्रिटिश सरकार ने भारत के भावी विधान के सम्बन्ध में अपने अन्तिम प्रस्ताव एक ह्वाइट पेपर अथवा श्वेत पत्र (सरकारी खरीना) के रूप मे प्रकाशित किये। कुछ समय बाद सरकार ने इस पर भी विचार करने के लिए ज्वायन्ट पार्लमैन्ट कमेटी नियुक्त की इसने थोड़े बहुत परिवर्तन के बाद ह्वाइट पेपर के प्रस्तावों का ही समर्थन किया। ५ फ़रवरी १९३५ को ज्वायण्ट पार्लमैंटरी कमेटी की योजना के आधार पर पार्लमैण्ट ने एक बिल पेश किया। कई मास तक इस बिल पर विचार होता रहा और संशोधन के लम्बे सिलसिले के बाद २ अगस्त १९३५ को ब्रिटिश सम्राट की इस पर स्वीकृति मिली। और यह गवर्नमैण्ट आफ़ इण्डिया एक्ट की शकल मे कानून की किताब में आ गया। इसके दो भाग हैं—१—प्रान्तीय शासन और २—केन्द्रीय शासन। प्रान्तीय शासन तो १९३७ मे अमल मे आ चुका और केन्द्रीय शासन खटाई में पड़ गया, जैसा कि हम चतुर्थ अध्याय मे बता चुके हैं ।

युद्ध और भारत—१९३८ में यूरोपीय युद्ध प्रारम्भ होने और उसमे भारत को सम्मिलित करने के बाद कांग्रेस ने प्रान्तीय सरकारों से स्तीफे दे दिये। कांग्रेस ने अंग्रेज़ी सरकार से इस पर निश्चित प्रकाश डालने के लिए कहा कि इस महायुद्ध के उद्देश्य क्या

हैं और वे भारत पर किस तरह लागू किये जावेंगे। इसका अर्थ यह था कि सरकार निश्चित शब्दों मे घोषणा करे कि भारत को पूर्ण स्वराज्य कब दिया जायगा। वायसराय और भारतीय नेताओं मे परस्पर विचार विनिमय के बाद वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने १७ अक्तूबर १६३६ और ४ अगस्त १६४० को दो घोषणाएँ की। इनका आशय यह था—अभी मित्रराष्ट्रों के युद्धोद्देश्य प्रकट नही किये जा सकते। ब्रिटिश सरकार ने तो १६१७ मे ही मि० माटेगू की घोषणा द्वारा भारत मे अपना उद्देश्य बता दिया था अर्थात् भारत को धीरे धीरे उत्तरदायी शासन दिया जायगा। ब्रिटिश सरकार भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहती है। संघविधान को स्थगित करने की घोषणा की गई और कहा गया कि युद्ध समाप्त होने पर एक गोलमेज कान्फ्रैंस और बुलाई जायगी, जिसमे भावी विधान पर विचार किया जायगा। स्वराज्य प्राप्त करने के लिए पहले भारतीयों को अपनी साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाना होगा तथा रियासती नरेशों का भी ध्यान रखना होगा, क्योंकि इन दोनों क्षेत्रों मे ब्रिटिश सरकार का विशेष उत्तरदायित्व है। युद्ध के दिनों मे वायसराय ने विभिन्न राजनैतिक दलों के भारतीय प्रतिनिधियों को सम्मिलित करके अपनी एक्जिक्यूटिव कौंसिल को बढ़ाना स्वीकार किया और युद्ध-संचालन मे परामर्श देने के लिए एक समिति स्थापित करने का भी प्रस्ताव पेश किया। इसमे भी लोकमत के प्रतिनिधि लेने की घोषणा की गई। भारत मंत्री श्री एमरी ने भी अगस्त १६४० मे घोषणा की कि भारत को औपनिवेशक स्वराज्य दिया जायगा। इसी घोषणा मे

उन्होंने भारत के विभिन्न साम्प्रदायिक दलों से पहले सहमत होने की अपील की।

परन्तु कांग्रेस को इससे सन्तोष नहीं हुआ उस का ध्येय तो पूर्ण स्वराज्य है। फिर इस घोषणा में सरकार ने यह भी नहीं बताया था कि औपनिवेशिक स्वराज्य कब तक मिलेगा। कांग्रेस ने युद्ध समाप्त होने तक केन्द्रीय असेम्बली के लोक प्रतिनिधियों की अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बनाने का प्रस्ताव रक्खा लेकिन सरकार ने उसे भी नहीं माना। तब से कांग्रेस और सरकार का संघर्ष जारी है। इधर जब रूस पर जर्मनी ने आक्रमण किया तब ब्रिटिश प्रधान मन्त्री श्री चर्चिल तथा प्रेसिडेन्ट रूजवेल्ट की अटलांटिक समुद्र में एक जहाज पर भेंट हुई, जिसमें अटलांटिक चार्टर की घोषणा की गई जिसके अनुसार समस्त पराजित देशों और जातियों को युद्ध के बाद स्वतन्त्र करने की घोषणा की गई, जब भारतीयों ने पूछा कि क्या यह भारत पर भी लागू होगा तो श्री चर्चिल ने घोषणा की कि यह केवल हिटलर द्वारा विजित देशों के लिए ही है, और भारत का भविष्य क्या होगा यह अगस्त १९४० की घोषणा में बताया जा चुका है। इस पर देश में प्रबल आन्दोलन है।

विविध राजनैतिक प्रवृत्तियां

भारत की विविध राजनैतिक हलचलों को जानने के लिए यहा की मुख्य मुख्य संस्थाओं का परिचय आवश्यक है। यहाँ हम संक्षेप से इनका परिचय दे रहे हैं।

कांग्रेस—इण्डियन सिविल सर्विस के एक रिटायर्ड सदस्य मि० एलन औक्टेवियन ह्यूम द्वारा १८८५ मे स्थापित इंडियन नेशनल काग्रेस आज भारत की सब से बड़ी राजनैतिक संस्था वन गई है। इसके आज लाखों सदस्य हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी आदि सभी धर्मों के स्त्री पुरुष इस के सदस्य हैं।

काग्रेस का प्रथम अधिवेशन सितम्बर १८८८ मे वम्बई में हुआ था। उस समय काग्रेस के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे—

१. भारत मे राष्ट्रीय चेतनता का भाव पैदा करना।

२. भारतीय राष्ट्र का उत्थान।

३ भारत के दुःखों को दूर करा कर भारत व ब्रिटेन में अच्छे संवन्ध स्थापित करना।

कुछ सालों बाद काग्रेस के नेता दो दलों मे विभक्त हो गये। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, ला० लाजपतराय और श्री विपिन चन्द्र पाल कुछ उग्र विचार रखते थे। बंगाल के टुकड़े कर देने से बंगाल मे और उसके साथ साथ अन्य प्रान्तों मे भी सरकार के प्रति असन्तोष बढ़ रहा था। विदेशी माल बहिष्कार के आन्दोलन ने उग्र विचार के लोगों का वल बहुत बढ़ा दिया। नरम दल इतना आगे

बढ़ना नहीं चाहता था। दोनों में विरोध शुरू हुआ। १६०६ में कांग्रेस ने स्वराज्य प्राप्ति का ध्येय मान लिया। यह गरम दल की विजय थी। नरमदल इसे सहन न कर सका, फलतः १६०६ मे दोनों दलों मे झगड़ा होगया। नरमदल ने कांग्रेस पर अधिकार कर लिया और गरमदल कांग्रेस से अलग होगया। १६१६ मे दोनों दल आकर फिर मिले लेकिन यह एकता ऊपरी एकता थी। मनोवृत्ति और पारस्परिक मत भेद वैसे ही थे। गरमदल अपनी बात पर उसी तरह जोर दे रहा था। परन्तु यहीं से कांग्रेस का आन्दोलन व्यापक होने लगा। श्रीमती एनी वेसेण्ट के होमरूल आंदोलन से इसे और भी बल मिला। १६१८ मे जब नये शासनसुधारों की घोषणा हुई, तो फिर दोनों दलों मे मतभेद हो गया। कांग्रेस ने बहुमत से इसे अस्वीकार्य घोषित किया। इस पर नरमदल कांग्रेस से अलग हो गया और आज तक अलग है। १६२० मे महात्मा गांधी ने कांग्रेस का शासन-सूत्र अपने हाथ मे लिया। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का इसी वर्ष देहान्त हो गया। शेष गरमदली नेता गांधीजी के साथ हो गये और बचे खुचे नरमदली नेता कांग्रेस से अलग हो गए। इस के बाद कांग्रेस का इतिहास, गांधी जी का जीवन और भारत की राष्ट्रीय प्रगति का इतिहास वस्तुतः एक हो गए।

युद्ध के बाद जब सरकार ने रौलट एक्ट पास किया, तो कांग्रेस ने गान्धी जी के नेतृत्व मे इस का तीव्र विरोध किया। गान्धी जी ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी और देशव्यापी आन्दोलन छिड़ गया। जलियांवाला बाग मे पुलिस ने एक सभा पर गोली चलाई, इस से

देश मे असन्तोप और बढ़ा। अमृतसर मे गाधी जी के प्रयत्न से फिर शासनसुधार स्वीकार कर लिये गये। लेकिन यह भाव चिरस्थायी न रह सका। खिलाफ़त* और जलियावाला-गोली काण्ड के सवाल को लेकर म० गाधी के नेतृत्व मे काग्रेस ने असहयोग की घोपणा कर दी। सैंकड़ों लोगों ने सरकारी नौकरियाँ और पदविया छोड़ दीं। हज़ारों विद्यार्थियों ने स्कूल कालिज छोड दिये, अदालतों और विदेशी कपड़े का बहिष्कार होने लगा। प्रिंस आफ़ वेल्स का उनके भारत आने पर बहिष्कार किया गया। मौ० मुहम्मद अली और शौकतअली के नेतृत्व मे मुसलमानों ने भी इस आन्दोलन मे पूरा साथ दिया। काग्रेस स्वयं-सेवक दल को गैरसरकारी कानूनी करार देने से इस संघर्ष ने सत्याग्रहका रूप धारण कर लिया। देशबन्धु श्री चितरंजनदास और पं० मोतीलाल नेहरू लाखों की आमदनी छोड कर सत्याग्रह का नेतृत्व करने लगे। २०००० सत्याग्रही स्वयं सेवक जेलों मे पहुँच गये। गांधी जी ने बारडोली मे लगानबन्दी का सत्याग्रह करने की घोषणा की, लेकिन इन्ही दिनो चौरीचौरा का हत्याकाण्ड हो गया। गाधी जी का यह संग्राम अहिंसात्मक था। उन्होंने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। कुछ ही समय मे काग्रेस का प्रभाव समस्त देश मे बहुत

---

* गत महायुद्ध के बाद ब्रिटेन, फ्रांस आदि विजयी राष्ट्रों ने टर्की का अग-भग कर दिया, उससे कई प्रदेश छीन लिए। टर्की का सुलतान समस्त मुस्लिम ससार का धर्मगुरु था। उसे खलीफा कहते थे। खलीफ़ा के साथ किये गये इस दुर्व्यवहार से सब मुसलमानों मे तीव्र असन्तोष फैला और उसी के नाम पर खिलाफ़त आन्दोलन चला।

कम हो गया। इन दिनों हिन्दू मुसलिम दंगे अधिक होने लगे। दिल्ली में स्वामी श्रद्धानन्द जी की एक मुस्लिम ने हत्या कर डाली।

कुछ साल ऐसे ही बीते। कांग्रेस ने कौंसिलों में जाकर काम शुरू किया। लेकिन देश के वातावरण पर कांग्रेस का प्रभाव कम ही रहा था, परन्तु जब सरकार ने भारत को नये शासन सुधार देने की जाँच के लिए साइमन कमीशन विठाया, तब उसमे एक भी भारतीय न देखकर समस्त भारत मे फिर असंतोप छागया। साइमन कमीशन का देश-व्यापी वहिष्कार हुआ। पं० मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व मे सब राजनैतिक दलों ने शासन-विधान की योजना तैयार की। कलकत्ता कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा मांग की कि सरकार एक वर्ष तक औपनिवेशिक स्वाराज्य दे दे, अन्यथा कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग करेगी। लाहौर में पं० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व मे ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद और पूर्ण स्वतन्त्रता की घोपणा का प्रस्ताव पास कर दिया गया। तव से अव तक कांग्रेस का ध्येय यही है।

स्वराज्य प्राप्ति के लिए कांग्रेस ने १६३० मे सत्याग्रह कर दिया। कई कानून तोड़े गये और ५०—६० हजार स्वयं सेवक गिरफ़्तार हो गये। गांधी-वायसराय समझौते से इस सत्याग्रह की समाप्ति हुई। गांधी जी काँग्रेस की ओर से गोलमेज कान्फ्रैंस मे भाग लेने के लिए लण्डन गये। वहाँ से आते ही उन्होंने दूसरी वार सत्याग्रह जारी कर दिया। लेकिन १६३४ मे यह वापस ले लिया गया।

जब १६३७ मे नया प्रान्तीय शासन शुरू हुआ, तो कांग्रेस ने भी चुनाव लड़े। कांग्रेस को इन चुनावों मे इतनी सफलता मिली कि

सात प्रांतों मे मद्रास, वम्बई, संयुक्त प्रान्त, विहार उड़ीसा, और मध्यप्रदेश मे कांग्रेसी मंत्रिमण्डल वन गये। पीछे से सीमा-प्रान्त और आसाम मे भी कॉग्रेसी सरकार स्थापित हो गई।

प्रान्तो का शासन-सूत्र हाथ मे लेते ही कांग्रेस ने शराव-वन्दी का भारी कदम उठाया। इससे लाखों रुपये की हानि उठानी पड़ी। अस्पृश्यता निवारण के सिलसिले मे तथा किसानों और मजदूरों की सहायता के लिए कई कानून पास किये गये। मंत्रियों का वेतन ५०० रुपया मासिक नियत किया गया। इस समय कांग्रेस का सम्मान इतना अधिक व्यापक था कि १९३८ मे कांग्रेस के सदस्यों की संख्या ६० लाख हो गई, जब कि दो वर्ष पूर्व यह संख्या सिर्फ ६ लाख थी।

आर्थिक क्षेत्र मे कांग्रेस ने पं० जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व मे राष्ट्रनिर्माण-योजना समिति वनाई। जिसका उल्लेख पृष्ठ ८९ पर किया जा चुका है।

कांग्रेस आठ प्रान्तों का शासन-चक्र चलाती रहती, यदि दो साल वाद ही एक महान घटना न हो जाती। १९३९ में यूरोप में युद्ध छिड़ गया। ब्रिटिश सरकार के साथ भारत सरकार ने भी युद्ध मे सम्मिलित होने की घोषणा कर दी। कांग्रेस ने युद्ध-प्रयत्नो मे सहयोग देने से इन्कार कर दिया और सरकारों से स्तीफ़ा दे दिया।

हिन्दू-महासभा—१९१० मे इलाहावाद मे प्रमुख हिन्दू नेताओ ने पहली वार हिन्दू-महासभा का संगठन किया था और इसका प्रधान कार्यालय इलाहावाद मे ही रखने का निश्चय किया। १९११ ई० मे अमृतसर मे इसका पहला अधिवेशन हुआ था। युद्ध के

दिनों मे इसकी हलचलें शिथिल सी हो गई। १६११ मे दिल्ली मे इसका एक अधिवेशन अवश्य हुआ, लेकिन उसमे भी कोई विशेषता न आई।

१६२३ मे आर्य समाज के प्रमुख नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी ने प्रवेश करके इसमें प्राण-संचार कर दिया। हिन्दू मुसलमानों के दंगों और हिन्दुओं को भारी तादाद मे मुसलमान बनाने के आन्दोलन की प्रतिक्रिया हुई। काँग्रेस का प्रभाव कम हो चुका था। हिन्दू संगठन और शुद्धि का संदेश सारे नेताओं ने देश में सुनाया। इसी वर्ष बनारस मे हिन्दू महासभा का जो अधिवेशन हुआ, उसमें १५०० प्रतिनिधियों के अलावा देश के कोने-कोने से हजारों दर्शक सम्मिलित हुए थे। पं० मदनमोहन मालवीय जी इसके सभापति थे। स्वामी श्रद्धानन्द, मालवीय जी और ला० लाजपतराय जैसे प्रभावशाली नेताओं के सहयोग से हिन्दूमहासभा का संगठन और प्रभाव बहुत व्यापक हो गया। अपने विचारों का प्रचार करने के लिये हिन्दू सभा ने १६२७ मे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' नामक दैनिक पत्र को कर्ज़ के तौर पर अच्छी रकम दी। कुछ समय तक हिन्दू-महासभा का काम ख़ूब चला। लेकिन पीछे से स्व० श्रद्धानन्द जी और ला० लाजपतराय के बलिदान के बाद हिन्दू महासभा के कार्यकर्ताओं और नेताओं का काँग्रेस से विरोध बढ़ गया। यद्यपि १६२८ मे हिन्दू सभा के प्रधान डा० मुंजे ने साइमन कमीशन के विरोध मे काँग्रेस का साथ दिया था, फिर भी भाई परमानन्द जी के नेतृत्व मे हिन्दू सभा मे एक ऐसा दल बढ़ रहा था, जो काँग्रेस की नीति को मुस्लिम-पक्षपाती

समझता था । मुस्लिमलीग के नेताओ की साम्प्रदायिकता की प्रतिक्रिया इस दल मे हो रही थी । इसका कथन यह था कि कॉग्रेस अनुचित रूप से मुसलमानों को विशेषाधिकार देने का समर्थन करती है और इसी कारण साम्प्रदायिक मुसलमानों के हौसले बढ़ते जाते हैं और वे अपनी मॉगे अनुचित रूप से बढ़ाते जाते हैं । जब कॉग्रेस ने ब्रिटिश प्रधान मंत्री के दिये हुए साम्प्रदायिक निर्णय को बुरा मानते हुए भी न स्वीकार करने की और न रद्द करने की घोषणा की तब हिन्दू महासभा मे कॉग्रेस के प्रति विरोध और भी बढ़ गया । शनैः शनैः इस का दृष्टिकोण भी मुस्लिम लीग की बढती हुई साम्प्रदायिकता को देख कर साम्प्रदायिक होता गया और यह विशुद्ध राष्ट्रीय रूप मे विचार करना छोड़ कर संकुचित दृष्टिकोण से हर एक प्रश्न पर विचार करने लगी । १९२७ ई० मे वीर सावरकर के हिन्दू महासभा मे आने पर फिर कुछ उत्साह पैदा हुआ । जब मुसलमान नेताओं ने मुसलमानों को एक पृथक् राष्ट्र मानने का अन्दोलन किया या अल्प-संख्यक होने के नाम पर प्रजातंत्र या हिन्दू बहुमत के शासन का विरोध करना शुरू किया, तो श्री सावरकर ने भी घोषणा की कि हिन्दू ही भारत मे एक राष्ट्र है । दूसरी जातियॉ ठीक उसी तरह अल्प-संख्यक जातियॉ हैं, जैसे जर्मनी मे जर्मन एक राष्ट्र है और यहूदी अल्प-संख्यक जाति । मुसलमान इस देश मे रहना चाहे तो हिन्दुओं से समझौता करके ही रह सकते हैं ।

पिछले कुछ वर्षों से हिन्दू महासभा हिन्दू संगठन कुरीति निवारण और शुद्धि आदि धार्मिक क्षेत्र को छोड़ चुकी थी और अब तो वह

बिलकुल एक राजनैतिक संस्था बन गई है। इसने भी अपना राजनैतिक उद्देश्य पूरी स्वतन्त्रता घोषित किया और एक दम औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करने की माँग की। १६३६ के प्रस्ताव मे अल्प-संख्यक जातियों के अधिकारों की रक्षा का अश्वासन देते हुए भी यह बहुत ज़ोरों से कहा गया कि ब्रिटिश सरकार की इस नीति को हम मानने को कभी तैयार नहीं है कि हिन्दू-मुसलमानों के आपसी मेल के बाद ही स्वराज्य दिया जायगा। साम्प्रदायिक निर्णय का तीव्र विरोध किया गया।

मुस्लिम लीग—आल-इण्डिया मुस्लिम लीग को यद्यपि भारत के सब मुसलमानों का संगठन नही कह सकते, बहुत से मुसलमान काग्रेस के साथ भी हैं, तथापि भारत के अधिकांश मुसलमान मुस्लिम लीग के साथ हैं। भारत के राजनैतिक इतिहास मे अपनी विशेष स्थिति के कारण इसका महत्त्व बहुत बढ़ गया है। सरकार और काग्रेस दोनों ही अपने अपने बल की वृद्धि के लिए इसे अपने साथ रखना चाहते है और यही कारण है कि इसे बिना किसी विशेष स्थान, बलिदान या संघर्ष के अनेक भारी सफलताएँ मिल गई हैं। उनसे इसका स्थान और महत्त्व और भी बढ़ गया है। १६१६ मे लखनऊ मे काग्रेस से समझौता करके लीग ने मुसलमानों के लिए विशेष अधिकार प्राप्त कर लिए थे। इसके बाद यह सरकार के साथ मिल गई और साम्प्रदायिक निर्णय या कम्युनल एवार्ड प्राप्त करने मे सफल हो गई। इसके बाद भी जब-जब कांग्रेस ने भारत की पूर्ण स्वाधीनता के नाम पर इससे समझौता करने का यत्न किया, सरकार ने लीग

और मुसलानों का नाम लेकर ही उसमे रुकावट डाली। आज लीग भारतवर्ष के दो टुकड़ों मे बॉट देने की मॉग कर रही है।

आल-इण्डिया मुस्लिम लीग की स्थापना १६०६ मे हुई। इसका उद्देश्य मुसलमानों मे पृथकता का भाव पैदा करना और राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना था। १६१६ मे काग्रेस से समझौते के कारण इसका प्रभाव कुछ बढ़ गया था, लेकिन पीछे सदस्यों मे आपसी फूट और वैमनस्य के कारण इसका प्रभाव नहीं के बराबर हो गया। यह नवाबों, जागीरदारों, जमीदारो या सम्पन्न मुसलमानो की सस्था रही। इसका साधारण जनता मे कोई प्रभाव न था। १६३६ तक यही हालत रही। मि० जिन्हा के हाथ मे जब से मुस्लिम लीग की बागडोर आई, इसका संगठन और प्रभाव बहुत बढ़ गया। नये विधान के अनुसार प्रान्तीय शासन के अमल मे आने पर मुस्लिम लीग ने काग्रेसी सरकारों के मार्ग मे रुकावटे पैदा की। इन्हे दूर करने व केन्द्रीय स्वाधीनता के उद्देश्य से सहयोग प्राप्त करने के लिये गाधी जी ने मि० जिन्हा से समझौते की बात-चीत प्रारंम्भ की लेकिन इस बात-चीत का कोई फल न निकला। उधर ब्रिटिश सरकार कोई भी नया वैधानिक कदम उठाने से पहले हिन्दू मुसलमानों के समझौते पर जोर देती रहीं। इससे विवश होकर काग्रेस ने समझौते की बड़ी कोशिशे की, लेकिन मुस्लिम लीग किसी समझौते पर नहीं पहुँच सकी, वह लगातार कांग्रेस से दूर होती गई।

मुस्लिम लीग का संगठन ज्यों ज्यों कायम होता गया, त्यों त्यों ...समे नया रक्त भी आने लगा और उसके प्रभाव के कारण १६३७

में इसने अपना उद्देश्य भारत की पूर्ण स्वाधीनता घोपित कर दिया, परन्तु साथ ही मुसलमानों के स्वार्थों और अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी पर जोर दिया। दो साल तक वह अल्प-संख्यकों के अधिकारों के स्पष्टीकरण का आन्दोलन करती रही। काँग्रेस ने कई बार अल्प-संख्यको के धर्म, भापा, संस्कृति, आर्थिक और राजनीतिक हितों की रक्षा का आश्वासन दिया, लेकिन फिर भी लीग ने उस पर कोई ध्यान नही दिया। वह अपने धर्म, संस्कृति, भापा की ख़तरे की आवाज़ वार वार उठाती रही।

१६३८ के अन्त मे यूरोपीय युद्ध प्रारंभ हो गया। इस अवसर पर लीग ने ख़ूब लाभ उठाया और कहा कि युद्ध में मुसलमानों का सहयोग तभी मिल सकता है, जब कि सरकार मुसलमानों की एक मात्र संस्था के रूप मे लीग को स्वीकार करके मुसलमानों की सब माँग स्वीकार करे। भारत मे इंग्लैंण्ड सा प्रजातंत्र शासन नहीं चल सकता, क्योंकि उसका अर्थ होगा बहुसंख्यक हिन्दुओं का राज, और मुसलमान हिन्दुओं के शासन मे रहना स्वीकार नहीं कर सकते। भारतीय लोक-मत लिये विना भारत को युद्ध मे डालने के विरुद्ध जब कॉग्रेसी सरकारों ने स्तीफ़े दे दिये, तब मि० जिन्हा ने मुसलमानों से मुक्तिदिवस —काँग्रेसी शासन से राहत का दिन—मनाने की अपील की। आज तक भी मुस्लिम लीग सरकार से पूर्ण आश्वासन पाये विना युद्ध मे सहयोग का विरोध कर रही है।

१६४० में मुस्लिम लीग ने एक नया कदम उठाया और लाहौर के अधिवेशन मे भारत को दो राष्ट्रों मे बाँटने की माँग पेश की।

प्रस्ताव मे कहा गया था कि संघविधान और यूरोपीय देशों का सा प्रजातंत्र मुसलमानों को कभी स्वीकृत नही हो सकता। मुसलमान किसी भी ऐसे विधान को नहीं मानेंगे, जो उनकी सम्मति व स्वीकृति से न बनाया गया हो। मुसलमान ऐसा ही विधान स्वीकार कर सकते हैं, जिसका आधार भारत के मुस्लिम-प्रधान प्रान्तों (पश्चिमोत्तर और पूर्वोत्तर) को एक अलग पूर्ण स्वतंत्र राष्ट्र बनाना हो। भारत के दूसरे हिन्दू-प्रधान प्रान्तों मे भी मुसलमानों के हितों की पूरी गारंटी दी जावे। इस तरह के दो टुकड़े कर देने की माँग का नाम ही पाकिस्तान योजना प्रसिद्ध हो गया है। यह भी माँग की गई कि इन दोनों राष्ट्रों को अपनी अपनी सेना, अपनी मुद्रा आदि सब का पूर्ण अधिकार हो। इसका आधार उनकी यह कल्पना है कि मुसलमान अलग राजनैतिक जाति है। १९४१ के अधिवेशन मे मुस्लिम लीग ने हैदराबाद की मुस्लिम शासक की रियासत को भी पाकिस्तान के साथ जोड़ने की माँग की है।

यद्यपि लीग ने पाकिस्तान का प्रस्ताव पेश कर दिया है, तथापि सर सिकन्दर हयात खाँ आदि अनेक प्रमुख लीग नेता इसका खुल्लम-खुल्ला विरोध भी कर रहे हैं।

अन्य राजनैतिक दल—इन प्रमुख राजनैतिक संस्थाओं के अलावा आज भी अनेक राजनैतिक संस्थाएँ हैं, जो विविध क्षेत्रों मे अपना काम कर रही हैं। ब्रिटिश भारत की जागृति का प्रभाव रियासतों पर भी पड़ा है। वहाँ की प्रजा भी उत्तरदायी शासन के लिए आन्दोलन कर रही है। रियासती लोक-परिषद की जगह जगह शाखाएँ हैं और

विविध रियासतों मे प्रजा-मण्डल नाम की संस्थाएँ इस दिशा मे अच्छा काम कर रही है। इनका उद्देश्य राजा की छत्र-छाया मे उत्तरदायी शासन प्राप्त करना है। पं० जवाहरलाल नेहरू, डा० पट्टाभिसीता-रमैया आदि कांग्रेसी नेताओं का इसे पूर्ण सहयोग प्राप्त है।

नरम दल के राजनीतिज्ञों का यद्यपि अब जनता पर विशेष प्रभाव नहीं है, तथापि अपनी योग्यता, विद्वत्ता, ऊँची सामाजिक स्थिति के कारण इनका संगठन अब तक भी विद्यमान है। सर तेज बहादुर सप्रू, श्रीनिवास शास्त्री, सर चिमनलाल सीतलवाड आदि प्रमुख नरमदली नेता है। पूने की प्रसिद्ध सर्वेण्ट आफ़ इण्डिया सोसायटी अपने क्षेत्र मे प्रशंसनीय काम कर रही है।

पिछले प्रान्तीय चुनाव के समय या उससे पहले की अनेक संस्थाएँ अपने अपने प्रान्त मे काम कर रही हैं। मद्रास मे अब्राह्मणों द्वारा स्थापित जस्टिस पार्टी ने माण्टफोर्ड सुधारों पर अमल किया था। अब इसका प्रभाव नही के बराबर है। इसका कार्य-क्रम नरम दल जैसा है। बंगाल के प्रधान मन्त्री मि० फ़जलुलहक़ ने १६३७ मे चुनाव के समय कृषक प्रजा पार्टी की स्थापना की थी। इसका कार्य-क्रम किसानों के दुःख दूर करना था। इसे चुनाव मे भारी सफलता हुई और इसके मुकाबले मे मुस्लिमलीग के कई प्रसिद्ध नेता भी हार गये लेकिन पीछे से यह मुस्लिम लीग के साथ मिल गई और संयुक्त मंत्रिमण्डल बनाया। इस कारण पार्टी मे कई मतभेद उत्पन्न हो गये है। युक्त प्रान्त में जमींदारों ने 'नेशनल एग्रीकलचर पार्टी' चुनाव लड़ने के लिए स्थापित की थी। पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी उक्त सब

दलों से अधिक संगठित है। इसमे यद्यपि अधिकाश मुस्लिम सदस्य हैं, तथापि अम्बाला डिविजन के जाट हिन्दू और कई सिक्ख भी इसमे शामिल हैं। इस पार्टी के नेता सर सिकन्दर हयात खाँ हैं और इसका मुख्य कार्य-क्रम जमीदारो और किसानो की उन्नति है।

राष्ट्र-निर्माण

कांग्रेस से यों तो अलग लेकिन उसी से प्रादुर्भूत अन्य अनेक संस्थाएँ राष्ट्र निर्माण के कार्य मे सहयोग दे रही हैं। चरखा सघ का समस्त देश मे व्यापक सगठन है और वह हाथ कता, हाथ बुना खद्दर सूती रेशमी और ऊनी कपडा काफ़ी मात्रा मे बनवा कर बेचता है इससे हजारो कतैये-बुनकर-रंगरेज़ धोबी आदि को काम मिलता है। अब खद्दर पहले की अपेक्षा अच्छा बुना जाने लगा है। ग्रामोद्योग संध अभी दो तीन बरसों से काम करने लगा है। इसका उद्देश्य फिर से सब ग्रामीण धन्धो को पुनरुज्जीवित करना है।

म० गांधी द्वारा सस्थापित हरिजन सेवक सघ भी सामाजिक दिशा मे अपना काम कर रहा है। उसके प्रचारात्मक कार्य के सिवा अनथक और तपस्वी श्री अमृतलाल ठक्कर की देख रेख मे रचनात्मक कार्य भी बहुत हो रहा है। हरिजनों की सफाई, स्वास्थ्य, कारीगरी शिक्षा और पढ़ाई, देव-मन्दिर, कुएँ आदि सब ओर ध्यान दिया जा रहा है। इस संघ के प्रधान श्री घनश्याम दास बिडला हैं।

वस्तुतः राजनैतिक जागृति के साथ साथ सामाजिक जागृति भी बहुत हुई है। जागृत जनता के प्रकरण मे हमने बताया है कि किस तरह तेज़ी से आर्य समाज, ब्रह्मसमाज आदि के प्रयत्नों से सामाजिक

सुधार हो रहे हैं। छोटी छोटी जातियों और वर्गों के भी संगठन सारे देश मे छा गये हैं और अपनी अपनी जाति और अपनी अपनी बिरादरी के सामाजिक सुधार का प्रयत्न कर रहे है। आदर्श, महत्वाकांक्षाये और उद्देश्य सब बदल गये हैं। लोग 'बाबा वाक्य प्रमाणम्' नहीं मानते, वे तर्क से काम लेने लगे हैं। आल-इण्डिया विमैन कांफ्रैस स्त्रियों मे जागृति का प्रचार कर रही है। जीव-दया-प्रचारिणी सभा भारत मे पशुबध रोकने के लिये प्रयत्न कर रही है।

शिक्षा—शिक्षा क्षेत्र मे भी भारत मे कई आन्दोलन चल रहे है। यूनिवर्सिटी और स्कूलों की वर्तमान शिक्षा के विरुद्ध शिक्षा-शास्त्रियों में काफ़ी असंतोष बढ़ चुका है और अब शिक्षा-पद्धति को बदलने के प्रस्ताव आने लगे हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों मे दस्तकारी व हुनर की शिक्षा पर जोर देने की आवाज़ उठ रही है। कभी शिक्षा का उद्देश्य नौकरी था, लेकिन अब नौकरियाँ भर चुकी है और शिक्षितों मे बेकारी बढ़ रही है। इसलिए शिक्षा के मौलिक उद्देश्य मे परिवर्तन पर गंम्भीरता से विचार किया जाने लगा है। भारत सरकार ने १६३६ मे शिक्षा विशेषज्ञों की एक कमेटी नियुक्त की थी। एबटवुड रिपोर्ट के नाम से इसकी सिफारिशें प्रसिद्ध है। इनमे मुख्य सिफारिशे निम्नलिखित हैं—कालेज का कोर्स तीन साल का कर दिया जाय, इन्टरमीडियेट दर्जा उड़ा दिया जाय, स्कूल का कोर्स ११ साल का हो जाय, व्यापार और दस्तकारी की शिक्षा पर ख़ास ज़ोर दिया जाय। म० गांधी की बेसिक शिक्षा-पद्धति की चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं। प्रांतों से कांग्रेसी सरकारों के अस्तीफ़ा दे

देने के कारण इस पद्धति के प्रचार मे बहुत बाधा आई है। फिर भी तालीम-संघ, जामियामिलिया आदि कुछ संस्थाएँ इस दिशा मे काम कर रही हैं। काश्मीर सरकार भी इसमे पूरी दिलचस्पी ले रही है।

यद्यपि अब शिक्षा-शास्त्री इस दिशा मे सोचने लगे हैं कि शिक्षा का उद्देश्य नौकरी नही है, स्कूल-शिक्षा प्राप्त करके हर एक विद्यार्थी को कालेज मे न जा कर अपने अपने पेशे की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये, फिर भी कालेजों और विद्यार्थियो की संख्या बढ़ रही है। १९३१—३२ मे ब्रिटिश भारत मे २४३ आर्ट कालेज थे, १९३६-३७ मे २७२ कालेज हो गये, इसी तरह विद्यार्थियों की संख्या भी ७२३५४ से बढ़ कर ८६४०७ हो गई। माध्यमिक शिक्षा मे उक्त वर्षों मे ४०५ स्कूलों और १२८३७७ विद्यार्थियों की वृद्धि हो गई। हाई स्कूल पहले २८०१ थे, अब ३२४२ हो गये हैं और इनमे १०२२५८० कुल विद्यार्थी पढ़ते हैं। लेकिन प्राइमरी स्कूलों की संख्या समस्त देश मे इन वर्षों मे ४००० के करीब घट गई, यद्यपि विद्यार्थियों की संख्या बढ गई है। सरकारी गैर सरकारी यूनिवर्सिटियों की संख्या १२ है।

कन्या-शिक्षा की ओर भी ध्यान बढ़ने लगा है, उक्त पाच वर्षों मे यहाँ ब्रिटिश भारत मे विद्यार्थियों की भाँति ७'१ फीसदी वृद्धि हुई है। वहाँ लड़कियों की भरती २५'९ फीसदी बढ़ गई है। लेकिन अब भी लड़कियाँ बहुत पीछे हैं। जहाँ लड़कियाँ ३१३८३५७ पढती हैं, वहाँ लडके ११००७६८३ पढ़ते है। कन्या-शिक्षालयों की संख्या ३६८७१ है, परन्तु लडकों के शिक्षामण्डलों की संख्या १८९३६२ है। स्त्रियों के लिए ब्रिटिश भारत मे ४० आर्ट कालेज हैं।

दस्तकारी स्कूलों की संख्या उक्त पाँच वर्षों में ४८२ से बढ़ कर ५३६ हो गई है। इनमें ३० लाख विद्यार्थी पढ़ते हैं। युद्ध के कारण जगह जगह और भी दस्तकारी स्कूल खुल गये हैं और हज़ारों युवक उसमे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

अब विभिन्न प्रान्तों के स्कूलों में अपनी अपनी प्रान्तीय भाषा द्वारा शिक्षा देने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

शिक्षा के सम्बन्ध में उन्नति अवश्य हो रही है, लेकिन अब भी भारत इस दिशा में बहुत पीछे है। केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारें प्राथमिक या उच्चशिक्षा पर कुल ११ करोड़ रुपया ख़र्च करती हैं अर्थात् ६॥ आना प्रति व्यक्ति। लेकिन ब्रिटिश सरकार प्रति छात्र १६ रु० और रूस की सोवियट सरकार ३० रूबल खर्च करती है। १६३५-३६ मे विभिन्न देशों में ५ से २० साल तक की आयु के लड़कों मे से प्रतिशत स्कूलों में जाने वाले छात्रों की संख्या निम्नलिखित थी कैनेडा ७१ फ़ीसदी, आस्ट्रेलिया ६८ फ़ीसदी, इंग्लैण्ड ७६ फ़ीसदी, दक्षिण अफ्रीका ७३ फ़ीसदी और ब्रिटिश भारत कुल १४ फ़ीसदी। देश के कुल कालेजों में करीब १ लाख विद्यार्थी पढ़ते हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि प्रति ३२०० आबादी के पीछे एक विद्यार्थी ऊँची शिक्षा पा रहा है। यूरोप मे औसत इससे ५-६ गुना है।

विभिन्न प्रांतों मे अपनी अपनी भाषाओं के सम्मेलन भी साधारण शिक्षा प्रचार में काफ़ी भाग ले रहे हैं। बंगला, गुजराती, मराठी साहित्य सम्मेलन उत्तरी भारत मे है। हिन्दी के बोलने वाले समस्त भारत के ५० फीसदी हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का पहले प्रचार-

क्षेत्र केवल उत्तरी भारत था, परन्तु अब विभिन्न प्रांतों मे भी प्रचार हो रहा है। दक्षिण भारत मे अब हजारों विद्यार्थी हिंदी पढ़ रहे हैं और लाखों हिंदी जानते हैं। आसाम, महाराष्ट्र और सिंध मे भी राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति हिन्दी का प्रचार कर रही है। उस्मानिया यूनिवर्सिटी और अंजुमने-उर्दू-ए-तरक्की उर्दू साहित्य की उन्नति मे प्रयत्नशील हैं। १९३७-३८ मे भारत मे कुल २१३३ अखबारे व ३३१८ पत्रिकाएँ निकलती थी। इसी वर्ष ३८६२ अंगरेजी और १४८३४ देसी भाषा की पुस्तकें छपी।

भारत की दरिद्रता

भारतवर्ष प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से सम्पन्न होते हुए भी सम्पन्न नहीं है। भारत की स्थिति जानने के लिये कुछ आवश्यक आँकड़े हम नीचे दे रहे हैं।

किसान—भारत मे ७ लाख गाँव हैं और ९० फीसदी जनता इन्ही गावों मे रहती हैं। करीब ४०० व्यक्ति एक गांव मे रहते हैं। युक्तप्रान्त की एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट के अनुसार भारतीय किसान के पास और ३·३ एकड़ भूमि है, जिस पर वह खेती करता है। जब कि इंग्लैण्ड का किसान २६ एकड़ और कैनाडा का किसान १४० एकड जमीन बोता है। भारतीय किसान पर आश्रित रहने वाले परिवार को भी गिना जाय, तो प्रति भारतीय किसान १·२ एकड़ भूमि ही पड़ती है। फिर यहाँ की भूमि की पैदावार भी अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। जावा में प्रति एकड़ ४० टन गन्ना पैदा होता है, वहाँ भारत मे केवल १० टन ही गन्ना होता है। अमेरिका मे प्रति एकड़

२०० पौंड रुई होती है, मिश्र में ४५० पौंड लेकिन भारत मे सिर्फ़ ९८ पौंड रुई पैदा होती है। भारत सरकार खेती पर ३१ रु० प्रति हज़ार एकड़ ख़र्च करती है, जब कि इंग्लैण्ड मे ब्रिटिश सरकार १३८० रु० प्रति हज़ार एकड़ खर्च करती है। भारत मे अब भी ८४ फ़ीसदी भूमि ऐसी है, जिसमे नहरों द्वारा सिंचाई नहीं होती। पैमाइश से पता लगाया गया है कि भारत में ५१ करोड़ २० लाख एकड़ भूमि पर खेती हो सकती है। ६ करोड़ २० लाख एकड़ मे तो जंगल है १३ करोड़ ७० लाख एकड़ परती या बंजर ज़मीन है। सिर्फ़ ५ करोड़ ३० लाख एकड़ भूमि को नहरें सींचती हैं।

कल कारखाने—भारत के कल-कारखानों की उपज भी बहुत कम है। हिसाब लगाया गया है कि यहाँ प्रति व्यक्ति व्यावसायिक पैदावार २०-२५ रु० वार्षिक के लगभग है। इंग्लैण्ड, पश्चिमी यूरोप और अमेरिका मे प्रति व्यक्ति ६०० से १२०० रु० तक का माल पैदा होता है। इंग्लैण्ड से भारत वर्ष आबादी में आठगुना है, फिर भी रेलवे लाइन बराबर लम्बी है। उद्योग धन्धों की हालत तो पिछले ५० साल से ख़राब हो गई। लोग उद्योग धन्धे छोड़ छोड़ कर खेती पर भार हो गये। १८८१ में ५८ फ़ीसदी, १८९१ मे ६१·०६ फ़ीसदी, १९०१ में ६६·५ फ़ीसदी और १९३१ में ७२·८३ फ़ीसदी लोग खेती पर गुज़ारा करने लगे। शाही कमीशन के अनुसार यह संख्या ७३·९ है। लेकिन दूसरे मुल्कों मे लोग खेती को छोड़ छोड़ कर उद्योग धंधों की ओर बढ़ने लगे हैं। डैनमार्क मे १८८० से १९२१ मे यह संख्या ७१ से ५७ फ़ीसदी रह गई। इंग्लैण्ड में १८७१ से १९२१ में यह संख्या ३८·२

से घट कर २०'७ रह गई। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जब अन्य देशों मे उद्योग धंधे बढ़ रहे हैं तब यहाँ पिछले ५० सालों मे बहुत घट गये हैं १६३७ में यहाँ साल भर काम करने वाले या मौसमी कारखानों की संख्या ८६३० थी, जिनमे २८३००० कारीगर काम करते थे।

भारत मे निम्नलिखित प्रमुख व्यवसाय चल रहे हैं, जूट, कपड़ा चीनी, लोहा, फ़िल्म और कागज। परन्तु अभी तक भी भारत ने १६३८-३६ मे ३६४५६००० गज सूत और ६११२६४००० गज कपडा विदेशों से मंगाया। यद्यपि लोहे की यहाँ कमी नहीं है और प्राय' प्रति वर्ष लाखों टन कच्चा लोहा विदेश जाता है पर गत वर्ष ही ३६६००० टन लोहा बाहर से मंगाया गया, अखबारों का कागज तो यहाँ बनता ही नही। अच्छा बढिया कागज भी विदेशों से आता है। १६३७-३८ मे ३०००००० हण्डरवेट कागज मंगाया गया था। साइकल और रेडियो जैसी चीजे अभी यहाँ बन नहीं सकती, अब युद्ध की वजह से फिर कुछ धन्धे पनपने लगे हैं। शस्त्रास्त्र, मोटर आदि बनाने की ओर भी सरकार का ध्यान जा रहा है।

भारत का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भारत के अनुकूल रहता है। १६३८-३६ मे २६४०००००० रुपये का निर्यात आयात की अपेक्षा ज्यादा हुआ, लेकिन इसमे से १२ करोड़ रु० का तो सोना था, जिसका जाना भारत की दृष्टि से ठीक नहीं है।

एक साधारण अच्छे वर्ष मे भारतवर्ष की कुल राष्ट्रीय आय १८ अरब रुपये और इंग्लैण्ड की वार्षिक आय ४० अरब रु० होती है।

इसका अर्थ यह हुआ कि प्रति भारतीय व्यक्ति की एक दिन की आय दो आना है। इंग्लैण्ड मे प्रति अंगरेज़ की एक दिन की आय ४५ आना होती है। इग्लैण्ड मे जीवन निर्वाह का व्यय ज़रूर अधिक है लेकिन आय की अपेक्षा व्यय का अनुपात बहुत कम है।

भोजन और स्वास्थ्य—यह भी हिसाब लगाया गया है कि प्रत्येक भारतीय औसतन एक दिन मे १ पौंड (½ सेर) से कुछ ही ऊपर भोजन करता है, जब कि प्रति यूरोपियन की ३-४ पौंड भोजन की खपत होती है। एक सरकारी विशेषज्ञ के अनुसार भारत मे प्रतिवर्ष ८० करोड़ मन दूध निकलता है, जिसका अर्थ यह है कि प्रति व्यक्ति प्रति दिन ७-८ औंस दूध। ग्रेट ब्रिटेन मे प्रति अंगरेज़ के लिये दुगना दूध मिलता है अमेरिका मे भारत की अपेक्षा ४ गुना दूध औसतन प्रत्येक निवासी को मिलता है।

भारतवर्ष का स्वास्थ्य तो लगातार गिरता जा रहा है। सरकार पब्लिक हैल्थ कमिश्नर की १६३५ की रिपोर्ट के अनुसार भारतवर्ष मे मृत्यु संख्या २३'६ प्रति हज़ार है। लेकिन अन्य सब देशों की मृत्यु संख्या इससे बहुत कम है। ग्रेट ब्रिटेन मे १२, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे १०'६, जापान मे १६'८ और हालैण्ड मे ८'७ व्यक्ति प्रति हज़ार मरते है। हालैण्ड मे मरने वाले एक व्यक्ति के पीछे भारत में तीन व्यक्ति मरते हैं। यहाँ एक आदमी की औसत उम्र २६'७ साल है, जब कि इग्लैण्ड मे ५७'६, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे ५६'४, जर्मनी मे ४६'४, फ्रांस मे ५०'५ और जापान मे ४४'५ वर्ष है भारत मे सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिये ६७०० हस्पताल व डिस्पैसरियाँ है

अर्थात् प्रति ४०१८५ व्यक्तियों के पीछे १ हस्पताल। लेकिन जर्मनी मे ६०० व्यक्तियों के पीछे एक सरकारी डाक्टर है, जिसे रोगियों के घर बिना कुछ फीस लिये जाना पड़ता है।

उपर्युक्त ऑकड़े बताते हैं कि भारत मे राष्ट्रनिर्माणकारी कार्यों की ओर कितना ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है।

विभिन्न देशों में सरकारी कर्मचारियों के वेतन

		रुपयों मे प्रति मास
भारत	गवर्नर-जनरल	२१,३३३
	कमाण्डर-इन-चीफ़	८३३३
	बंगाल,यू०पी० बम्बई व मद्रास के गवर्नर	१००००
	पञ्जाव का गवर्नर	८३३३
इङ्गलैण्ड	प्रधान मन्त्री	११११४
	अन्य मन्त्री	५५५५
आस्ट्रेलिया	गवर्नर	३३३३
	मन्त्री	१२७७
जापान	प्रधान मन्त्री	६२२
	अन्य मंत्री	४४०
सं. रा. अमरीका	प्रेजिडैण्ट	१७०६२

ग्यारहवाँ अध्याय

कुछ नई समस्याएं

विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के सामने कुछ ऐसी भीषण समस्याएँ इतने जोरों से आ उपस्थित हुई है कि उनके हल हुए बिना संसार मे शान्ति स्थापित नही हो सकती। इन समस्याओं में सब से महत्त्वपूर्ण समस्या बढ़ती हुई जन-संख्या है।

जन-संख्या

यदि हम ध्रुव प्रदेश को छोड़ दें, तो संसार के स्थल-प्रदेश का क्षेत्रफल ३३ अरब एकड़ ठहरता है। परन्तु खेती के योग्य ज़मीन १३ अरब एकड़ से अधिक नहीं है। इस समय संसार की जन-संख्या २ अरब है। पर यह जन-संख्या प्रतिवर्ष २ करोड़ के हिसाब से बढ़ रही है। अनुमान किया जाता है कि १०० वर्षों में संसार की जन-संख्या दुगुनी हो जायगी। इसलिए कुछ ही सदियों में प्रति मनुष्य के लिए खेती के योग्य एक एकड़ ज़मीन भी न मिलेगी।

जो देश विशाल क्षेत्रफल के हैं, या जिन देशों मे आबादी कम और प्रदेश अधिक हैं, उनके सामने तो जन-संख्या और भोजन की समस्या अभी पैदा नहीं हुई, लेकिन छोटे छोटे क्षेत्रफल के देशों के लिए तो यह समस्या जीवन-मरण का प्रश्न बन गई है। यह समस्या कितनी भीषण है, यह जापान के उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी।

जापान की आवादी १६३५ मे ७ करोड़ १० लाख के करीव थी। इस दृष्टि से उसका स्थान संसार के विभिन्न देशों मे पाँचवाँ है। चीन भारत, रूस और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के वाद उसी की आवादी सव से अधिक है। लेकिन इसके मुकाविले मे उसका क्षेत्रफल अनुपात मे बहुत ही कम है। नीचे की तालिका से यह भली भाँति स्पष्ट हो जायगा।

नाम देश	आबादी	क्षेत्रफल वर्गमील	प्रतिमील आवादी
आस्ट्रेलिया	६८,००,०००	३०,००,०००	२.२७
कैनेडा	१,१२,००,०००	३६,६५,०००	३
स रा.अमरीका	१३,००,००,०००	३०,००,०००	४०·३
फ्रास	४,२०,००,०००	२,१२,६००	१६८
रूस	१८,००,००,०००	८१,४४,०००	२२
भारत	४० ००,००,०००	१८,०८,६८०	२२१·२
जापान	७,१०,००,०००	१,४७,०००	४७५
आरजैण्टाइना	१,१७,००,०००	१०,८०,०००	१०·८
चीन	४५,८०,००,०००	४२,७८,०००	१०७
जर्मनी	७,८०,००,०००	२,१०,०००	३७१·४

उपर्युक्त आँकड़े एक ही वात को स्पष्ट करते है कि जहाँ आस्ट्रेलिया, कैनेडा, संयुक्त राष्ट्र अमरीका, रूस, आरजैण्टाइना मे जन-संख्या बहुत थोड़ी है, वहा फ्रास, भारत और खास कर जापान मे देश के क्षेत्रफल को देखते हुए जन-संख्या वहुत अधिक है। उसकी जन-संख्या जिस अनुपात से बढ़ रही है उसे देखते हुए यह जरूरी

है कि उसे बसने के लिए जापान से भिन्न कोई विस्तृत प्रदेश चाहिए। जापानी अपने देश में रह नहीं सकते। वे दूसरे देशों में, जहाँ की आबादी बहुत कम है, जाकर बस सकते थे, लेकिन आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड ने १६०१ में, कैनेडा ने १६२७ में, न्यूगायना ने १६३२ में, मलाया ने १६३३ में, आरजैण्टाइना ने १६३४ में, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका व मैक्सिको ने १६३६ मे जापानियों के आकर बसने पर पाबन्दी लगा दी है। यही हाल अन्य राष्ट्रों का है। अब जापानी जावें तो कहाँ, भ्रातृभाव का सब जगह तो अभाव है। लाचार होकर जापान चीन में अपना पैर जबर्दस्ती बढ़ाता है।

जब रहने को ही मकान नहीं है, तब खेती करके अपने लायक अन्न उपजाने की तो बात ही दूर रही। आस्ट्रेलिया में प्रति व्यक्ति १४० एकड़ भूमि पर खेती हो सकती है, कैनेडा में ३० एकड़, अमेरिका में ८ एकड़ और जापान मे सिर्फ़ १'५ एकड़। विशेषज्ञों का कहना है कि कम से कम प्रति व्यक्ति ३'५ एकड़ भूमि पर खेती होनी चाहिए। इस तरह जन-संख्या के बढ़ाने का अर्थ है मकान और अन्न दोनों की कमी।

जो समस्या आज जापान के लिए है, वही समस्या इंगलैण्ड के सामने भी है। वहाँ भी ५०५ व्यक्ति प्रति मील रहते हैं। वहाँ भी जितनी ज़मीन है, उसकी सिर्फ २३ फ़ीसदी भूमि पर खेती हो सकती है और आज जो समस्या इंगलैण्ड और जापान के सामने है, वही कल अन्य देशों के सामने आ सकती है। जर्मनी की जन-संख्या भी ज़ोरों से बढ़ रही है। इंगलैण्ड और जापान के बाद उसी की जन-

संख्या प्रतिवर्ग मील सबसे अधिक है। आखिर इस बढ़ती हुई जन-संख्या की समस्या का कोई हल तो निकालना ही चाहिए। जापान और जर्मनी का कहना है कि—अन्य यूरोपियन राष्ट्रों ने अपने क्षेत्र फल से कई गुना विस्तृत प्रदेशों मे अपना साम्राज्य फैला रक्खा है, इसलिए उनके निवास व भोजन की समस्या हल हो गई है, लेकिन हम क्या करे। हमारे लिए सब दरवाजे बन्द हैं। हम बढ़ती हुई जन-संख्या को गला घोट कर क्या मार दे ?

यह समस्या वस्तुत महत्वपूर्ण प्रश्न है। आज संसार मे जो राजनैतिक विरोध और भेदभाव है, उसे देखते हुए इसका कोई हल नही दीख पड़ता। इसका तो एक ही हल है कि—साम्राज्यवादी बंधनों से सब देश मुक्त कर दिये जावे और जिन प्रदेशों मे अभी आबादी बहुत कम है, वहाँ बसने की खुली छुट्टी हो।

सन्तति निग्रह—संसार के अनेक विचारकों ने दुनिया की इस बढ़ती हुई भीषण जन-संख्या पर भय प्रकट किया और उन्होंने कहा कि वह समय आने वाला है, जब कि विज्ञान के समस्त साधनों के बावजूद जनसंख्या के मुकाबले मे पैदावार कम होगी और मनुष्य भूखों मरने लगेगे। अभी तो नये बसे हुए प्रदेश ही यूरोपियन राष्ट्रों को भोजन दे रहे हैं, लेकिन जब वहाँ भी आबादी बढ़ जावेगी, तब क्या होगा। वे अपना अन्न यूरोप न भेज सकेंगे। इसलिए उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि मनुष्य कम से कम सन्तान उत्पन्न करे यूरोप के अनेक भागों मे और विशेष कर फ्रांस मे सन्तति निग्रह का आन्दोलन चल पडा। मनुष्य ब्रह्मचारी नही रह सकता, इसलिए

आन्दोलन ने जोर पकड़ा और जापान मे भी यह आन्दोलन जारी है। इस तरह जन-संख्या की समस्या और भी भीषण हो रही है। पूर्व और पश्चिम मे जो संघर्ष हो रहे हैं, उनका एक मुख्य कारण यह समस्या ही है।

अन्य उपाय—जन-संख्या कम करने के लिए प्रकृति और मनुष्य स्वयं भी जाने या अनजाने प्रयत्न कर बैठता है। बीमारी-महामारी समय समय पर फूट कर करोड़ों आदमियो को नष्ट करती रही है। यूरोप ने महामारियों पर विजय पा लिया है, लेकिन भारत अभी तक भी महामारियों और दुर्भिक्षों का शिकार है। १७९३ से १९०० तक पृथ्वी भर मे युद्धों से ५० लाख से अधिक आदमी नही मरे, पर मि० डिग्बी के कथनानुसार इसी अरसे मे भारत मे सवा दो करोड आदमी भूख से मर गये। भूकम्प, बाढ़ आदि प्राकृतिक उपद्रवों से भी कभी कभी काफी लोग मर जाते हैं। यदि बाढे और युद्ध आकर आबादी को न रोकते, तो यह संदेह था कि चीन की आबादी वहाँ के लिए समस्या बन जाती।

मनुष्य अपने स्वार्थसंघर्ष के कारण जब युद्ध करता है, तब उसकी वेदी पर लाखों मनुष्यों की बलि दे दी जाती है। गत महायुद्ध मे कई लाख सैनिक मर गये या अपाहज होकर संतानोत्पत्ति मे असमर्थ हो गये। वर्तमान वैज्ञानिक युद्ध और मनुष्य की भीषण पैशाचिक वृत्ति के कारण अब केवल सैनिकों का ही संहार नहीं होता लेकिन बमवर्षा, टारपीडो आदि के कारण लाखों निरीह नागरिक दूध-पीते बच्चे, बूढ़े और जवान स्त्री और पुरुष सभी इस महान

प्रलय ताण्डव का शिकार हो रहे हैं। कुछ विचारक युद्ध को भी एक प्राकृतिक देन कह कर इसका स्वागत भी इसी लिये करते है कि इससे जन-संख्या नियमित होती रहती है। लेकिन यह है महान भीषण नृशंस उपाय।

व्यापार और व्यवसाय

जन-संख्या की वृद्धि के साथ साथ व्यवसाय-प्रधान देशों का बढ़ता हुआ व्यापार और व्यवसाय भी एक आर्थिक समस्या के रूप मे हमारे सामने हैं। इंग्लैण्ड और जापान आदि देश अपने लायक अन्न स्वयं पैदा नहीं कर सकते। इसलिये वे व्यवसाय और उद्योग धन्धों की उन्नति करते हैं। अपना तैयार माल बाहर भेजकर वे अन्न मँगाते हैं। लेकिन इसमे भी उन्हे दो बाधाओं का सामना करना पड़ता है। एक तो कच्चा माल लेने के लिए उन्हें दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। जापान और इंग्लैण्ड दोनों का मुख्य व्यवसाय कपड़ा है और रूई के लिये दोनों देश परावलम्बी हैं। फिर प्रत्येक देश में स्वावलम्बन की जो भावना फैल रही है, उसके कारण किस तरह एक दूसरे देश के माल पर पाबन्दियाँ लग रहीं हैं, यह हम पूर्व अध्याय में देख आये हैं। केवल साम्राज्यवाद का विरोध कर देने से यह समस्या हल नहीं होती। साम्राज्यवाद का समर्थन न करते हुए भी ऐसे राष्ट्रों की जन-संख्या और भोजन की समस्या हल करनी ही होगी।

यहूदियों की समस्याएँ—जन-संख्या की समस्या जहाँ अनेक राष्ट्रों को परेशान कर रही है, वहाँ एक ऐसी महान् जाति को तो

अवश्य करेगी, जिसका कोई अपना छोटा मोटा भी घर-बार नही है, और जिसे जाति-द्वेष के नाम पर हर एक मुल्क से दुरदुराया जाने लगा है।

यहूदी जाति संस्कृति, विद्या, व्यवसाय और आर्थिक दृष्टि से उन्नत होती हुई भी आज वे घर-बार है। उसका अपना कोई देश नही है। यहूदियों की संख्या १ करोड ६६ लाख है। यहूदियों और ईसाइयों का विरोध केवल धार्मिक ही नही है। यहूदियों के अधिक उन्नत होने के कारण यह विरोध आर्थिक तथा राजनैतिक भी हो गया है। हर हिटलर ने यहूदियों को जर्मनी से निकालने के लिए अत्यन्त कठोर नियम बनाये हैं। उन्हे सामरिकता के अधिकारों से वञ्चित कर दिया गया है, वे अपना सङ्गठन नहीं कर सकते, अखबार नही चला सकते, नौकरी नहीं कर सकते। व्यापार व्यवसाय करने और जायदाद रखने तक के अधिकारों से वे वञ्चित कर दिये गये हैं। जर्मनी और यहूदियों के अन्तर्जातीय विवाह भी ग़ैरकानूनी करार दिये गये हैं। उन्हे मारा गया, लूटा पीटा गया, उनकी दुकाने जला दी गई और गिरफ़्तार कर लिया गया या बाहर निकाल दिया गया है। जर्मनी के प्रभुत्व मे या अधीन जो देश आ गए है, वहाँ भी यही अवस्था हो गई है। सब जगह यहूदियों का निरादर है। जगत्प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० आईंस्टीन को भी यहूदी होने के कारण जर्मनी से निकलना पड़ा। इसलिए यहूदी लोगों ने फिलस्तीन मे बसने का आन्दोलन किया। उनका कहना है कि फिलस्तीन ही हमारी मातृ-भूमि व धर्म-भूमि है। मि० बालफोर ने ब्रिटिश सरकार की ओर से गत महायुद्ध के अवसर पर यहूदियों को

आश्वासन दिया था कि यहूदियों को फिलस्तीन में बसाने का पूर्ण प्रयत्न करेगी, क्योंकि यही उनका राष्ट्र है। युद्ध के वाद इस दिशा मे प्रयत्न भी बहुत हुए, लाखों यहूदी वहाँ जाकर बस गए। परन्तु अब वहाँ भी अरबों ने यहूदी-विरोधी आन्दोलन जारी कर दिया है और रोज़मर्रा संघर्ष हो रहा है। बात यह है कि यहूदी हर प्रकार से ऊँचे हैं उन्होंने वहाँ जाते ही आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में अधिकार प्राप्त कर लिये और अरबों की स्थिति वैसी की वैसी ही बनी रही। अरब में यहूदी सङ्घर्ष इतना ज़ोर पकड़ गया कि ब्रिटिश सरकार को हस्ताक्षेप करना पड़ा, सेनाऍ बुलानी और अरबों पर गोली चलानी पड़ी। फिलस्तीन को दो टुकड़े कर देने की योजना से असन्तोष और भी बढ़ गया। अमेरिका आदि मे यहूदी अवश्य हैं, लेकिन वस्तुतः यहूदियों के आगे देश और कारोबार की उन्नति की समस्या बहुत महत्व रखती है।

शरणार्थी और अल्पसंख्यक

जिस तरह यहूदियों के सामने एक विशेष समस्या है, उसी तरह विभिन्न देशों से भागे हुए पीड़ित शरणार्थियों की समस्या भी कम कठिन नहीं है। गत महायुद्ध के बाद अनेक देशों में जाति-भेद या विचार भेद के कारण भिन्न देशों मे शासक दलों के कठोर व्यवहार के कारण लाखों व्यक्तियों की दशा बहुत खराब हो चुकी है। रूस से लगभग ३० लाख सफेद रूसी, टर्की से ३ लाख आरमीनियन और यूनान से करीब ३ लाख मुसलमान अपना देश छोड़ने पर बाधित हुए। कैथोलिक या भिन्न राजनैतिक मत के लोगों पर भी पिछले वर्षों मे

अत्याचार हुए हैं। वर्तमान युद्ध के कारण भी विभिन्न देशों मे हजारों लोग विजेताओं के कोप के शिकार होकर वाहर निकले। इन्हे कोई देश शरण देने के लिए तैयार नही होता। वेचारे परेशान है।

विविध देशों के भागे हुए लोगों या नागरिकों को वसाने से एक और समस्या भी उत्पन्न हो जाती है। विविध देशों के अल्प-संख्यक आज कल राजनैतिक समस्या और संकट का कारण वन जाते हैं। जर्मनी ने विविध देशों मे रहने वाले जर्मनों के नाम पर ही आगे कदम उठाया। रूस ने भी पोलैण्ड के रूसियों के नाम पर ही पोलैण्ड पर आक्रमण किया था। ये अल्पसंख्यक जिस देश मे रहते हैं, उसी के विरुद्ध मातृभूमि को साथ देते हैं, और इस तरह उनके लिए संकट का कारण वन जाते है। ये अल्पसंख्यक अपनी मूल मातृभूमि के लिए 'पाचवी कतार' (फिफ्थ कालम) या देश-द्रोही का काम करते है। अल्पसंख्यकों के राजनैतिक, सास्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की रक्षा के लिए अनेक आन्दोलन होते रहते हैं और सरकारों को उनके दवाने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। राष्ट्रसंघ ने भी अल्पसंख्यकों के लिए कुछ अधिकारों की घोषणा की थी।

पाकिस्तान

हिन्दुस्तानी मे भी अल्पसंख्यकों की समस्या पैदा हो गई है, यद्यपि यहाँ किसी दूसरे देश से निर्वासित या आये हुए लोग नहीं है। मुसलमानों की धार्मिक, सामाजिक संस्कृति भिन्न है। मुस्लिम नेता अपने अधिकारों के लिए संरक्षण माँगते रहे और अब तो उन्होंने

को भी समझते है। यदि चीन और टर्की के मुसलमान चीनी और तुर्क कहला सकते हैं, तो भारत मे रहने वाले मुसलमान भी भारतीय कहला सकते हैं। फिर सम्पूर्ण भारत के कोने मे प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ—द्वारका और जगन्नाथपुरी, रामेश्वर और हरिद्वार भी भारत की एकदेशीयता को सिद्ध करते है। फिर आज जमाना भी ऐसा है कि एक देश के छोटे छोटे टुकडे करना खतरनाक है। पाकिस्तान की योजना से अल्पसंख्यक मुसलमानों की समस्या भी हल नही होती। वहुत से मुसलमान विचारक भी पाकिस्तान को देश व जाति दोनो के लिए घातक समझते हैं।

वर्तमान सामाजिक और आर्थिक सगठन ने जिन समस्याओ को पैदा किया है, उनकी संक्षिप्त चर्चा हम पॉचवे अध्याय मे कर आये हैं। वर्तमान महायुद्ध के कारण ये समस्याएँ और भी भीषण रूप मे उपस्थित हो गई है। युद्ध वहुत अधिक खर्चीले होते है। ब्रिटेन का ही युद्ध व्यय प्रतिदिन १५,००,००,००० पौण्ड है। अन्य राष्ट्रों का भी व्यय यदि शामिल किया जाय तो ६०-७० करोड़ पौण्ड प्रति दिन युद्ध मे नष्ट किया जा रहा है। इस सबका भार पड़ा है प्रत्येक देश की अमीर ग़रीव जनता पर। इस प्रत्यक्ष व्यय के अलावा युद्ध से नागरिकों के जायदाद व व्यापार-व्यवसाय की हानि हो रही है, वह अलग है। अभी तो युद्ध का जोश है, मनुष्य विचार नही कर रहा, लेकिन जब युद्ध के वाद सब राष्ट्र अपने अपने हिसाव किताब को देखेगे, तो उन्हे पता लगेगा कि कितना भारी बोझ उनके सिर पर आ गया है। इससे समस्त व्यवस्था उलट पुलट जायगी

को भी समझते है। यदि चीन और टर्की के मुसलमान चीनी और तुर्क कहला सकते हैं, तो भारत मे रहने वाले मुसलमान भी भारतीय कहला सकते हैं। फिर सम्पूर्ण भारत के कोने मे प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ—द्वारका और जगन्नाथपुरी, रामेश्वर और हरिद्वार भी भारत की एकदेशीयता को सिद्ध करते है। फिर आज ज़माना भी ऐसा है कि एक देश के छोटे छोटे टुकडे करना ख़तरनाक है। पाकिस्तान की योजना से अल्पसंख्यक मुसलमानों की समस्या भी हल नहीं होती। बहुत से मुसलमान विचारक भी पाकिस्तान को देश व जाति दोनों के लिए घातक समझते हैं।

वर्तमान सामाजिक और आर्थिक सगठन ने जिन समस्याओं को पैदा किया है, उनकी संक्षिप्त चर्चा हम पाँचवे अध्याय मे कर आये हैं। वर्तमान महायुद्ध के कारण ये समस्याएँ और भी भीषण रूप मे उपस्थित हो गई हैं। युद्ध बहुत अधिक खर्चीले होते है। ब्रिटेन का ही युद्ध व्यय प्रतिदिन १५,००,००,००० पौण्ड है। अन्य राष्ट्रों का भी व्यय यदि शामिल किया जाय तो ६०-७० करोड़ पौण्ड प्रति दिन युद्ध मे नष्ट किया जा रहा है। इस सबका भार पड़ा है प्रत्येक देश की अमीर ग़रीब जनता पर। इस प्रत्यक्ष व्यय के अलावा युद्ध से नागरिकों के जायदाद व व्यापार-व्यवसाय की हानि हो रही है, वह अलग है। अभी तो युद्ध का जोश है, मनुष्य विचार नहीं कर रहा, लेकिन जब युद्ध के बाद सब राष्ट्र अपने अपने हिसाब किताब को देखेगे, तो उन्हें पता लगेगा कि कितना भारी बोझ उनके सिर पर आ गया है। इससे समस्त व्यवस्था उलट पुलट जायगी

और यदि सरकारों ने शीघ्र ही उपाय न किया, तो अनेक प्रदेशों मे उनके विरुद्ध क्रान्ति हो जायगी। प्रत्येक राष्ट्र का और खास कर युद्ध मे ध्वस्त राष्ट्रों के नगरों, कल कारखानों, पुलों, सड़कों आदि के पुनर्निर्माण की समस्या भी भीषण वेग से उपस्थित होगी।

और सब से बड़ा प्रश्न यह है कि आखिर वर्तमान महायुद्धों को रोकने के लिए क्या किया जाय ? क्या वर्तमान सभ्यता और वर्तमान आदेशों को नया करने की ही तो जरूरत नही है। क्या यह भीषण स्थिति इसी तरह रहने दी जाय आदि प्रश्न गंभीरता से उठेंगे।

बारहवाँ अध्याय

वर्तमान महायुद्ध

प्रथम ससार-व्यापी महायुद्ध सन् १६१८ मे समाप्त हुआ था और कठिनता से बीस वर्ष ही हुए थे कि सितम्बर सन् १६३६ मे युरोप की भूमि द्वितीय महायुद्ध द्वारा खून से रँगी जाने लगी।

सन् १६१८ की वर्सेलिज की सन्धि के अनुसार जर्मनी को शस्त्रास्त्र विहीन तो कर ही दिया गया था, उस पर युद्ध के हरजाने का भी इतना भारी बोझ लाद दिया गया था कि दो-चार वर्ष मे ही जर्मनी का दम आर्थिक कष्ट के मारे घुटने लगा। जर्मन नोटों की साख इतनी गिर गई थी कि बाजार से एक रोटी मोल लेनी हो तो नोटों का एक ठेला भर कर ले जाना पड़ता था।

युरोप के प्राय: सभी देशो मे जर्मनो को हीन दृष्टि से देखा जाने लगा था। यह परिवर्तन जर्मनों को उसी पीढ़ी मे हो गया था जिसमे जर्मनों का मध्य-युरोप मे सर्वत्र मान होता था। अत. जर्मन जनता के मन पर अपनी इस दुर्दशा की प्रबल प्रतिक्रिया होने लगी।

फलतः जर्मनी मे एक साथ कई ऐसे आन्दोलन आरम्भ हो गये जिनका लक्ष्य जर्मनी का पुनरुत्थान था। हर हिटलर का नाजी आन्दोलन भी इन्ही मे से एक था। धीरे धीरे हर हिटलर को जर्मनी के शासन-सूत्र का नियन्त्रण भी अपने हाथ मे लेने मे सफलता हो गयी। उसने

शक्ति-आरूढ़ होते ही वर्सेलिज़ सन्धि की सैनिक-शक्ति नियमन सम्बन्धी सब शर्तों को तोड़ दिया। जर्मनी के जो भाग जर्मनी से पृथक करके विविध देशों में मिला दिये गये थे उनको पुनः जर्मनी मे मिलाने का और जर्मन-भाषा-भाषी सब युरोपियनों को एक जर्मन झण्डे तले ले आने का आन्दोलन खड़ा कर दिया। जर्मन उपनिवेशों को ब्रिटेन और फ्रांस से वापिस लेने की आवाज़ उठायी गई।

सन् १६३३ मे हर हिटलर जर्मन सरकार का चान्सलर बना और सन् १६३५-३६ तक उसने जर्मनी के प्रायः उन सब भागों को जर्मनी मे वापस मिला लिया था जो वर्सेलिज़ सन्धि द्वारा काट कर उसके शरीर से पृथक कर दिये गये थे।

हम पहले अध्याय मे बता आये है कि सन् १६३७ मे हर हिटलर ने ज़ेकोस्लोवेकिया के उन प्रान्तों को जर्मनी में मिलाने का आन्दोलन आरम्भ किया जिनके अधिकतर निवासियों की भाषा जर्मन थी। ब्रिटेन, फ्रास और रूस ने इसका प्रबल विरोध किया। परन्तु हर हिटलर अपनी प्रयोजन-सिद्धि के लिये बल प्रयोग तक करने को तैयार था और ब्रिटेन की तब तक लड़ाई मे पड़ने की इच्छा नहीं थी, इस कारण स्वयं ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मि० चेम्बरलेन ने बीच मे पड़ सितम्बर १६३८ मे सुडटनलैण्ड नाम का प्रान्त ज़ेकोस्लोवेकिया से जर्मनी को दिलवा दिया।

सन् १६३६ मे जर्मनी ने पोलैण्ड से यह माँग की कि वर्सेलिज़ सन्धि द्वारा हमारी जो भूमि तुमको देकर हमारे पूर्वी प्रशिया प्रांत को मुख्य मातृभूमि से पृथक् कर दिया गया है, वह हमें वापिस दे दो।

पोलैण्ड ने इसका विरोध किया ब्रिटेन तथा फ्रांस ने भी उसके विरोध का समर्थन किया। उन्हों ने पोलैण्ड को यहाँ तक आशा दिलायी कि यदि जर्मनी तुम पर बल प्रयोग करेगा तो हम तुम्हारी सहायता करेंगे।

डंका बज गया

फ्रॉस और ब्रिटेन का उक्त आश्वासन पाकर पोलैण्ड दृढ़ हो गया, उसने किसी भी प्रकार जर्मनी की मॉग पूरी करने से इनकार कर दिया। अन्त समय हर हिटलर ने पोलैण्ड को यहाँ तक कह दिया कि तुम हमको पूर्वी प्रशिया तक एक रेलवे-लाइन ही बना लेने दो, विस्तार से शर्तें पीछे तय होती रहेंगी, परन्तु पोलैण्ड नहीं माना और ता० १ सितम्बर १६३६ को जर्मनी ने युद्ध की घोषणा करके पोलैण्ड पर चढ़ाई कर दी।

इस युद्ध का वर्णन करने से पहले यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि इस युद्ध मे कौन राष्ट्र किसकी तरफ़ रहा। गत (सन् १६१४-१८ के) महायुद्ध मे जर्मनी प्रायः अकेला था और उसके विरुद्ध ब्रिटिश साम्राज्य, फ्रॉस, इटली, रूस, जापान तथा संयुक्त राष्ट्र अमरीका इन छहों महाशक्तियों का सम्मिलित बल था। यद्यपि यह ठीक है कि आस्ट्रेलिया, टर्की और बलगारिया भी जर्मनी के साथ थे, परंतु प्रथम तो आस्ट्रेलिया के सिवा इन मे से किसी की गणना महाशक्तियों मे नहीं थी, और दूसरे इन सब को पराजित करने मे उक्त छः मित्र-राष्ट्र बहुत शीघ्र सफल हो गये थे। फलतः अकेले

जर्मनी को ही इन छहों शक्तियों का अंत तक सामना करना पड़ा था। परन्तु वर्तमान युद्ध मे उक्त मित्र-राष्ट्रों मे से फ्रांस और ब्रिटेन ही साथ रहे। सं० रा० अमरीका ब्रिटेन के साथ रहा लेकिन उसकी सहायता सिर्फ़ आर्थिक रही है। अब तक भी वह लड़ाई मे नही कूदा।

पोलैण्ड की बांट

जर्मनी और पोलैण्ड मे युद्ध छिड़ने से पहले, ब्रिटेन और फ्रास ने लगभग दो मास तक निरंतर रूस को अपने साथ मिलाने का यत्न किया था, परन्तु उनको सफलता नही हुई थी, इस कारण उक्त युद्ध छिड़ने पर यह समाचार सुन कर संसार भर को अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि कुछ ही दिन पूर्व जर्मनी और रूस मे अनाक्रमण सन्धि हो चुकी है। इस संधि के कारण जर्मनी न केवल गत महायुद्ध की भाँति पूर्व और पश्चिम दो दिशाओं मे एक साथ लड़ने से बच गया, अपितु जैसा कि आगे बतलाया जायगा, कुछ समय पश्चात् रूस ने भी पूर्व से पोलैण्ड पर आक्रमण करके जर्मनी को अपना एक काम शीघ्र समाप्त करने मे बड़ी मदद पहुँचायी।

हम पहले बतला चुके हैं कि जर्मनी ने ता० १ सितम्बर को पोलैंड पर चढ़ाई की थी। ता० ३ सितम्बर को ब्रिटेन और फ्रांस ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। लेकिन वे दोनों शक्तियाँ पोलैण्ड की कुछ सामरिक सहायता न कर सकी। जर्मनी ने भी ब्रिटेन और फ्रांस की युद्ध-घोषणा की उपेक्षा-सी ही की और अपनी बहुत-सी शक्ति लगाकर पोलैण्ड का युद्ध लगभग तीन सप्ताह मे ही समाप्त कर दिया।

सितम्बर के मध्य तक पोलैण्ड की सेनाये बहुत कुछ थक चुकी थी, उनमे से बहुत-सी गिरफ्तार हो चुकी थी और जर्मन सेनाये आक्रान्त देश की राजधानी वारसा मे प्रविष्ट होने ही वाली थी कि पूर्व दिशा से रूस ने भी पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। इससे पोल सेनाओं की रही-सही हिम्मत भी जाती रही। उन्होंने रूसी सेनाओं का प्रायः सामना नही किया और तीन-चार दिन मे ही पूर्व तथा पश्चिम से बढ़ती हुई रूसी तथा जर्मन सेनाये वारसा मे पहुँच कर एक दूसरे से मिल गयी। दोनों आक्रान्त देशों की सरकारों ने पूर्व-निश्चित गुप्त योजना के अनुसार पोलैण्ड का बंटवारा कर लिया और युरोप के नक़शे से पोलैण्ड का लोप होकर, एक वार फिर जर्मनी तथा रूस की सीमाये एक दूसरे को छूने लगी।

बंटवारे मे पोलैण्ड की सम्पन्न कोयला-खाने और प्रायः सब व्यवसायिक केन्द्र जर्मनी के भाग मे आये और पूर्वी पोलैण्ड का प्रसिद्ध अन्न-भण्डार तथा दक्षिणी पोलैण्ड की तेल-खाने रूस के भाग मे। रूस ने इन तेल-खानों का ठेका उसी समय जर्मनी को सौंप दिया।

फिन-रूस युद्ध

पोलैण्ड की लड़ाई समाप्त हो गयी, परन्तु जर्मनी की ब्रिटेन तथा फ्रास से लड़ाई शुरू नही हुई। फ्रेंच सेनाओं ने जर्मनी के पश्चिमी भाग पर आक्रमण किया अवश्य परन्तु कुछेक मील जर्मन सीमा मे घुसने के पश्चात ही वे न जाने क्यों रुक गईं। यहाँ भी वे [illegible]क समय तक नही रही जर्मनों का दबाव पड़ने पर पीछे लौट

गयी। युद्ध के समाचार सुनने की उत्सुक जनता फ्रैंको-जर्मन सीमा पर दोनों तरफ से एक दूसरे पर साधारण गोलाबारी के और समुद्र मे उभय-पक्ष का एकाध जहाज़ डूब जाने के समाचार सुनते-सुनते उकताने-सी लगी थी कि नवम्बर के अन्त में रूस और फ़िनलैण्ड में लड़ाई छिड़ गयी। इस लड़ाई का यद्यपि यूरोप-व्यापी महायुद्ध से सीधा सम्बन्ध नही है, तथापि उसका ज़िक्र यहाँ इसलिए कर दिया है कि उसका भी यूरोप की लड़ाई पर प्रभाव पड़ा था।

वर्सेलिज़ सन्धि द्वारा रूस का बहुत सा भूमिभाग छीन लिया गया था। जिन दिनों (सन् १९१८) यह सब हुआ था उन्ही दिनों फ़िनलैण्ड के मार्ग से ब्रिटिश सेनाओं ने रूस पर आक्रमण किया था। और जर्मनों ने फिन विद्रोहियों को बाल्टिक समुद्र के मार्ग से रूस के विरुद्ध सहायता देकर उनका विद्रोह सफल करवा दिया था। रूस के वर्तमान शासक उन घटनाओं को भूले नहीं थे। उन्होंने सोचा कि रूस पर आक्रमण का यह मार्ग बन्द करने के लिये यह समय अच्छा है और अक्तूबर १९३९ के आरम्भ मे उन्होंने फ़िनलैण्ड से मॉग की कि तुम बाल्टिक समुद्र की फ़िनलैण्ड खाड़ी मे कुछ द्वीपों पर हमको अपने जल-सैनिक अड्डे बना लेने दो बाल्टिक समुद्र में आलैण्ड द्वीप पर से अपनी किला-बन्दी हटा लो और करेलियन जल-डमरू-मध्य का कुछ भाग हमें दे दो। ये शर्तें फिनों को स्वीकृत न थीं। फलतः युद्ध आरम्भ हुआ।

यद्यपि इस युद्ध मे यह स्पष्ट हो गया कि रूस की सेना अत्याधिक बलशाली नही। पर जर्मनी की कुछ सहायता और संख्या की अधिकता

के कारण रूस विजयी हुआ। फिन सेनाओं को थक कर चूर हो जाने तथा गोला-वारूद समाप्त हो चुकने के कारण आत्म-समर्पण कर देना पडा। रूस ने जो मागे शुरू मे की थी उनसे भी ज्यादा देकर फिनलैण्ड को अपनी जान छुड़ानी पड़ी।

वाल्टिक प्रजातन्त्रों का अन्त

फ़िनलैण्ड को झुकाने के पश्चात रूस ने वाल्टिक समुद्र के तीनों छोटे प्रजातन्त्रों—इस्टोनिया, लैटविया और लिथुआनिया—मे अपनी सेना बढ़ा ली। ये बेचारे रूस का विरोध क्या करते। जून १९४० मे इन तीनों की शासन-पद्धति भी वदल कर सोवियट हो गई और कुछ समय पश्चात् रूस ने इनको अपना ही अंग वनाकर इनकी स्वतन्त्र सत्ता ही समाप्त कर दी और इस प्रकार वाल्टिक समुद्र मे अपनी स्थिति वहुत दृढ़ कर ली।

नारवे पर आक्रमण

नारवे, स्वीडन और डेनमार्क यूरोप के तटस्थ देश थे। ये तीनों कभी किसी के झगड़े मे नहीं पड़ते थे। नारवे तो गत दो सौ वर्ष से किसी से लड़ा ही नही था। परन्तु अप्रैल १९४० मे वह भी लड़ाका यूरोपियन महाशक्तियों का पडोसी होने के कारण चक्कियों के पाटों के वीच आकर पिस गया।

ता० ८ अप्रैल १९४० को ब्रिटिश जल सेना ने नारवे के पश्चिमी समुद्र मे नारविक, बोडों और स्ट्रेटलैण्ड नामक तीन बन्दरगाहों के सामने वारूदी सुरंगें बिछा दी। ऐसा करने मे ब्रिटेन की नीयत यह थी कि जो जर्मन नौकाये स्वीडन की किरूना नामक लोहे की खानों की

कच्ची धातु, नारविक बन्दरगाह से लाद कर नारवेजियन समुद्र में चलती चलती स्वदेश पहुँच जाती है उनका रास्ता रुक जाय और जर्मनी को लोहा मिलना बन्द हो जाय और शत्रु के शस्त्रास्त्र के कारखाने न चलने पावें। जर्मनी के लोहे के कारखाने बन्द करने मे ब्रिटेन की यह नीयत भी थी कि जब जर्मनी मशीने आदि नही बना सकेगा तब उसका अपने अड़ौस-पड़ौस के देशों से व्यापार बन्द होकर उसकी आर्थिक व्यवस्था भी बिगड़ जायगी।

परन्तु प्रतीत होता है कि जर्मनी भी इसके लिए तैयार बैठा था। ब्रिटेन द्वारा नारवेजियन समुद्र मे वारूदी सुरंगें बिछाने के कुछ घण्टे पश्चात् ही उसने डेनमार्क और नारवे की सरकारों को नोटिस दे दिया कि क्यों कि तुम्हारे देशों पर ब्रिटिश आक्रमण होने का और उसके कारण जर्मनी के भी जोखिम मे फँस जाने का भय है इस लिये तुम तुरन्त जर्मनी की संरक्षा को स्वीकार कर लो।

ता० ६ अप्रैल के प्रातःकाल अंधेरे ही जर्मन सेनाएं डेनमार्क और नारवे मे एक साथ प्रविष्ट हो गयी। डेनमार्क के राजा ने तो आधे घण्टे से भी कम समय में अपनी निरुपायता देख कर जर्मन संरक्षा स्वीकार कर ली और अपने देश को खून खराबी से बचा लिया। नारवे की सरकार ने ऐसा नही किया और जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करके ब्रिटेन तथा फ्रांस से सहायता की याचना की।

परन्तु जर्मनी की तैयारी असाधारण थी। दो एक दिन मे ही उसने नारवे की राजधानी ओस्लो और दक्षिणी तथा पश्चिमी समुद्र

तट के अनेक महत्वपूर्ण बन्दरगाहों पर कब्जा कर लिया। ब्रिटेन ने अपनी जल-सेना द्वारा जर्मन सेना को नारवे न पहुँचने देने का बहुतेरा यत्न किया परन्तु उसे सफलता नहीं हुई। दो सप्ताह के अन्दर ही जल तथा वायु-मार्गों से लगभग पचासी हजार जर्मन सैनिक नारवे पहुँच चुके थे और रेलवे आदि महत्वपूर्ण स्थानों पर उन्होंने अधिकार कर लिया था। ब्रिटेन ने बहुत यत्न करके अपनी एक सेना नारवे की भूमि पर उतारी भी परन्तु वायुयानों तथा तोपखाने की कमी के कारण उसे बहुत शीघ्र वहाँ से लौट आना पड़ा।

नारवे के राजा ने डेन राजा की भाँति हार नहीं मानी और वह मन्त्रियों सहित ब्रिटेन भाग गया।

नारवे पर जर्मनी का अधिकार हो जाने से, उस देश का मछली के तेल का, जहाज बनाने का, और लकड़ी आदि का समस्त व्यवसाय तथा स्वीडिश लोहे का मार्ग निर्बाधरूप से जर्मनी के हाथ मे आगया। हा, नारवे का व्यापारिक जहाजों का विशाल बेड़ा ब्रिटेन को ही मिल गया।

नारवे मे ब्रिटिश सेनाओं के पराजय से ब्रिटिश लोकमत इतना विक्षुब्ध हुआ कि मि० नेवाइस चैम्बरलेन को प्रधान मन्त्रित्व से त्यागपत्र देकर वह पद मि० विन्स्टन चर्चिल को सौंप देना पडा।

हालैण्ड, बेलजिअम और फ्रान्स

डेन्मार्क और नारवे मे जर्मनी ने जो कदम उठाया उससे यह स्पष्ट हो गया था कि वह बीच के किसी भी देश को अपने पर ब्रिटिश आक्रमण की आधार-भूमि नहीं बनने देगा। इसी नीति के अनुसार

जर्मन ने ता० १० मई १९४० को हालैंड, बेलजिअम और लक्समबर्ग को एक साथ वही नोटिस दिया जो एक मास पूर्व डेनमार्क और नारवे को दिया गया था।

नोटिस के तुरन्त पश्चात ही जर्मनी ने इन सब देशों पर और फ्रांस पर एक साथ आक्रमण कर दिया। आक्रमण का ढंग वही था जो पोलैण्ड मे। अर्थात् भूमि पर तो पैदल सेना टैंकों और आरमर्ड कारों आदि की सहायता से आगे बढ़ती थी, आकाश से झपटानी बम-वर्षक शत्रु-सेना पर झपटते थे, शत्रु-सेनाओं के पीछे हवाई-छतरी सैनिक उतर कर उनके रसद गोला-बारूद आदि का यातायात बिगाड़ते थे और पीछे से मोटर साइकल-सवार सेना आकर जीती हुई जगह सम्भालती जाती थी। तोपखाने का प्रयोग जर्मनी ने इस लड़ाई मे प्रायः नहीं किया।

आक्रमण की दिशा यह थी कि हालैण्ड, बेलजिअम और फ्रांस की सेनाओं को यथाशीघ्र एक दूसरे से ऐसा पृथक कर दिया जाय कि वे परस्पर सहायता न कर सके। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए शत्रु-सेना के एक चुने हुए स्थान पर पूरी शक्ति से आक्रमण करके और उसकी रक्षा-पंक्ति मे छेद बना कर जर्मन-सेना वहाँ से भीतर घुस जाती थी और दाये बाये पंखे की भाँति फैलकर शत्रु-सेना को आगे पीछे और अगल-बगल से घेर कर शस्त्र डालने पर विवश कर देती थी।

हालैण्ड पर जर्मन आक्रमण का वेग इतना तीव्र था कि केवल चार दिन मे ही हालैण्ड की एक चौथाई सेना—एक लाख सिपाही—

कट गयी थी और पाँचवें दिन हालैण्ड के प्रधान सेनापति को आत्म-समर्पण के लिए विवश होना पड़ा।

हालैण्ड की रानी विलहेलमिना को जर्मन छतरी-सैनिकों ने कैद करने का यत्न किया परन्तु वह एक ब्रिटिश जहाज में बैठ कर इंग्लैंड पहुँच गई।

हालैण्ड पर बम-वर्षा का वेग भी इतना घना तथा तीव्र था कि उसके राटरडम आदि कई नगर तो एक ही दिन मे लगभग सर्वथा नष्ट हो गया।

बेलजिअम से मित्र-सेनाओं का पलायन

हालैण्ड के आत्मसमर्पण के कारण बेलजिअम की सेनाओं को घेरने का काम सुगम हो गया। बेलजिअम और फ्रांस को एक दूसरे से काट देने का प्रयत्न तो जर्मन सेनाये पहले ही कर रही थी, अब उत्तर से आक्रमण करने का रास्ता पूरा खुल गया। उधर से जर्मन सेनाये बहुत शीघ्रतापूर्वक पश्चिमी समुद्र तट पर अधिकार करती हुई दक्षिण को बढ़ने लगी। दक्षिण मे उन्होंने बेलजिअम को फ्रांस से अलग कर दिया था और उत्तर-पूर्व मे जर्मनी था ही। परिणाम यह हुआ कि बेलजिअम के फ्लैण्डर्स नामक मैदान मे स्थित ब्रिटिश साम्राज्य की सेना पूरी तरह घिर गयी। उसे भाग निकलने के लिये केवल डनकिर्क का दूसरे दरजे का बन्दरगाह बच गया था। बस, उसी से यह सेना सब शस्त्रास्त्र आदि मैदान मे ही छोड़कर भागने को विवश हो गयी।

चौदह-पन्द्रह दिन तक शक्ति भर युद्ध करने के पश्चात् बेलजिअम राजा लिओपोल्ड ने ब्रिटिश तथा फ्रेञ्च अधिकारियों को सूचना दे दी

कि मुझे बहुत शीघ्र शस्त्र डालने के लिए विवश होना पड़ेगा, तुम अपना प्रबन्ध कर लो। ता० २८ मई को उसने निरन्तर अठारह दिन वीरता-पूर्वक लड़ने के पश्चात् शस्त्र डाल दिये और अपनी सेना सहित जर्मनों का क़ैदी बनना स्वीकार कर लिया।

फ्राँस ने अपनी पूर्वी सीमा पर तो मैजिनो लाइन नाम की प्रसिद्ध दुर्ग-पंक्ति बनायी हुई थी, परन्तु उत्तर में बेलजिअम की पराजय के कारण उस पर आक्रमण का मार्ग सर्वथा निष्कण्टक हो गया। उधर ब्रिटिश साम्राज्य की सेनाओं के निकल भागने के कारण उसे जर्मन सेनाओं का सामना अकेले ही करना पड़ा। फ्राँस की सेना जर्मनी के सिवा यूरोप मे सर्वोत्तम होते हुए भी जर्मन ढंग से लड़ने की अभ्यासी नहीं थी। जर्मन आक्रमण का तरीक़ा उसके लिये सर्वथा नया था। तिस पर उसके सेनापतियों मे परस्पर ही मतभेद था। फल यह निकला कि जर्मन सेना बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ती गयी और फ्रेञ्च सिपाही बहुत बड़ी संख्या मे क़ैद हो गये।

बीच मे एक बार ब्रिटिश सेना फ्रॉस की भूमि पर फिर भी उतरी परन्तु बिना लड़े ही वापस लौट गयी। परिस्थिति खराब देखकर फ्रेञ्च के प्रधान मन्त्री म० रेनोद ने अपने देश के पुराने और बूढ़े सेनापति मारशल पेताँ को युद्ध की बागडोर सौंपी। परन्तु मारशल पेताँ भी स्थिति सुधार नहीं सके। पैरिस का सर्वनाश न हो जाय इस भय से फ्रेञ्च अधिकारियों ने वह नगर बिना लड़े ही जर्मनों के सुपुर्द कर दिया।

इटली भी युद्ध में

ता० १० जून को इटली ने भी युद्ध की घोषणा करके दक्षिण-पूर्व

से फ्राँस पर आक्रमण आरम्भ कर दिया। म० रेनोद ने निराश और निरुपाय होकर संयुक्त राष्ट्र अमरीका से सहायता की अपीलें की। परन्तु कुछ फल न निकला और अन्त को फ्रेञ्च मन्त्रियों ने बहुमत से हथियार डालने का निर्णय करके ता० १६ जून को जर्मनी और इटली से अस्थायी सन्धि की प्रार्थना कर दी। इस सन्धि के अनुसार लगभग समस्त उत्तरी फ्रॉस पर और सारे पश्चिमी समुद्र तट पर जर्मनी का अधिकार हो गया।

इटली की जय और पराजय

जर्मनी को जीतते देख कर इटली भी बहती गंगा मे हाथ धोने के लिये युद्ध मे कूद पड़ा था। जब तक उसकी शक्ति की परीक्षा नही हुई थी तब तक उसकी धाक भी थोड़ी बहुत थी ही। अबिसीनिया मे और स्पेन के गृह-युद्ध मे उसकी सेनाओं ने खासा काम दिखलाया था। युद्ध मे पड़ने पर पहले-पहल तो इटली ने अपनी ख्याति के अनुरूप ही काम किया परन्तु दो-चार महीने बाद ही उसकी यह दशा हो गयी कि जिस काम को उसका हाथ लगा वही बिगड़ने लगा।

इटली के बल की अधिकतर परीक्षा उत्तरी तथा पूर्वी अफ्रीका मे हुई। जुलाई और अगस्त १६४० के महीनों मे उसकी सेनाये ब्रिटिश केनिया तथा ब्रिटिश सूडान मे कुछ दूर तक घुस गयी, उन्होंने ब्रिटिश सुमालीलैण्ड पर कब्जा कर लिया और सितम्बर मे वे मिस्र की सीमा मे भी लगभग ८० मील तक घुसी चली गयी।

अक्टूबर मे ब्रिटिश साम्राज्य की सेनाओं ने इटालियनो पर प्रत्याक्रमण आरम्भ किया। इसमे इटालियनों के हाथ से न केवल

जुलाई से सितम्बर तक का जीता हुआ प्रदेश निकल गया, अपितु उत्तरी अफ्रीका में उनके लीबिया के साम्राज्य में ब्रिटिश साम्राज्य की सेनायें लगभग पौने चार सौ मील तक हज़ारों इटालियनों को गिरफ़्तार करती हुई घुसती चली गयीं। पूर्वी अफ्रीका में उनका अबिसीनियन साम्राज्य भी इटालियनों से छिन गया।

उनकी वायु तथा जल-सेनाओं ने ब्रिटिश वायु तथा जल-सेनाओं का कहीं भी जम कर सामना करने का साहस नहीं किया। इटालियन जल-सेना को ब्रिटिश जल-सेना ने जून १९४१ तक लगभग समाप्त ही कर डाला था।

नवम्बर १९४० में इटली ने अलबानिया के रास्ते ग्रीस पर आक्रमण किया। यहाँ भी पहले तो उसकी सेना कुछ दूर तक ग्रीक प्रदेश में घुस गयी परन्तु जब ग्रीकों ने सम्भल कर आक्रमण किया तब इटली को अलबानिया का भी बहुत सा प्रदेश हार कर लेने के देने पड़ गये। यदि जर्मनी ने इटली की मदद न की होती तो शायद इटली को शत्रु के सामने शस्त्र ही डाल देने पड़ते। युरोप में ग्रीस को हरा कर और लीबिया में ब्रिटिशों से विजित प्रदेश वापिस लेकर जर्मनी ने ही इटली की लाज रखी। पूर्वी अफ्रीका का अबिसीनियन साम्राज्य तो अब ब्रिटिशों के ही हाथ में है। इटली के लगभग एक लाख सिपाही भी ब्रिटिश सरकार के बन्दी हैं।

बालकन राष्ट्रों की उलझन

दक्षिण-पूर्वी यूरोप के बालकन राष्ट्रों को यूरोप का बारूदखाना कहा जाता है, क्योंकि ये राष्ट्र न केवल सदा परस्पर लड़ते रहते हैं,

वरन् इन पर अपना प्रभाव जमाने के लिये यूरोप के बड़े राष्ट्रो मे भी बहुधा चोंचे चलती रहती हैं। परन्तु इस महायुद्ध मे हर हिटलर की सरकार ने इन राष्ट्रों का ऐसी कुशलता से भुगतान किया कि सिवा ग्रीस और युगोस्लाविया के बाकी सब राष्ट्र, बिना एक पटाखा तक छोड़े उसकी मुट्ठी मे आ गये।

इन राष्ट्रों मे हंगरी तो पहले से ही जर्मनी और इटली के साथ था। उसके बाद बारी आयी रूमानिया की। रूमानिया मे अन्न, तम्बाकू आदि की खेती के अतिरिक्त, तेल की खाने प्रचुर मात्रा मे है। इस कारण उस पर जर्मनी की दृष्टि देर से थी। रूमानिया का एक बड़ा दुर्भाग्य यह था कि गत महायुद्ध मे वह अपने अडौस पड़ौस के देशों से बहुत सी भूमि लेकर अपना क्षेत्रफल दुगने से भी अधिक बढा चुका था। ये सब पड़ौसी राष्ट्र अपनी भूमि वापस लेने के लिए सदा अनुकूल अवसर की ताक मे रहते थे। अब रूमानिया पड़ौसियो की इस भूमि को ब्रिटेन तथा फ्रास की सहायता के भरोसे दबाये हुए था। ब्रिटेन ने रूमानिया को रक्षा की गारण्टी दी हुई थी।

जून (१६४०) मे फ्रास का पतन होते ही रूमानिया के पड़ौसी राष्ट्रों को अपनी इच्छा पूरी करने का अवसर मिल गया। उक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात् ही रूस ने रूमानिया को बेस्सारेबिया तथा उत्तरी ब्यूकोवाइना प्रात वापिस करने का 'अल्टीमेटम' दे दिया। रूमानिया निरुपाय था। उसने अनुमति दे दी और जून के अन्त मे इन प्रान्तों मे रूसी सेनाएँ प्रविष्ट हो गयी।

ब्रिटेन से सहायता पाने की सूरत न देख कर जुलाई के आरम्भ

मे रूमानिया ने रक्षा की ब्रिटिश 'गारन्टी' का परित्याग कर दिया और जर्मनी तथा इटली की शरण ली। परन्तु उसके ये रक्षक भक्षक सिद्ध हुए। जुलाई के अन्त मे इनके इशारे पर रूमानिया को दक्षिणी डोब्रूजा प्रान्त वापिस बलगेरिया के सुपुर्द कर देना पड़ा।

अब रह गया हंगरी का दावा। वह रूमानिया से अपना ट्रान्सिलवानिया प्रान्त वापिस मांग रहा था। जर्मनी ने दोनों को आपस मे सुलझ लेने के लिए पन्द्रह दिन का समय दिया और इनके वैसा न कर सकने पर अगस्त के अन्त मे स्वयं पंच बन कर ट्रान्सिलवानिया हंगरी को वापिस दिलवा दिया।

अब रूमानिया का शरीर पहले से आधा रह गया था। इन परिवर्तनों के कारण रूमानियन प्रजा मे असन्तोष उमड़ रहा था। भीतर ही भीतर राजनीतिक परिवर्तनों के उबाल उठ रहे थे। रूमानिया का राजा इन सब का सामना करने मे अपने को असमर्थ देख कर सितम्बर मे देश छोड़ कर भाग गया। अक्तूबर मे देश की 'रक्षा तथा सहायता के लिए जर्मन सेनायें रूमानिया मे प्रविष्ट हो गयी और रूमानिया बाक़ायदा एक सन्धि पर हस्ताक्षर करके जर्मनी, इटली तथा जापान के गुट मे शामिल हो गया। नवम्बर मे रूमानिया के कुछेक राजनीतिक दलों ने विद्रोह का प्रयत्न किया परन्तु उसे जर्मनी-पक्षपाती प्रधान मन्त्री जनरल ऐन्टौनेस्क्यू ने दृढ़ता से दबा दिया।

रूमानिया के पश्चात् बलगेरिया को अपने गुट मे मिलाने के लिये जर्मनी असाधारण धैर्य-पूर्वक प्रयत्न करने लगा। फरवरी (१९४१) मे उसका प्रयत्न सफल हो गया और बलगेरिया ने भी

त्रि-राष्ट्र गुट मे मिल जाने की सन्धि पर बाकायदा हस्ताक्षर कर दिये।

अब जर्मन सेनाये रूमानिया और बलगेरिया मे से हो कर युगोस्लाविया तथा ग्रीस की सीमाओं पर पहुँच चुकी थी। अत. जर्मनी ने युगोस्लाविया से स्पष्ट उत्तर माँगा कि तुम हमारे साथ आते हो या नही। युगोस्लाविया के शासकों ने बहुत सोचा विचारा और झिझक-संकोच के पश्चात् मार्च के अन्त मे जर्मनी से एक सन्धि कर ली। परन्तु युगोस्लाविया के कुछ जोशीले नेताओ ने तुरन्त ही क्रान्ति कर दी, उन्होंने जर्मनी से सुलह करने वाले शासकों को गद्दी से उतार दिया और ब्रिटेन-पक्षपाती शासन की स्थापना कर दी।

अप्रैल के आरम्भ मे जर्मनी ने युगोस्लाविया तथा ग्रीस पर एक साथ अत्यन्त तीव्रता से आक्रमण कर दिया। आक्रमण को गति इतनी तीव्र थी और सैन्य-संचालन इतनी चतुराई से किया गया था कि युगोस्लाव, ग्रीक और ब्रिटिश साम्राज्य की सेनाओं का परस्पर सहयोग नही हो सका। आक्रान्त भूमि-भाग के पहाड़ी होते हुए भी जर्मन सेनाओं ने तीन सप्ताह से भी कम समय मे विरोधी तीनों सेनाओं को पीस कर रख दिया।

युगोस्लाविया का बालक राजा पीटर पहले और ग्रीस का राजा जार्ज द्वितीय कुछ दिन पीछे देश छोड़ कर भाग गये। ग्रीक सेनाओं के बड़े भाग ने आत्म-समर्पण कर दिया और ब्रिटिश साम्राज्य की सेनाओं को भारी नुक़सान उठाना पडा और उन्हे वापस चला जाना पडा।

क्रीट

ग्रीस का एक द्वीप है क्रीट। वह ग्रीस की मुख्य भूमि से सर्वथा पृथक् है, उसकी भूमि बहुत ही पहाड़ी है और पूर्वी भूमध्य सागर के मध्य में स्थित होने के कारण उसका सामरिक महत्व भी बहुत है। ग्रीस के राजा ने ग्रीस से भाग कर इस द्वीप में ही आश्रय लिया था। उसको और ब्रिटिश सेनाओं को आशा थी कि इस द्वीप की प्राकृतिक अवस्थाओं के तथा समुद्र में ब्रिटिश जल-सेना का ज़ोर होने के कारण यहाँ जर्मन आक्रमण नहीं हो सकेगा। परन्तु मई १९४१ के तीसरे सप्ताह में जर्मनों ने केवल वायु सेना द्वारा क्रीट पर आक्रमण करके संसार के युद्धों के इतिहास में एक अभूतपूर्व कार्य कर दिखलाया। ब्रिटिश साम्राज्य की सेनाओं ने और क्रीट निवासी ग्रीक सैनिकों ने बहुतेरा यत्न किया परन्तु उनकी जर्मन वायु-सेना के सामने पेश नहीं चली और मई के अन्त तक ब्रिटिश साम्राज्य की सेनाओं को वह द्वीप जर्मनों के सुपुर्द कर देना पड़ा।

सीरिया पर ब्रिटिश आक्रमण

क्रीट द्वीप जर्मनी के हाथ में चले जाने के पश्चात् सब की कल्पना यह थी कि जर्मनी का नया आक्रमण निकटपूर्व में या तो साइप्रस द्वीप पर होगा क्योंकि वह ब्रिटिश साम्राज्य का अङ्ग है और या वह फ्रेञ्च साम्राज्य के अङ्ग सीरिया को आधार बना कर ब्रिटिश ईराक़ पर आक्रमण करेगा। इस कल्पना के आधार मुख्यतया दो थे। एक तो

क्रीट को जीतने मे प्राप्त हुआ जर्मनों का नया अनुभव और दूसरा यह कि ईराक मे इसी समय अब्दुल रशीद जिलानी नामक एक व्यक्ति ने ब्रिटेन-विरोधी सरकार की स्थापना करके ब्रिटिश साम्राज्य की सेनाओं को अपने देश मे रहने की इजाजत देने से इनकार कर दिया था और इसीलिये वहाँ ईराक़ी तथा ब्रिटिश साम्राज्य की सेनाओं मे लड़ाई छिड़ गई थी।

परन्तु इन दोनों में से कोई भी कल्पना ठीक सिद्ध नहीं हुई। ब्रिटिश साम्राज्य की सेनाओं ने अब्दुल रशीद जिलानी का विद्रोह शीघ्र ही शान्त कर दिया और ता० १० जून को स्वयं स्वतन्त्र फ्रैञ्च दल के नेता दि गोले का सहयोग प्राप्त कर फ्रैञ्च सीरिया पर आक्रमण कर दिया, ताकि वह जर्मनों के हाथ मे न चला जाय। सीरिया की विशी पक्षपाती फ्रैञ्च सेनाओं ने ब्रिटिश साम्राज्य की सेनाओं का बहुत जम कर मुकाबिला किया, परन्तु गोला बारूद आदि की सहायता पहुँचने के सब मार्ग बन्द हो जाने के कारण एक महीने पश्चात् ही उन्हे आत्म-समर्पण कर देना पड़ा और सीरिया स्वतन्त्र फ्रैञ्च-दल और अंगरेज़ों के हाथ मे आ गया।

जर्मनी और रूस का युद्ध

रूस और जर्मनी की पारस्परिक संधि जितनी आश्चर्यकारक थी, उतना ही आश्चर्य मे डाल देने वाला जर्मनी द्वारा रूस पर आक्रमण है। २२ जून १९४१ को प्रातःकाल ४ बजे जर्मनी की सेनाओं ने अकस्मात् ही रूस पर आक्रमण कर दिया। हिटलर

ने इस अवसर पर जो घोषणा की, उसका सारांश यह था कि रूस ने यद्यपि जर्मनी से संधि कर ली थी, तथापि वह जर्मनी की उन्नति को सहन नहीं कर रहा था और जर्मनी पर आक्रमण की तैयारियाँ चुपके चुपके कर रहा था। संभव था कि जब जर्मनी ब्रिटेन पर आक्रमण करता, तब पीछे से वह जर्मनी की पीठ में छुरा भोंक देता। उसके सैन्य-बल को नष्ट करके निश्चिन्त होने के लिए उस पर आक्रमण करना जरूरी है। रूस से युद्ध करने मे जर्मनी को दो तीन अन्य राष्ट्रों का भी सहयोग मिल गया। रूमानिया और फिनलैंड के प्रदेश तो रूस ने छीने थे (भले ही वे जर्मनी के सहयोग से लिये गये थे) इसलिए वे रूस से खार खाये बैठे थे। हंगरी भी आक्रमणकारियों मे मिल गया। इस तरह रूस पर पश्चिम की विस्तृत सीमा और दक्षिण से एक साथ आक्रमण किया गया। इटली की सेनाओं ने भी जर्मनी की सहायता की।

रूस पर आक्रमण इतने भीषण वेग से और अकस्मात् किया गया कि पहले तो रूस उसका मुकाबला ही न कर सका। जर्मनी ने एक ही झपाटे में पोलैण्ड का रूस द्वारा अधिकृत प्रदेश और तीनों बाल्टिक राष्ट्र लेकर रूस की कुछ भूमि पर भी अधिकार कर लिया। कुछ ही अरसे में रूस ने भी मुकाबले की तैयारी कर ली। अमेरिका और ब्रिटेन ने भी परस्पर विचार-विनिमय के बाद रूस को पूर्ण सहायता देने का निश्चय कर लिया। भीषण दूरी के कारण यह सहायता पर्याप्त मात्रा में नहीं पहुँच सकी,

फिर भी दोनों देश शस्त्रास्त्र, टैंक और वायुयानों द्वारा रूस की सहायता करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

यद्यपि रूस बहुत धीरता, दृढता और वीरता से जर्मनी का मुकाबला कर रहा है, तथापि अदम्य विशाल सेना और भीषण मात्रा मे अनन्त युद्ध सामग्री के कारण जर्मनी ने रूस मे अनेक अद्भुत सफलताएँ प्राप्त कर ली है। यह आक्रमण दो हजार मील लम्बे मोर्चे पर लाखों सेनाओं के द्वारा एक साथ किया गया था। इस समय (१० जून १९४१) तक स्थिति यह है कि उत्तर पश्चिम में फिनलैण्ड ने कुछ ऐसे स्थान प्राप्त कर लिये है, जिन पर पिछले दिनों रूस ने अधिकार कर लिया था। लेनिनग्राड पर जर्मन सेनाओं ने यद्यपि आक्रमण बहुत पहले शुरू किया था, परन्तु रूसियों के दृढ़ता और वीरता पूर्वक डट कर मुकाबले के कारण अभी तक उस पर जर्मनी का अधिकार नहीं होने पाया। पर वह प्रायः घिरा हुआ है और घमासान युद्ध जारी है। इससे नीचे उतर कर जर्मनी ने अनेक स्थानों से मास्को की ओर प्रयाण किया। मास्को के उत्तर की ओर रोस्टोव तक और मास्को के पश्चिम मे ३० मील तक जर्मन सेनाएँ पहुँच चुकी हैं। मास्को के दक्षिण पश्चिम मे एक सेना मिन्स्क और स्मालैंस्क पर अधिकार करके मास्को की ओर बढ रही है, तो दूसरी सेना कुछ और नीचे से कीव पर कब्जा करके खारकोव की ओर चली गई और वहाँ से उत्तर की ओर कुर्स्क और टूला पर अधिकार कर के मास्को की ओर बढ

रही है। इन सब सेनाओं का उद्देश्य मास्को को घेर कर उस पर चारों ओर से आक्रमण करना है। एक विशाल जर्मन सेना रूमानिया से आगे बढ़ कर ओडेसा पर अधिकार करते हुए क्रीमिया की ओर बढ़ रही है। उसने क्रीमिया पर प्रायः अधिकार कर लिया है। इन सेनाओं का उद्देश्य काले सागर के रूसी बेड़े को नष्ट करके काकेशस की ओर बढ़ना है। काकेशस का महत्त्व भौगोलिक और आर्थिक दृष्टि से बहुत अधिक है। मिट्टी के तेल के विस्तृत कूपों तथा अन्य खनिज द्रव्यों के कारण यह जर्मनी के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। दूसरे काकेशस पर अधिकार करके वह ईरान की सीमा तक जा पहुँचेगा।

ईरान

रूस पर आक्रमण शुरू होने के कुछ समय बाद ही ब्रिटेन और रूस ने ईरान में अपनी सेनाएँ भेज दी थीं। वहाँ के शाह रज़ा शाह पहलवी सितम्बर में राज्य त्याग कर के चले गये और उनके पुत्र के नेतृत्व में वहाँ ब्रिटिश पक्षपाती सरकार की स्थापना हो चुकी है।

रूस को सहायता तीन मार्गों से ही पहुँच सकती है। पूर्व में ब्लाडिबोस्टक बन्दरगाह से साइबीरिया होकर २—उत्तर में आर्कटिक महासागर से होकर आरचेंजल के बन्दरगाह से और ३—ईरान की ओर से। पहले मार्ग से जापान ने घोर आपत्ति की है, और फिर प्रशान्त महा-सागर की स्थिति स्वयं भी नाजुक है। दूसरा मार्ग बर्फीले

समुद्र के कारण दुर्गम और व्ययसाध्य है। तीसरा ईरान का मार्ग ही सुलभ और सर्वोत्तम है। वहाँ रेलों का जाल बिछाया जा रहा है, जिससे रूस को पूरी सहायता पहुँचाई जा सके। जर्मनी काकेशस होकर ईरान के इस मार्ग को बन्द करना चाहता है।

यों तो यूरोप का समस्त युद्ध ही भीषण नर-संहार और विनाश की कहानी है, लेकिन जो भयंकर संहार और विनाश रूस के युद्ध में हो रहा है, वह तो चरम सीमा पर पहुँच गया है। स्टालिन ने एक भाषण में ४५ लाख जर्मन सेनाओं के हताहत और गिरफ़्तार होने का दावा किया है, तो हिटलर ने ९ जून के भाषण में ५४ लाख रूसियों के हताहत होने और ३६ लाख के गिरफ़ार होने का दावा किया है। दोनों ओर के नष्ट होने वाले टैंकों की संख्या ५० हजार के करीब बताई गई है। स्वयं रूसी सेनाओं ने बहुत से शहर खाली करते हुए उन्हे भस्मसात् कर दिया, हजारों मील खेतों की पकी फसलें जला दी, ताकि शत्रु लाभ न उठा सके। सोवियट रूस ने नीपर नदी को बाँध कर दुनिया में सब से बड़ा पावर हाउस बनाया था, जिससे वहाँ का समस्त विशाल प्रदेश व्यावसायिक हो गया था। करोड़ों पौण्डों के खर्च से बने हुए इजिनीयरिंग कला के उस अद्भुत बाँध को भी रूसियों ने शत्रु के हाथ में देने के बजाय नष्ट करना उचित समझा।

अब भी एक एक इंच भूमि पर घमासान लड़ाई हो रही

है। जर्मनी भी लाखों सैनिक इस भीषण युद्धाग्नि में झोंक रहा है और रूस भी अपने अन्तिम श्वास तक मुकाबला करने का दृढ़ निश्चय कर चुका है। ब्रिटेन और अमेरिका उसकी सहायता कर रहे है। रूस का हजारों मील लम्बा चौड़ा विशाल प्रदेश अभी पड़ा है। इस युद्ध का अन्तिम परिणाम क्या होगा, यह नहीं कहा जा सकता, लेकिन इतना निश्चित है कि जर्मनी की बहुत बड़ी शक्ति इसमे नष्ट हो जायगी।

अटलांटिक चार्टर

इसी युद्ध के सिलसिले में एक और महान् घटना हुई। अमेरिकन प्रैज़िडैण्ट रूज़वेल्ट और ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल अटलांटिक सागर में एक स्थान पर गुप्त रूप से मिले। उन्हों ने परस्पर विचार विनिमय करके ब्रिटेन और अमेरिका की ओर अपने उद्देश्यों के बारे में निम्न घोषणा प्रकाशित की।

१ दोनों देश प्रादेशिक प्रान्त विस्तार नहीं चाहते। २ किसी भी देश में किसी प्रकार का प्रादेशिक परिवर्तन उस देश-वासियों की सहमति के बिना न हो। ३. प्रत्येक राष्ट्र को अपने देश की शासन-व्यवस्था के आत्मनिर्णय करने का अधिकार है। ४. छोटे बड़े विजयी पराजित प्रत्येक राष्ट्र का आर्थिक समृद्धि के लिए आवश्यक संसार के व्यापार और कच्चे माल में समान भाग हो। ५. आर्थिकक्षेत्र मे सब राष्ट्रों का आपसी सहयोग चाहते हुए श्रमजीवियों के जीवनधरातल की वृद्धि, आर्थिक प्रगति और सामाजिक सुरक्षा का प्रयत्न होगा। ६. नाज़ी आतंक

की समाप्ति पर वे आशा करते है कि सब देश और उनमें बसने वाले नागरिक सुरक्षापूर्वक भय तथा अभाव से मुक्त होकर शान्तिपूर्वक जीवन बिता सकेंगे। ७ बिना किसी बाधा के सब मनुष्य सब समुद्रों और महासागरों मे जा सकेगे। ८ उनका विश्वास है कि सब राष्ट्र भौतिक व आध्यात्मिक कारणों से बलप्रयोग का त्याग कर देंगे। पारस्परिक उत्तेजना पैदा करने वाले और अपनी सीमा के बाहर आक्रमण करने की धमकी देने वाले राष्ट्रों की जल थल वायुसेनाओं का निःशस्त्रीकरण किया जायगा।

सुदूर-पूर्व की स्थिति

सुदूर पूर्व मे जापान कई वर्ष से यूरोपियन तथा अमेरिकन प्रभाव का अन्त करना चाह रहा है। इसी उद्देश्य से उसने जुलाई १९३७ मे चीन पर आक्रमण किया था। परन्तु कुछ तो चीन की असाधारण विशालता के कारण, कुछ चीनियों की असाधारण एकता तथा दृढ़ता और कुछ चीनियों को ब्रिटेन रूस व संयुक्तराष्ट्र अमरीका की निरन्तर सहायता के कारण, जापान अब तक भी चीन को जीत नही सका है।

जापान ने चीन के प्रायः सारे समुद्र तट पर अधिकार कर के समुद्र-मार्ग से चीन का बाहरी संसार के साथ सम्बन्ध बहुत कुछ तोड़ दिया है। अब चीन का अधिकतर यातायात बर्मा की तरफ नयी बनायी गयी पहाड़ी सड़क द्वारा होता है। चीन ने अपनी राजधानी भी पश्चिमी चीन के यूनान प्रान्त मे चूंगकिंग नामक स्थान पर बना ली है।

पूर्वी और उत्तर-पूर्वी चीन के अधिकतर प्रान्तों पर जापान का अधिकार है। उनकी राजधानी नानकिंग बना कर जापान ने वहाँ अपना समर्थन करने वाली एक चीनी सरकार भी, जनरल वांग चींगाई की अध्यक्षता में स्थापित कर दी है। इस सरकार ने अपनी पृथक् चीनी-सेनाओं का संगठन भी आरम्भ कर दिया है।

जापान ने यह मान कर कि चीन की लड़ाई अभी कई वर्ष चलेगी, और यह लड़ाई अकेले चीन से न होकर चीन की भूमि पर ब्रिटेन, अमरीका, रूस तथा चीन की सम्मिलित शक्तियों से होगी, लड़ाई के साथ साथ विजित चीनी प्रदेशों मे अपने आर्थिक, व्यापारिक और व्यावसायिक संगठन मे भी अपना ध्यान लगा दिया है।

चीन के साथ ही, पूर्व के अन्य भागों से भी यूरोपियन प्रभाव नष्ट कर देने की तरफ, जापान ध्यान दे रहा है। मई (१९४०) में हालैण्ड की और जून मे फ्रान्स की पराजय के पश्चात् जापान ने इन दोनों देशों के पूर्व में स्थित साम्राज्यों को अपने प्रभाव में लेने का यत्न किया और उसमे उसे कुछ सफलता भी मिली।

फ्रान्स की सरकार ने कई सप्ताह तक इनकार करने के पश्चात् सितम्बर (१९४०) में जापान को फ्रेंच इण्डोचीन के उत्तरी भाग में अपनी सेनायें रखने का और कस्टम पर नियन्त्रण करने का अधिकार दे दिया। इससे जापान को यह लाभ हुआ कि इण्डो-चीन के रेल-मार्ग से चीन को जो सहायता जाती थी वह बन्द

हो गयी। इधर इण्डोचीन और थाइलैंड के झगड़े में मध्यस्थ वन कर जापान ने अपना प्रभाव थाइलैंड पर भी वढाया था।

जुलाई (१९४१) के अन्त मे जापान और फ्रेंच सरकारों में एक और सन्धि हो गयी कि फ्रेंच इण्डोचीन की जापान तथा फ्रान्स मिल कर रक्षा करेंगे और इस प्रयोजन के लिये इण्डोचीन के सव सामुद्रिक तथा आकाशी अड्डों पर जापानी सेनायें रहेगी। जापान की स्थल-सेनायें भी इण्डोचीन की कई छावनियो मे तैनात कर दी गयी है।

जापान की इस हलचल का जवाव देने के लिये संयुक्त राष्ट्र अमरीका और ब्रिटिश साम्राज्य की सव सरकारों ने अपने यहाँ जापानी सम्पत्ति का लेन-देन वन्द कर दिया। वदले मे जापान ने भी अमरीकन तथा ब्रिटिश साम्राज्य की सम्पत्ति का लेन देन अपने साम्राज्य मे रोक दिया और सं० रा० अमरीका को अपने जहाज़ भेजना बन्द कर दिया।

आजकल जापानी सेनायें वड़ी सख्या मे उत्तर मे रूस की सीमा पर और दक्षिण मे श्याम की सीमा पर एकत्र हो चुकी है। जापान और अमरीका दोनों युद्ध के लिए तैयार है।

इस प्रकार जापान और अमेरिका के सम्बन्ध वरावर बिगड़ते चले जा रहे है। जहाँ उन दोनों देशों मे कई मासों से संधिचर्चा चल रही है वहाँ साथ ही किसी भी क्षण भयंकर विस्फोट की आशा की जा सकती है लेकिन अव तक कोई फल नही निकला। दोनों ओर से भयंकर सैनिक तैयारियाँ हो रही हैं।

ब्रिटेन और जापान के भी सम्बंध इसी तरह उलझते जा रहे हैं। आस्ट्रेलिया, सिंगापुर तथा बरमा में अंग्रेजों की ओर से भी तैयारियां जोर पकड़ रही हैं। यह भी संभावना की जा रही है कि जापान रूस पर ही, जब वह जर्मनी से लड़ते लड़ते बुरी तरह थक जाय, आक्रमण कर दे। मंचूको की ओर लाखों जापानी सेनाएं पहुंच भी चुकी हैं।

अमेरिका अपने जहाजी बेड़े को पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं में और भी ताकतवर बनाने में लगा हुआ है। आइसलैण्ड पर उसने अपना समुद्री अड्डा बनाने का निश्चय किया है। उसके कई जहाज़ डुबोये ज़ा चुके हैं, इस कारण उसने अपने व्यापारिक जहाज़ों को भी सशस्त्र करने के लिए तटस्थता बिल में भी परिवर्तन कर दिया है। ब्रिटिश प्रधानमत्री चर्चिल ने यह भी घोषणा की है कि जिस वक्त अमेरिका जापान से लड़ाई की घोषणा करेगा उसी समय एक घंटे के भीतर इंग्लैंड भी उससे युद्ध घोषित कर देगा।

समस्त संसार की स्थिति भीषण होती जा रही है। एक भयंकर ज्वालामुखी पर वर्तमान संसार बैठा हुआ है। भविष्य के गर्भ में क्या है यह बताना आज असंभव है।

व्यापारी और समुद्री युद्ध

पीछे केवल उन्हीं युद्धों का वर्णन दिया गया है जो लड़ाका राष्ट्रों की सेनाओं ने बाकायदा आमने-सामने खड़े होकर लड़े। ये सब युद्ध स्थल पर ही लड़े गये। इन स्थल-युद्धों के अलावा

आकाश में और समुद्र में भी लड़ाई हुई और हो रही है, परन्तु ये नियमित न होकर एक दूसरे पर छुटपुट हमलों के रूप मे ही रहीं। इनका उद्देश्य मुख्यतया शत्रु को पराजित करना न होकर उसका नुकसान करना ही रहा।

इसी प्रयोजन से ब्रिटिश सरकार ने यह घोषणा की कि ब्रिटेन न तो जर्मनी को कोई जहाज़ जाने देगा और न वहाँ से जर्मन माल लेकर किसी को आने देगा। इस घोषणा में ब्रिटेन का लक्ष्य यह था कि जैसे भी हो जर्मनी का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नष्ट करके उसकी आर्थिक व्यवस्था बिगाड़ दी जाय।

ब्रिटेन की जल-शक्ति बहुत बड़ी होने के कारण वह यह कार्य करने मे समर्थ था। उसने यह प्रबन्ध कर दिया कि उसकी जल-सेना समस्त समुद्र-मार्गों पर पहरा देती रहे और जहाँ कहीं किसी भी जहाज़ को—वह तटस्थ देशों का ही क्यों न हो—जर्मनी के लिये अथवा जर्मनी से माल लाता ले जाता देखे उसे रोककर उसका माल छीन ले। ब्रिटेन को इसमें सफलता भी बहुत हुई और इसी कारण जर्मनी को अपना आर्थिक बल स्थिर रखने के लिये सामुद्रिक व्यापार की सर्वथा उपेक्षा करके अपने अड़ौस-पड़ौस के यूरोपियन राष्ट्रों के साथ व्यापारिक आदान-प्रदान बढ़ाना पड़ा। इससे जर्मनी के सामुद्रिक व्यापार की क्षति कुछ अंशों मे पूर्ण हो गयी।

ब्रिटेन के जवाब मे जर्मनी ने भी यह घोषणा कर दी कि वह ब्रिटेन के साथ किसी भी देश का किसी प्रकार का आदान प्रदान

नहीं होने देगा। जर्मनी को जल-सेना के अभाव में यह काम पनडुब्बियों और वायु-सेना द्वारा करना पड़ा। सन् १९४१ के आरम्भ से उसको इसमें विशेष सफलता मिलने लगी।

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के प्रेज़िडेण्ट रूज़वेल्ट के कथनानुसार, मई मास तक जर्मनी ब्रिटेन के इतने अधिक जहाज़ डुबोने लगा था कि संयुक्त राष्ट्र और ब्रिटेन मिलकर भी डूबे हुए जहाज़ों के आधे से कम बना सकते थे।

ब्रिटेन और जर्मनी के इस समुद्री युद्ध में, बीच बीच में कभी कभी, दोनों देशों के युद्ध-पोतों की टक्कर भी हो जाती थी जिस में कभी जर्मनी का और कभी ब्रिटेन का नुकसान हो जाता था। परन्तु इस प्रकार के युद्धों में अधिकतर जीत ब्रिटेन की ही होती थी।

ब्रिटेन और जर्मनी के आर्थिक युद्ध में, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका ने भी ब्रिटेन को बड़ी मदद दी। उस ने धीरे धीरे उन सब देशों के हाथ माल बेचना बन्द कर दिया जिनकी जर्मनी से सहानुभूति थी अथवा जो उससे माल ख़रीद कर उसे जर्मनी के हाथ बेच देते थे। जापान, स्पेन आदि इन्हीं देशों में से हैं।

आकाशी युद्ध

सामुद्रिक और व्यापारिक युद्धों के अतिरिक्त दोनों देशों के आकाशी युद्ध का ज़िक्र किये बिना भी यह विवरण अपूर्ण ही रहेगा। जून (१९४०) में फ्रान्स की पराजय के पश्चात्, जब जर्मनी ब्रिटेन से अन्य किसी प्रकार न लड़ सका तो उस ने

सितम्बर (१९४०) से ब्रिटेन पर वायु-यानों द्वारा बम-वर्षा आरम्भ कर दी। पहले तो कुछ समय तक ये आक्रमण केवल दिन मे और प्रायः सामरिक महत्त्व के स्थानों पर ही होते थे, परन्तु पीछे जब ब्रिटेन ने जवाब मे जर्मनी पर रात को वायुयान द्वारा आक्रमण करने शुरू किये तब जर्मनी भी रात्रि मे बम बरसाने लगा। इन बम-वर्षाओं मे दोनों ही देशों की नागरिक जनता के भी जान तथा संपत्ति का असाधारण नुक्सान हुआ। दोनों की वायुसेनाओं की भी हानि बहुत हुई। परन्तु इसका ठीक ठीक अन्दाजा युद्ध की समाप्ति से पूर्व नहीं लग सकता।

चौदहवाँ अध्याय

भविष्य के गर्भ में

आज कल संसार में भीषण उथल-पुथल मची हुई है। यूरोप के वक्षःस्थल पर महान् प्रलयकारी युद्ध हो रहा है, जिसकी ज्वालाएँ मध्यपूर्व तक भी आ पहुँची है। इधर पूर्व में जापान चार बरसों से महान् विनाशकारी रणताण्डव कर रहा है। बहुत से देश पराधीन कर लिये जाते हैं और जब वे स्वतंत्र होने का प्रयत्न करते है, तब उन्हें कुचल दिया जाता है। प्रायः समस्त अफ्रीका यूरोपियन साम्राज्य-वादी देशों का शिकार है। एशिया का बहुत सा भूखण्ड भी आज स्वतंत्र नही है। इन सब भूभागों के लिए रोजमर्रा संघर्ष, युद्ध और भीषण विनाश आम बात हो गई है। लाखों निरपराध आदमी बालक स्त्री, पुरुष, मौत के घाट उतार दिये जाते है।

आखिर यह सब क्यों होता है ? अधिकांश विचारक कहते हैं कि इस सब के मूल में मानव की पशुवृत्ति—परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, असन्तोष और अधिक से अधिक पाने का लालच—कारण है। जिस दिन मानव जाति इन दुर्गुणों से ऊपर उठ जायगी, उसी

दिन संसार स्वर्ग बन जायगा, मानव दानव से देव हो जायगा। कुछ विचारकों का दृढ मन्तव्य है कि इसका कारण पूँजीवाद है। पूंजीवाद ही साम्राज्यवाद का मूल कारण है। पूजीवाद का वध कर दो, दुनिया स्वयं स्वर्ग बन जायगी। विचारकों की एक तीसरी श्रेणी भी है। उसका दृढ विश्वास है कि पूंजीवाद भी तब तक नष्ट न होगा, जब तक कि उसका मूल कारण मशीनरी-वाद, बडे बड़े लोहमय दानव कारखाने, जिनके आविष्कार पर आज मनुष्य गर्व करता है, बिलकुल खतम न कर दिया जाय। जब तक मशीनरी रहेगी, बड़ी भारी मात्रा में उत्पत्ति का साधन रहेगा, तब तक स्वयं परमात्मा भी मनुष्य को अत्युत्पत्ति के प्रलोभन से रोक नही सकेगा और जब अत्युत्पत्ति हुई, तो फिर साम्राज्य के लिए पारस्परिक संघर्ष चलेंगे ही। जरूरत इस बात की है कि लोग फिर हजारों बरस पीछे वापस लौट चले। फिर अपने अपने ग्राम को आत्म-निर्भर बनाने की चेष्टा करें, स्वयं अपनी आवश्यकताएं कम करें, जीवन के वर्तमान संघर्पमय आदर्श व क्रम को बदल कर सरल बनावें, मेहनत करें और सादा खावे, सादा पहनें। अपनी आवश्यकताएँ कम करने से ही हम अपने उस प्रलोभन को नष्ट कर सकेंगे, जो हमारे हृदय मे दूसरे के माल या मुल्क हथियाने की प्रेरणा करता है। इस तरह यह दल मानव जाति को फिर कई सौ बरस पीछे ले जाना चाहता है और विज्ञान के बल पर मनुष्य प्रकृति को वश मे करके जो अभिमान करने लगा है, उसका भी खातमा करना चाहता है। इसके अनु-

सार जब सब गाँव स्वावलम्बी होंगे, जब सब देश स्वावलम्बी होंगे, तब स्वयमेव सब संघर्ष भी समाप्त हो जायँगे। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इस दिशा में रहेगा भी नहीं।

सचमुच वर्तमान संसार के विनाशक स्वरूप को देखकर उससे विचारशीलों के हृदय मे खेद और वर्तमान संस्कृति के प्रति तीव्र विरक्ति पैदा होना स्वाभाविक है। लेकिन क्या ऐसा होना संभव भी है ? क्या मनुष्य अपनी सदियों की उन्नति, सदियों के वे आविष्कार भूल जायगा, जिसके लिए उसने हजारों वैज्ञानिकों की अमूल्य जानें चली जाने दीं। क्या सचमुच मनुष्य एक एक देश मे करोड़ों अरबों रुपयों से बने हुए कारखाने, रेल गाड़ियाँ, मोटर आदि तोड़ फोड़ फैंकेगा ? क्या सचमुच सब माया ममता छोड़कर वर्तमान सभ्यता को वह स्वयं नष्ट कर देगा ? क्या वह परस्पर ईर्ष्या द्वेष छोड़ कर पशु से सचमुच देव बन जायगा ? इन सब प्रश्नों का उत्तर 'हां' में मिलना कठिन है।

तब फिर इस संसार का होगा क्या ? क्या संसार की गाड़ी ऐसे ही चलती रहेगी ? क्या संसार में यह संघर्ष, यह रक्तपात और यह महाविनाश ऐसे ही जारी रहेगा ? क्या मनुष्य पशु ही बना रहेगा, देव न बन सकेगा ? इस प्रश्न का भी उत्तर हां में नहीं दिया जा सकता। तब फिर होगा क्या ?

मनुष्य सदा से प्रकृति से युद्ध करता आया है। प्रकृति से इसी युद्ध के कारण वह जंगली से आज का मनुष्य हो सका है। उसने खेती करनी सीखी, कपड़े बनाने और पहनने

सीखे, मकान बनाने लगा, अपने आराम आसायश के लिए उसने देश देशान्तरों मे जाकर सुख की, सपत्ति की, तलाश की, रेलगाड़ी बनाई, मोटरें बनाई, और अब हवाई जहाज बनाये। वह इस विशाल संसार की दूरी और भेद-भाव को अपने समीप लाकर ही संतुष्ट नहीं हुआ, उसे और भी समीप लाने के लिए उसने रेडियो और टैलिविजन का आविष्कार किया। एक दफ़ा उसने विज्ञान का सहारा पकड़ा और आज उसे पकड़ते-पकड़ते इतनी दूर आ पहुँचा है। आज भी उसे अपनी प्रगति से संतोष नहीं है और वह और आगे बढ़ना चाहता है। न जाने यह वैज्ञानिक प्रगति कहाँ समाप्त होगी ?

लेकिन इसके साथ ही दूसरी ओर वह गिर भी गया। उसने प्रकृति को वश मे कर लिया परन्तु वह अपने को वश मे नहीं कर सका। उसके अन्दर जो प्रभुत्व था, वह विज्ञान के महान् साधनों को पाकर और भी अधिक भीषण रूप से ससार के सामने आ गया, उसकी विनाशक शक्ति भी हजारों गुणा बढ़ गई। इसी कारण आज संसार मे इतनी अशान्ति है, इतना संघर्ष है और इतना रक्तपात हो रहा है।

विचारकों का कहना है कि मनुष्य ने अब तक बाहरी प्रकृति को वश मे किया है, अब उसे मानवप्रकृति को भी वश मे करना चाहिए। इसके लिए अनेक प्रयत्न समय समय पर होते भी रहे है। बुद्ध, ईसा और हजरत मुहम्मद ने मनुष्य के आत्मा मे जो परस्पर विरोध और संघर्ष की भावना थी, उसे अहिसा, प्रेम और एकता के

पाठ द्वारा दूर करने का प्रयत्न किया। यद्यपि इन महान् पुरुषों की शिक्षाओं का संसार के इतिहास में विशेष स्थान है, तथापि इनसे संसार की समस्याएँ हल नहीं हो सकीं। शक्तिशाली संस्थाएँ और जनता इन शिक्षाओं को भूल गई। संसार में अनेक उतार चढ़ाव हुए। जर्मनी में कार्लमार्क्स ने यह अनुभव किया कि इस संघर्ष और भेद-भाव का मुख्य कारण पूजीवाद है। यों समस्त संसार की साधारण जनता के सुख दुःख एक से हैं। इसलिए वह परस्पर एकता के सूत्र में ग्रथित हो सकती है उसने "संसार के मजदूरो, एक हो जाओ" का नारा लगाया। इस दिशा मे अन्तर्राष्ट्रीय बंधुत्व का प्रयत्न भी हुआ लेकिन फिर जनता अपने अपने राष्ट्र के संकुचित दायरे में बह गई। गत महासमर के भीषण परिणाम को देख कर फिर मनुष्य के हृदय में संकुचित राष्ट्रीयता के दायरे से निकल कर विशाल अन्तर्राष्ट्रीय परिवार बनाने की इच्छा हुई। इसी इच्छा का परिणाम राष्ट्रसंघ था। सब राष्ट्र मिल कर सब मामलों का फैसला करें और सब एक दूसरे की सामूहिक रक्षा की गारंटी दें। बहुत अच्छा प्रयत्न था, लेकिन अब भी मनुष्य का स्वार्थभाव दूर न हो सका था। फलतः राष्ट्रसंघ बिखर गया, अन्तर्राष्ट्रीय विश्वबंधुत्व का भाव एक स्वप्न होगया और आज फिर संसार एक महाविनाशक ताण्डव देख रहा है। आज मनुष्य इतना स्वार्थी, नीच और पशु हो गया है, एक दूसरे के खून का इतना प्यासा हो गया है कि यह कल्पना भी करना दुःसाहस का काम है कि सब राष्ट्र एक

हो जावेंगे। लेकिन आशावादियों का कहना है कि यह शायद मानव जाति को अंतिम ठोकर है, वह इस युद्ध के समाप्त हो जाने पर सब प्रकार के आवेश आवेग से ऊपर उठ कर शान्त हृदय से सोचेगी कि आखिर यह सब विनाश किस लिए? मनुष्यमात्र एक है। स्वार्थभावना से दूसरे का नाश ही होता है, अपना भी होता है। इस युद्ध मे जो हारेगा, वह तो हारेगा ही, जो जीतेगा, वह भी अपना सर्वस्व खो देगा। तव मनुष्य की बुद्धि बुरे भले पर विचार करेगी और फिर संसार मे एक होने का प्रयत्न करेगी। जो राष्ट्रीय सरकार या पूजीपति अथवा कोई तीसरी शक्ति उसमे वाधक होगी उसे उखाड़ने मे भी मनुष्य संकोच नही करेगा। विज्ञान ने समस्त संसार को बहुत अधिक समीप लाकर एक नगर सा वना दिया है। मनुष्य का चेतन आत्मा इस नगर के विविध मुहल्लों या एक विश्वपरिवार के विविध सदस्यों में एकता प्रेम और परस्पर विश्वास की भावना उत्पन्न करेगा।

यही विचारक आगे कहते है कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी अपनी उन्नति कर रहा है, पुराने साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने के मार्ग पर हैं और जो नये साम्राज्यवादी राष्ट्र अपना अपना साम्राज्य बढ़ाने का नये सिरे से प्रयत्न कर रहे है, वे या तो सफल नही होंगे और हो भी गये, तो शीघ्र ही उनके साम्राज्य भी अस्तव्यस्त हो जावेंगे। प्रत्येक देश मे स्वाधीनता और स्वावलम्बन की जो भावना उठ रही है, वह भले ही कुछ समय तक सफल न हो

सके, लेकिन उसे रोकना कठिन है। वह सफल होकर रहेगी और तब सब राष्ट्र और सब राष्ट्रों की जनता समानता के आधार पर ही परस्पर मिल सकेगी। ऐसा समय आवेगा अवश्य, यह संभव है कि इसमें दस बीस साल लगें या एक दो सदियें लगें।

पन्द्रहवाँ अध्याय

आवश्यक शब्द-कोष

आजकल अखबारो और साधारण बोलचाल मे बहुत से ऐसे पारिभाषिक अंग्रेजी शब्द प्रयोग मे आने लगे हैं, जो काफी महत्त्वपूर्ण हैं और जिनका अर्थ आजकल सर्वसाधारण के लिए जानना जरूरी है। हम उन मे से कुछ मुख्य मुख्य शब्द, उनका संक्षिप्त परिचय और उन के अर्थ नीचे दे रहे है।

अनार्किस्ट—अराजकतावादी। अराजकता या अराजकता-वाद मे एक ऐसे समाज की कल्पना की जाती है, जिसका आधार पूर्ण समानता, भ्रातृत्व और स्वतन्त्रता हो। इस समाज मे किसी सरकार की जरूरत नहीं होती। मनुष्य स्वयं अपनी स्वयंसेवक समिति बनावेंगे। दण्ड या सजा का इसमे नाम भी नहीं होगा।

अम्बैसैडर—किसी राज्य का दूत या संदेशहर।

इम्पीरियल प्रेफ़रेंस—ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तवर्ती देशों ने यह निश्चय किया था कि साम्राज्य के देश परस्पर एक दूसरे के माल पर साम्राज्यभिन्न देशों की अपेक्षा रियायत करें अर्थात् कम कर लगावे।

इलैक्शन—प्रतिनिधियों का चुनाव।

एसक्सि पावर्स—धुरी राष्ट्र। इटली, तथा जर्मनी एक्सिस

पावर या धुरी राष्ट्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन दोनों के आर्थिक राजनैतिक आदर्श एक से हैं।

एक्स्ट्रा-टैरिटोरियेलिटी—एक देश में ऐसा विदेशी व्यक्ति जिस पर उस देश के स्थानीय नियम और अदालतें प्रभाव न डाल सकती हों। साधारणतः सब राजाओं और राजदूतों को यह अधिकार दिया जाता है। किसी किसी देश में विशेष संधियों के अनुसार एक विशेष देश के नागरिकों को भी यह अधिकार प्राप्त है।

एग्रैसर—आक्रमणकारी देश।

एजैण्डा—किसी सभा आदि का कार्यक्रम।

एडजर्नमैण्ट मोशन—असेम्बली, पार्लमेंट या किसी अन्य सभा मे प्रस्तुत विषय को स्थगित करके किसी असाधारण प्रश्न पर विचार करने का प्रस्ताव।

एण्टिकमिण्टर्न पैक्ट—जर्मनी, इटली और जापान में रूस के विरुद्ध समझौता। इस का उद्देश्य रूस की साम्यवादी प्रवृत्तियों को आगे बढ़ने से रोकना था। पीछे से इस समझौते में युगो-स्लाविया, स्पेन, पौलैण्ड और हँगरी भी शामिल हो गये।

एपीज़मैण्ट पालिसी—संतुष्ट करने की नीति। ब्रिटिश प्रधानमंत्री मि० चैम्बरलैन ने जर्मनी की बढ़ती हुई हलचलों के बारे मे यह नीति स्वीकार की थी कि जर्मनी की मांगों को थोड़ा बहुत स्वीकार करते जाओ, जिससे लड़ाई टल जाय।

ओगपू—रूस की खुफिया पुलिस।

ओटावा पैक्ट—कैनेडा के प्रमुख शहर ओटावा मे ब्रिटिश साम्राज्य के सब देशों ने एक व्यापारिक समझौते पर हस्ताक्षर किया था। इसका आशय यह था कि परस्पर एक दूसरे के माल पर अन्य देशों की अपेक्षा कम कर लगाये जावें।

कमिण्टर्न—रूसी कम्यूनिस्टों की केन्द्रीय संस्था, जो समस्त संसार मे कम्यूनिस्ट प्रगतियों की देखरेख करती है कमिण्टर्न कम्यूनिस्ट इण्टरनेशनल का ही सक्षिप्त रूप है।

कस्टम—किसी देश की सीमा पर लिए जाने वाले माल पर चुंगी कर।

कंज़र्वेटिव पार्टी—अनुदार दल, ब्रिटेन की एक प्रसिद्ध राजनैतिक पार्टी। यह साम्राज्यवाद और पूंजीवाद में विश्वास रखती है। इग्लैंड मे इसका बहुत प्रभाव है। बहुत समय तक वहाँ इसी दल की सरकार रही और आज भी है।

कंस्टिट्यूएंसी—निर्वाचन क्षेत्र।

कंस्टिट्यूएंट असेम्बली—किसी देश का विधान बनाने के लिए संगठित असेम्बली।

कंस्टिट्यूशन—शासन-विधान।

कामनवैल्थ—ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशों का संघ।

कास्टिंगवोट—किसी प्रश्न पर बराबर बराबर मत आने पर सभापति का निर्णायक मत।

कुओमिनतांग—चीन की राष्ट्रीय पार्टी। इसे स्व. डा० सन-

यातसेन ने स्थापित किया था। १९२५ में उनके देहान्त के बाद चांगकाई शेक इसका नेता बना। कम्यूनिस्ट चीनी इसके सदस्य नहीं हो सकते।

कैलोग पैक्ट—१९२८ मे जर्मनी, अमेरिका, फ्रास, ब्रिटेन इटली, जापान आदि विभिन्न राष्ट्रों मे एक संधि हुई थी कि वे परस्पर युद्ध न करेंगे। इस संधि का प्रस्तावक अमेरिका का तत्कालीन परराष्ट्रमंत्री कैलोग था।

कैबिनेट—मंत्रिमंडल। इसकी शासन की संयुक्त जिम्मेवारी होती है।

कोटा—परस्पर सन्धि या निर्णय द्वारा किसी निश्चित पदार्थ के आयात या निर्यात के लिए नियत मात्रा।

कोरम—किसी सभा में कार्यवाही चलाने के लिए अनिवार्य उपस्थिति।

कोर्ट मार्शल—सैनिक अनुशासन-भंग पर विचार करने के लिए सैनिक न्यायालय।

कोयलिशन गवर्नमैण्ट—विविध दलों की संयुक्त सरकार।

क्लोज़र—किसी प्रश्न पर बहस को समाप्त करने का प्रस्ताव।

गर्ल गाइड—स्काउट लड़कियों की संस्था।

गुडविल—किसी व्यापारिक कम्पनी की प्रतिष्ठा, जिसका आर्थिक मूल्य लगाया गया हो।

गुरिला वारफ़ेयर—आमने सामने की बाकायदा लड़ाई न होकर छिपे छिपे पीछे से हमला करना।

गोल्डस्टैण्डर्ड—स्वर्णमान (इसमे मुद्रा या नोट) के पीछे उतना ही सोना देने का सरकार आश्वासन देती है।

ज़ीरो आवर—वह समय, जब कि युद्ध बिलकुल शुरु होने वाला हो।

टारपीडो—भारी विस्फोटक जहाज़, जो प्रायः दूसरे बड़े जहाजों को डुबोने के काम आता है।

टैंक—ऐसी सशस्त्र गाडी, जो ऊबड़खाबड जमीन पर चल सके। इसकी चादर बहुत मोटी होती है। युद्ध मे सहार के लिए इसका आजकल बहुत प्रयोग किया जा रहा है।

टोरी—ब्रिटेन की अनुदार पार्टी का नाम किसी समय टोरी था। इसीसे बिगड़कर टोडी बना है, जो आजकल सरकार-परस्तो के लिए छेड का नाम रख लिया गया है।

ट्रेडयूनियन—मजदूर संघ।

डायार्की—द्वैध या दुहरा शासन। इसमे शासनो के महकमे दो विभिन्न सस्थाओं के हाथ मे बँटे हुए होते है।

डिक्टेटर—किसी देश का एकमात्र नेता, जिसे कानून बनाने या कोई भी आज्ञा निकालने का अधिकार हो।

डिविडेण्ड—शेयर होल्डरों (हिस्सेदारों) मे बाँटने के लिये व्यापारिक कम्पनी का लाभ।

डिसआर्मेमेण्ट—निःशस्त्रीकरण। १९२४-२५ मे विविध राष्ट्रो मे अपने शस्त्रास्त्र कम करने की आवाज उठी थी। कई कांफ्रेंसे भी हुई, लेकिन कोई फल न निकला।

डैमोक्रेसी—प्रजातन्त्र या प्रतिनिधि तंत्र शासन पद्धति।
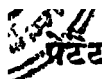
डोमिनियन स्टेटस—औपनिवेशिक स्वराज्य, इसमें उपनिवेश को आन्तरिक मामलों और व्यापारिक सन्धियों में पूर्ण स्वतन्त्रता होती है पर सम्राट् के प्रति भक्ति सब उपनिवेशों और शासक देश को एक सूत्र में बांधती है।

थर्ड इण्टरनेशनल—(देखिये कमिण्टर्न)।

नाज़ी—जर्मनी की नेशनल सोशलिस्ट पार्टी के नाम का संक्षिप्त रूप नाज़ी है। इसका नेता हिटलर है।

नानकोआपरेशन—असहयोग। गांधी जी ने १९२१ में सरकार से पूर्ण संबंधविच्छेद आन्दोलन चलाया था। इसके पांच अंग थे—सरकारी अदालत, सरकारी नौकरी, सरकारी स्कूल, सरकारी खिताब आदि को छोड़ना और विदेशी वस्त्र का बहिष्कार।

नेवी—जल सेना।

पेटैंट—स्वामित्व का एकमात्र अधिकार। भारत में यह अधिकार पेटैंट आफिस, कलकत्ते से प्राप्त किया जाता है।

पैराशूट—हवाई छतरी। वायुयानों से इस छतरी के द्वारा उड़ाके एकदम नीचे आ जाते है।

प्राविंशियल अटानामी—प्रान्तीय-स्वतन्त्रता। केन्द्र के नियंत्रण से वाहर अधिकाश कार्यों मे प्रान्तों को स्वतन्त्र अधिकार।

प्राहिविशन—नशावन्दी।

प्रिवीकौंसिल—इंग्लैंड मे वहाँ के राज्य को परामर्श देने वालों का वर्ग। इसके दो विभाग है। एक शासन विभाग दूसरा न्याय विभाग। न्याय विभाग ब्रिटिश साम्राज्य भर मे अपील के लिए अन्तिम न्यायालय है।

प्रिवी पर्स—राजा के अपने खर्च के लिए स्वीकृत रकम।

प्रोटैक्टरेट—संरक्षित। एक दुर्वल राष्ट्र का किसी वलवान् राष्ट्र द्वारा सरक्षण और दवाव। उसे शासन के आन्तरिक अधिकार तो रहते है, लेकिन विदेशी सम्वन्ध और सेना का संगठन वलवान् राष्ट्र के हाथ मे रहता है। मंचूरिया जापान का संरक्षित राष्ट्र है। सोमालिलैण्ड, यूगाण्डा आदि ब्रिटेन के संरक्षित राष्ट्र है।

प्लीबिसाइट—किसी एक निश्चित प्रश्न पर समस्त राष्ट्र के नागरिकों का हाँ या ना मे मत लेना। वर्सैलिज़ की सन्धि मे यह निश्चय किया गया था कि सार आदि प्रदेशों के निवासियों से यह प्रश्न पूछा जायगा कि वे फ्रास या जर्मनी मे किस देश के

साथ रहना चाहते हैं प्लीबिसाइट होने पर सार के निवासियों ने जर्मनी के साथ रहना स्वीकार किया था, फलतः वह प्रदेश जर्मनी में मिला दिया गया था । हिटलर कई बार अपनी नीति के बारे में जर्मनराष्ट्र का मत ले चुका है।

प्वायंट आफ़ आर्डर—बहस का कोई ऐसा सवाल, जो कानूनी और वैधानिक प्रश्न से संबंध रखता हो।

फासिस्ट—फासिज़्म के आर्थिक और राजनैतिक कार्य-क्रम को मानने वाला । आजकल इटलो, जर्मनी और स्पेन फासिस्ट राष्ट्र है।

फ़िफ्थकालम—पाँचवीं कतार। यह शब्द स्पेन के महायुद्ध के समय प्रयोग मे आया था, जब मैड्रिड पर नेशनलिस्ट दल ने आक्रमण किया था और मैड्रिड के अन्दर रहने वाले ही कुछ लोगों ने सरकार को धोखा देकर आक्रमणकारी की सहायता दी थी। अपने ही देश मे रहने वाले शत्रुसेना के सहायक को भी शत्रु की पाँचवी सेना कहा जाता है।

फ़ैडरेशन—संघविधान। शासन-विधान की वह पद्धति, जिसमें विविध राष्ट्र आन्तरिक मामलों मे अपनी स्वतंत्रता एक सीमा तक रखते हुए भी एक सघ बना लेते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कैनेडा आस्ट्रेलिया इसी के उदाहरण हैं। भारत मे भी नये कानून के अनुसार सरकार यही विधान जारी करना चाहती है।

फ़्यूरर—जर्मनी का नेता हिटलर जब प्रेजिडैण्ट चुना गया

उसने प्रेजिडेंएट कहलाने की बजाय अपने को फ्यूरर ही कहलाना पसन्द किया।

फ्रैंचाइज़—चुनाव में मत देने का अधिकार।

बाइ-इलैक्शन—उपचुनाव। किसी संस्था के मुख्य चुनाव के बाद किसी एकाध रिक्त स्थान का चुनाव।

बाइ लॉज़—उपनियम। किसी महकमे, कमेटी, संस्था या व्यापारिक कम्पनी के अपने अपने कार्य संचालन के नियम।

बायकाट—बहिष्कार। एक देश, जाति या समाज का दूसरे देश, जाति अथवा व्यक्ति के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने से इनकार करना। विभिन्न देशों मे राजनैतिक और आर्थिक कारणों से अलग अलग देशों के माल का पूर्ण बहिष्कार प्रयत्न किया गया है। भारत मे ही विदेशी वस्त्र के बहिष्कार का और चीन मे ब्रिटिश व जापानी माल के बहिष्कार के जोरदार आन्दोलन चल चुके हैं। बायकाट शब्द का यह अर्थ कैसे हुआ यह भी एक मनोरंजक घटना है। १८८० मे चार्लस कनिंगहम बायकाट नामक जमींदार किसानों पर रोजमर्रा के अत्याचारों से बहुत अप्रिय हो गया था। उस समय लैण्डलीग नामक संस्था ने यह फैसला किया कि उसके साथ किसी तरह का सम्बंध न रखा जावे। उसके यहाँ कोई नौकरी न करे, कोई उसके पास भोजन, कपड़ा आदि किसी प्रकार की आवश्यक सामग्री न बेचे। दूसरे भी ज़मींदारों के साथ बायकाट जैसा व्यवहार किया गया और बायकाट का अर्थ ही बहिष्कार हो गया।
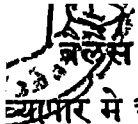
बालफोर डिक्लेरेशन—बालफोर की घोषणा। ब्रिटेन के परराष्ट्रसचिव लार्ड बालफोर ने १९१७ मे फिलस्तीन के बारे मे एक प्रसिद्ध घोषणा की थी कि फिलस्तीन को यहूदियों का राष्ट्रीय गृह बनाया जायगा। बालफोर ने यहूदियों को युद्ध में सहायता देने की अपील करते हुए उन्हें वचन दिया था कि ब्रिटिश सरकार फिलस्तीन मे यहूदियों को बसाने की पूरी कोशिश करेगी। इसी घोषणा के अनुसार अंग्रेज़ों ने युद्ध के बाद लाखों यहूदियों को वहाँ बसाया। इससे अरबों मे यहूदियों के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन चला और बहुत दफा अरबों का यहूदियों और ब्रिटिश सरकार से संघर्ष हुआ। अब तक भी यह समस्या सुलझी नही है।

बिग फाइव—पाँच महाशक्ति। फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, इटली, अमेरिका और जापान के लिए गत महायुद्ध के बाद यह नाम लिया जाता था। इन्हीं ने वर्सेलिज़ संधि तैयार की थी।

बी. बी. सी.—ब्रिटेन का ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन।

बुर्जुआ—उच्च मध्यम श्रेणी और अमीरों के लिए घृणा का शब्द। साम्यवादी और मजदूर किसान इसी नाम से दूसरों का मज़ाक उड़ाते हैं।

बैलट—परची। चुनाव में अपना मत गुप्त रखने के लिए एक परची पर मतदाता अपने उम्मीदवार के नाम के आगे निशान लगा देता है।

बैलेंस आफ़ ट्रेड—किसी देश के आयात और निर्यात व्यापार मे अन्तर।

बैलेंस शीट—एक कम्पनी या संस्था की आर्थिक स्थिति का दिग्दर्शक चित्र। इसमे आय-व्यय, लेन-देन और वर्तमान सम्पत्ति सब का हिसाब रहता है।

बोनस—वेतन और मजदूरी के इलावा कम्पनी को लाभ होने पर उसके कर्मचारियो को जो रकम बॉटी जाती है, उसे बोनस कहते है।

बोलशेविक—रूस के क्रान्तिकारी दल का नाम। यों इसका शब्दार्थ है बहुसंख्यक दल। १९०३ मे क्रान्तिकारी दल मे फूट पड़ गई थी, बहुसंख्यक मत रक्तपात की क्रान्ति के हक मे थे। उस पार्टी का नाम ही बोलशेविक पड़ गया और उसके सिद्धान्त बोलशेविक कहाये। लेनिन और ट्राटस्की बोलशेविक पार्टी के प्रमुख नेता थे। (विस्तृत परिचय के लिए देखिये पृष्ठ ११८ और १२२।)

ब्लिट्ज़ क्रीम—वैद्युतिक आक्रमण। यह एक जर्मन शब्द है। उसका अर्थ है कि युद्ध मे बिजली की सी आकस्मिकता, इतनी तेजी इतनी फुर्ती और भीषणता से चौमुखा हमला करना कि शत्रु सुधबुध भूल जावे। इसमे टैंक, मोटर सेना, वायुयान और हवाई बमों से एक साथ जोरदार ज़बर्दस्त आक्रमण किया जाता है।

ब्लैक आउट—शहर की सब प्रकार की रोशनी बंद करने

को ब्लैकआउट कहते है। शत्रु रात को शहर को पहंचान कर उस पर बम वर्षा न कर सके इसलिए शहर मे सब प्रकार की रोशनी बन्द कर दी जाती है और समस्त शहर अंधकार मग्न हो जाता। है फलतः शत्रु का निशाना ठीक नहीं लग पाता।

ब्लोकेड—घेरा। युद्ध में शत्रु राष्ट्र के सब समुद्री और स्थलीय मार्गों पर ज़बर्दस्त पहरा, ताकि कोई जहाज़ युद्ध सामग्री व अन्नादि शत्रु देश को न पहुँचा सके। इसे आर्थिक घेरा भी कह सकते हैं।

माइन—विस्फोटक इंजिन। आज कल चुम्बकीय सुरंगों का युद्ध मे बहुत प्रयोग किया जाता है।.समुद्र में बड़े-बड़े गोलाकृति के बम चुम्बकित करके डाल दिये जाते हैं, जो किसी भी जहाज़ के आते ही उसके लोहे से आकृष्ट होकर जोर से उसके पास जाते हैं, टकराने से भारी विस्फोट होता है और जहाज़ भी जल कर डूब जाता है। ऐसी माइन का प्रयोग अब स्थल पर भी होने लगा है।

मार्शल ला—फौजी कानून। जब शहर का प्रबंध अधिकारियों से लेकर फौजी अफसरों के सुपुर्द कर दिया जाता है, तब मार्शल ला का शासन होता है।

मिण्ट—टकसाल, जहाँ सरकार रुपये आने पाई के सिक्के ढालती है।

मनरो डाक्टरिन—मनरो का सिद्धान्त। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के प्रैज़िडैण्ट मनरो ने यह घोषणा की थी कि उत्तरी या

पश्चिमी अमेरिका पर अब कोई विदेशी शक्ति हस्ताक्षेप न कर सकेगी। इसके अनुसार अमेरिका मे यूरोपियनों के बढ़ते हुए प्रभाव और बल पर रोक लगा दी गई।

मे डे—मई की पहली तारीख। समस्त ससार के मजदूर इस दिन अपनी एकता स्थापित करने के लिए हड़ताल करते हैं और सभाएँ जलूस आदि द्वारा एकता का प्रदर्शन करते है।

मेयर—किसी शहर के कारपोरेशन का अध्यक्ष मेयर कहलाता है।

मैग्नाकार्टा—इग्लैण्ड के राजा जोन ने १५ जून १८१५ को एक अधिकार पत्र पर हस्ताक्षर करके जनता की स्वतन्त्रता के अधिकार को स्वीकृत किया था। लोकतत्र के इतिहास मे यह पहला कदम था, इस लिए इसका विशेष महत्त्व है।

मैण्डेट—आदिष्ट राज्य। वर्सेलिज संधि के बाद राष्ट्रसंघ ने जर्मनी और टर्की के अधीनस्थ कुछ प्रदेशों के शासन की जिम्मेवारी विभिन्न मित्र राष्ट्रो पर डाल दी थी। ईराक, फिलस्तीन, सीरिया आदि आदिष्ट राज्य है, अब ईराक स्वतत्र हो गया है।

मोण्टिसरी सिस्टम—बालशिक्षण की नई पद्धति, जिसका आविष्कार इटली की प्रसिद्ध शिक्षा-विशारदा मोण्टिसरी ने किया है। उसके अनुसार बालकों को खेल खेल मे ही गणित, भूगोल इतिहास आदि की शिक्षा दी जाती है। आज कल भारत मे भी इसका प्रचार हो रहा है।

म्यूनिक पैक्ट—म्यूनिक का समझौता। सितम्बर १९३८

में जर्मनी, फ्रांस, ग्रेटब्रिटेन और इटली ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये, जिसके अनुसार जैकोस्लोवेकिया का सुडेटन प्रदेश जर्मनी को मिलने का निश्चय हुआ। यह भी तय हुआ कि दस दिनों में ही जैक सेना और जैक अधिकारी सुडेटन प्रान्त से चले जावें। इस समझौते की समस्त संसार ने निन्दा की थी। एक बार जर्मनी का पैर बढ़ा और वह पीछे से सारे जैकोस्लोवेकिया को ही निगल गया।

राउण्ड टेबल कांफ्रैंस—गोलमेज कान्फ्रैस। ऐसा कान्फ्रैंस, जिस मे भाग लेने वालों की स्थिति एक समान हो।

रायल्टी—किसी विशेष अधिकार से व्यापारिक लाभ में नियत भाग दिया जाना। अधिकांश लेखक और आविष्कारक अपनी रचना के लिए बिक्री पर १५-२० फीसदी रायल्टी लेते हैं।

रिटर्निंग अफ़सर—चुनाव-अफ़सर।

रिपब्लिक—प्रजातंत्र राज्य। संघविधान या केन्द्रीय कोई भी शासन-पद्धति हो, एकतंत्र राज्य न हो।

रेवोल्यूशन—क्रान्ति। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक किसी भी क्षेत्र मे आधारभूत व्यवस्था को बदल कर नयी परिस्थिति पैदा करना।

रीचस्टाग—जर्मनी की व्यवस्थापिका सभा। कोई कोई इसे रीशस्टाग भी लिखते हैं।

रैडक्रास सोसायटी—मानव जाति को दुःख, बीमारी, चोट आदि से बचाने का प्रयत्न करने वाली एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था।

इसका मुख्य निशान सफेद चादर पर लाल क्रॉस है। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय नियम है कि जिस इमारत, मोटर आदि पर रैड क्रॉस का निशान हो, उस पर हमला न किया जावे।

रैफरैण्डम—किसी एक निश्चित प्रस्ताव के पक्ष या विपक्ष में जनता के मत जानने का तरीका। स्विटजरलैण्ड मे यह बहुत समय से प्रचलित है। जर्मनी मे भी अब यह प्रयुक्त होने लगा है।

लीग आफ़ नेशन्स—राष्ट्रसंघ। गत महायुद्ध के बाद वर्सेलिज सन्धि के परिणामस्वरूप राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई थी। पहले वही २९ राष्ट्र ही इसके सदस्य थे, पर पीछे बढते बढ़ते करीब ८० राष्ट्र उसके सदस्य हो गये। राष्ट्रसंघ के सदस्यों ने निश्चय किया था कि कोई देश किसी दूसरे देश पर आक्रमण न करे, विवादास्पद प्रश्न आपस मे ही समझौते द्वारा हल किये जावें। आक्रमणकारी के विरुद्ध सब सदस्य राष्ट्र सम्मिलित कार्रवाही करें। लेकिन जब जब ऐसे अवसर आये, जापान और इटली ने क्रमशः चीन और अबीसीनिया पर हमला किया, राष्ट्रसंघ कोई ख़ास कदम न उठा सका। इससे राष्ट्रसंघ बहुत अप्रिय और निर्बल हो गया। आज राष्ट्रसंघ को कोई नहीं पूछता। वह एक मृत संस्था के समान है।

लैफ्ट विंग—वामपक्षी। किसी राजनैतिक संस्था के वर्तमान अधिकारियों से भी अधिक उग्र और गरम विचार रखने वाले दल को लैफ्टविंग या वाम पक्षी कहते हैं। इसके विपरीत नरम विचार वालों को राइट विंग या दक्षिण पक्षी कहते है।

लौक आउट—मिल मालिक द्वारा मजदूरों को रोकने के लिए मिल को ताला लगा देना।

लोकार्नो पैक्ट—१६२५ में स्विट्ज़रलैण्ड के लोकार्नो स्थान पर जर्मनी, बेलजिअम, फ्रांस, ब्रिटेन, इटली आदि में कुछ समझौते हुए थे। एक समझौते के अनुसार उक्त देशों ने सीमा संबंधी तत्कालीन स्थिति को क़ायम रखने का प्रण किया था। दूसरे समझौते के अनुसार जर्मनी व पोलैण्ड ने एक दूसरे पर अनाक्रमण संधि करके आपसी मामलों को समझौते से हल करने का वायदा किया। जर्मनी व जैकोस्लोवेकिया में उक्त आशय की एक संधि हुई। फ्रांस ने पोलैण्ड व जैकोस्लोवेकिया से परस्पर सहायता की संधि की।

लैसे फ़ैयर—मुक्तनीति। सरकार द्वारा व्यापारियों व व्यवसायियों को खुली प्रतिस्पर्धा और व्यापार पर किसी प्रकार का बंधन न लगाना।

लोसान कांफ्रेस—प्रमुख यूरोपियन राष्ट्रों ने १९३२ में लोसान स्थान पर जर्मनी की पिछली क्षतिपूर्ति की अदायगी से मुक्ति दी और इसके बदले में जर्मनी ने १५०० लाख पौण्ड यूरोप के पुनर्निमाण के लिए देना किया। लेकिन उसने इन दोनों मे से कोई भी रकम नहीं दी।

लोसान संधि—१९२३ ई० में ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, जापान, ग्रीस, रूमानिया व टर्की की परस्पर एक संधि हुई, जिसके

अनुसार टर्की की स्वतंत्रता स्वीकार की गई और उसने मिश्र, सूडान, साइप्रस पर से अपना अधिकार छोड़ दिया।

वफ़्द—मिश्र की राष्ट्रीय पार्टी। इसे जगलूल पाशा ने स्थापित किया था इस का उद्देश्य मिश्र मे से ब्रिटिश प्रभुत्व को हटाना था। नेता की मृत्यु के बाद यह पार्टी कमजोर हो गई लेकिन नहस पाशा के समय १९३८ मे तो इसका बल बहुत घट गया।

वर्सैलिज़ ट्रीटी—वर्सैलिज की संधि। गत महायुद्ध के बाद जर्मनी और मित्रराष्ट्रों ने इस संधि पर २८ जून १९१९ को हस्ताक्षर किये थे। इसके अनुसार जर्मनी को यूरोप मे २७३० वर्गमील अपना प्रदेश और ६५ लाख अपनी आबादी छोड़नी पडी। अलसेस लोरेन प्रान्त फ्रांस को, यूपेनमैल्मेडी बेलजियम को, पोसेन और पोलिश कोरीडर पोलैण्ड को, मैमल लिथुआनिया को देने पड़े। डैनजिग पर से उसने अपना स्वामित्व हटा लिया। राइनलैंड पर १५ वर्षों के लिए मित्र-राष्ट्रों ने अधिकार कर लिया। सार पर भी अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार हो गया।

उपनिवेशों की क्षति वर्गमीलों मे चौगुनी और जनसंख्या मे दुगुनी थी। युद्धक्षति के नाम पर उस पर अरबों रुपये का हर्जाना डाल दिया गया। जर्मनी को थोड़ी सी स्थल सेना के सिवा सब सेना भंग करनी पड़ी।

वीटो—अनेक शासन-पद्धतियों में राजा या मुख्य शासक को यह अधिकार होता है कि वह व्यवस्थापिका सभा के निर्णय

को अपने अधिकार से रद्द कर दे । जैसे भारत मे वाइसराय को प्राप्त है ।

वेटेज इन रैप्रिज़ैण्टेशन—जन संख्या के अनुपात से किसी अल्पसंख्यक जाति को जितने स्थान मिलने चाहिएं उससे कुछ अधिक स्थान देना ।

वैटिकन—पोप का राज्य। पोप कैथोलिक ईसाइयों के धर्मगुरु कहाते हैं ।

सबमैरीन—पनडुब्बी । एक ऐसा जहाज़ जो पानी के अंदर अन्दर चलता है और किसी भी छोटे बड़े जहाज़ को नीचे से ही तारपीडो मार कर डुबो देता है ।

सिडीशन—राजद्रोह । सिडीशस स्पीच—राजद्रोह पूर्ण भाषण ।

सिलैक्ट कमेटी—किसी प्रस्ताव या विल पर अच्छी तरह विचार करने के लिए चुने हुए सदस्यों की एक कमेटी नियत की जाती है ।

सिविल—दीवानी ।

सिविल वार—गृह युद्ध । एक ही देश की दो पार्टियों में होने वाला युद्ध ।

सीगफ्रीड लाइन—जर्मनी की पश्चिमी किले बंदियाँ सीगफ्रीड लाइन के नाम से प्रसिद्ध है । फ्रांस ने अपनी सीमा पर जो मैजिनो लाइन बनाई थी उसके जवाब में यह लाइन बनाई गई थी । १९३९ में हिटलर ने इसे बनाने में जर्मनी की संपूर्ण शक्ति

लगा दी थी। यह लाइन फौलाद सीमेंट कंक्रीट के चबूतरों की बनी हुई है और पहाड़ियों के ऊपर व घाटियों के नीचे सड़क की भाँति उत्तर से दक्षिण को जाती है। इन चबूतरो के पीछे मशीनगनों की एक बाढ़ और अन्त इस तरह की अनेक शृखलाए तथा जमीन के अन्दर किलेबंदियाँ है, जिनमे हजारों आदमी रह सकते है।

सोवियट—रूस की ग्राम पंचायत। रूस के शासन-विधान का आधार यही पंचायते नियत की गई थी, इसलिए रूस का नाम भी सोवियट रूस या सोवियट पचायतों का सघ रखा गया।

स्पीकर—असेम्बली या हाउस-आफ कामन्स के अध्यक्ष को स्पीकर कहते है।

हाउस आफ़ कामन्स—लोकसभा। ब्रिटेन की पार्लमेण्ट के दो भाग हैं। जिसमे साधारण जनता के प्रतिनिधि होते है, उसे हाउस आफ कामन्स या लोकसभा कहते है।

हाउस आफ लार्ड्स—ब्रिटिश पार्लमेंट का वह भाग जिसमे उच्चकुलीन, लार्ड और विभिन्न ऊचे अधिकारी रहते है। आज कल इसके अधिकार सीमित हो गये है।

हैंगर—हवाई जहाजों के रखने का टिनशैड।

हैबिअस कार्पस एक्ट—ब्रिटेन का यह कानून १६७९ मे बना था, इसके अनुसार सरकार किसी व्यक्ति को तब तक गिरफ़ार करके जेल मे नही डाल सकती, जब तक कि अदालत उस पर

पूरी तरह विचार करके अपनी स्वीकृति न दे दे। जनता का यह बड़ा भारी नागरिक अधिकार है।

ह्वाइट पेपर—ब्रिटिश सरकार किन्ही विभिन्न विषयों पर अपने विचार जिस रिपोर्ट मे प्रकाशित करती है, उसे ह्वाइट पेपर कहते हैं।

ह्विग—ब्रिटिश पार्लमेंट की एक पार्टी; जिसका आजकल 'लिबरल' नाम होगया है। किसी समय इंगलैण्ड मे इसका प्रबल संगठन था, लेकिन आजकल इसके बहुत कम सदस्य हैं। इसका प्रारंभ स्टुअर्ट राजाओं के समय तब हुआ था; जब कुछ विचारकों ने यह आन्दोलन किया था कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि नहीं लेकिन एक प्रमुख अफसर है। इसके विरुद्ध टोरी उसे ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे।

ह्विप—व्यवस्थापिका सभाओं मे पार्टी के संयोजक को ह्विप कहते है। वह देखता है कि उसकी पार्टी के सदस्य ठीक तरह से वोट देते है या नही।

———